UNIVERSAL LIBRARY
OU_180663
UNIVERSAL LIBRARY

OSMANIA UNIVERSITY LIBRARY

Call No. H83/S24G. Accession No. H. 2057.

Author शर्मा, श्री, राम

Title ध्येय-पूर्ति

This book should be returned on or before the date last marked below.

राजकमल कथा साहित्य—२

जीवन-दान

श्रीराम शर्मा 'राम'

राजकमल प्रकाशन
दिल्ली : बम्बई : नई दिल्ली

कापीराइट, १९५२

मूल्य एक रुपया चौदह आने

प्रकाशक—राजकमल पब्लिकेशन्स लिमिटेड, बम्बई।
मुद्रक—गोपीनाथ सेठ, नवीन प्रेस, दिल्ली।

नव-वधू रोहिणी ने जिस दिन अपने स्वसुर-गृह में प्रवेश किया उसी दिन उसके पति रमाकान्त ने अपूर्व स्नेह और ममतापूर्ण भाव से रोहिणी को सम्बोधित करते हुए कहा—"तुम्हें यह छोटा-सा घर ही नहीं सँभालना होगा रोहिणी ! बल्कि तुम्हें मुझको भी सँभालना होगा। मैंने आज तक यही सुना है और देखा है कि यह नारी—यह पुरुष की जननी—पुरुष की पत्नी हीं नहीं, प्रत्युत उसकी निर्मात्री और संरक्षिका भी है। सो, यही पाया मैंने। विवाह से पूर्व तुममें भी यही देखा मैंने।"

पति के उन सरल उद्‌गारों को सुनकर आनयास ही रोहिणी झुक गई। वह गद्‌गद् हो रमाकान्त के चरणों को पकड़कर बोली—"पति देव, आप तो देख आए हैं; बूढ़ी माँ को छोड़कर अब तक मेरा कोई भी आधार नहीं है। जाने ईश्वर की ओर से ही मुझे यह आशीष मिलना था और आपके चरणों में आकर बैठना था। नारी, नारी है, जो अबला है, जो पुरुष के ऊपर आश्रित है। सो, वही आश्रय मैंने पाया है। जो सचमुच अपने किसी जन्म के आशीष के आधार पर पाया है। मैं आपकी सेविका हूँ—दासी हूँ।"

अपनी नव-पत्नी के उन मधुर और नत हुए वाक्यों को सुनकर वह तरुण और सुन्दर रमाकान्त जैसे क्षण-भर के लिए किसी और लोक में पहुँच गया था। वह नितान्त गहरी भावना से भरकर रोहिणी को ऊपर उठाता हुआ बोला—"रोहिणी, देख तो रही हो, तुम्हारे माँ तो है, मेरे कोई नहीं। यह घर है, जैसे कूड़ी का ढेर ! मुझे आज तक कोई भी साथी नहीं मिला। न अपनी कहने वाला मिला, न मेरी सुनने वाला। मैं दुनिया के इस भरे कुटुम्ब में, सदा-सर्वदा अकेला ही रहा। आज तुम आई हो, तुम मिली हो—अपनी कहने और मेरी सुनने के लिए।"

तब रोहिणी मुस्कराई थी। वह क्षणेक अपने मधुर होठों से हँसी थी।

और इस प्रकार एक-एक दिन के साथ रोहिणी को अपने पति के घर आये कई मास निकल गए। अब वह पूरी गृहस्थिन बन गई थी। वह जैसे जीवन की गुरुता को समझ, एक दायित्व अपने-आप ही अपने ऊपर ले चुकी थी। यह देखकर रमाकान्त ने भी सब-कुछ उसी पर छोड़ दिया था। उसने तो केवल दफ़्तर जाकर नौकरी करनी ही अपना काम समझ लिया था। महीने में जो वेतन लाता वह भी रोहिणी के हाथ पर रख देता था। यही कारण था कि घर की पहली व्यवस्था का ढाँचा बदल गया था। अब रमाकान्त अपने कपड़े और अन्य वस्तुओं को इस-उस ओर पड़ा हुआ नहीं देखता था। वह घर में आते ही नित्य नई व्यवस्था पाता था और मन-ही-मन प्रसन्न होता था। जो रमाकान्त पहले अपने पचास रुपये मास के वेतन में भी पूरे दिन नहीं निभा पाता था, उन्हीं में से वह रोहिणी को कुछ बचाते देखता था।

ऐसे, रमाकान्त सचमुच अनुभव करता कि अब वह दुनिया का आदमी बना है। इस आदमी के लिए जो 'खूँटे से बँधने' की लोकोक्ति लोगों ने गढ़ी है, वह जैसे आज सार्थक हुई है। उसका जीवन सार्थक हुआ है। तभी एक दिन उसने रोहिणी से कहा—"सुनती हो, अब मैं 'खूँटे से बँध' गया हूँ—तुम्हारे खूँटे से।"

रोहिणी ने जैसे बात को न समझ पाकर चकित होकर पूछा—"कैसा खूँटा?"

तब रमाकान्त ने उसी प्रकार मुस्कराते हुए कहा—"तुम नहीं समझीं! सुनो, मैं खूँटे के अर्थ बताता हूँ।" और उसने रोहिणी की ठोढ़ी को पकड़ते हुए कहा—"खूँटे के अर्थ, तुम! अर्थात् मैं बैल रूपी रमाकान्त तुमसे बँध गया हूँ। दुनिया जिसे खूँटा कहती है, मैं अब ही तो असली अर्थों में उसे समझ पाया हूँ,—तुमको! जो अब इस खूँटे रूपी रोहिणी से नहीं छूट सकता हूँ। न इससे दूर भाग सकता हूँ।" कहते-कहते रमाकान्त ज़ोर से हँसा। सारा घर-आँगन उसके मुखरित हास से पुलकित-सा हो उठा।

रोहिणी ने भी हँसते हुए पूछा—"दुनिया तो मुझे खूँटा मानती है, तुम भी मानते हो न!"

"हाँ, क्यों नहीं, अवश्य ! बताओ तो, तुम-जैसी नारी से बँधकर कौन छूट सकता है ? कोई है, जो इस बन्धन को ढीला कर दे।"

रमाकान्त के इस उत्तर से रोहिणी ने सिर झुका लिया। उसने फिर कुछ नहीं कहा।

अहले दिन रविवार था। रमाकान्त को अपने कुछ मित्रों के साथ यमुना-स्नान करने जाना था। जाते समय रोहिणी ने टोककर कहा—"सुनते हो, यमुना चढ़ रही है और तुम तैरते हो। मैं कहती हूँ किनारे पर स्नान कर लेना। जल्दी ही आना। मैं खाना लिये बैठी रहूँगी, तुम्हारी प्रतीक्षा में। सप्ताह में एक तो छुट्टी का दिन आता है, सो इस दिन भी तुम्हें गरम और ताजा खाना नहीं भाता।" और जब रमाकान्त 'अच्छा, अच्छा' कहता हुआ द्वार के पास पहुँचा, तो पीछे से रोहिणी ने फिर कहा—"तुम परसों मखानों की खीर को कह रहे थे, सो वही बनेगी आज। जाने कब आओ तुम ! कितनी देर में !..."

रमाकान्त ने द्वार से बाहर होते-होते कहा—"मैं जल्दी लौट आऊँगा। सच, जल्दी !"

रमाकान्त चला गया। वह यमुना पर भी पहुँच गया। वह वहाँ जाकर रोहिणी की बात भी भूल गया। वह अच्छा तैराक था। जब मित्रों के साथ वह यमुना में घुसा, तो तैरते-तैरते दूर चला गया। मित्रों ने उसका साथ छोड़ दिया था। पानी चढ़ रहा था। किनारे से दूर—बहुत दूर तक पानी-ही-पानी दिखाई देता था। जहाँ यमुना की धार का तेज़ बहाव था, रमाकान्त वहीं चला गया था। वह थक भी गया था। मुड़कर पीछे उसने किनारे को देखा। वह उससे बहुत दूर हो गया था।

उस समय रमाकान्त जीवन और मृत्यु की जिस भयंकर विभीषिका में फँसा था, उसका रूप सचमुच ही भयानक था। रमाकान्त एक क्षुद्र तिनके के समान उस अथाह जल-राशि से लड़ने का प्रयत्न कर रहा था। परन्तु वह थक गया था। वह बहुत चिल्लाया और चीखा, किन्तु उसका स्वर उस किनारे से दूर उन लहरों के निनाद में ही लीन होता दीखता था। यदि रमाकान्त कुछ क्षण और अपने में साहस बटोर

पाता, तो जो मित्र स्वतः ही उसे फँसा देख उसकी ओर बढ़ आए थे, उसे बचाते और किनारे ले जाते। किन्तु उनके आने से पूर्व ही रमाकान्त अशक्त हो गया और अचानक पानी का एक बड़ा-सा झोंका खाते ही, दो-तीन डुबकियाँ लेकर पानी के गहरे तल में चला गया। वह देखते-ही-देखते न जाने किधर और किस ओर खो गया।

दुःखी खिन्न और क्षुभित मित्रों ने उसके घर आकर यह समाचार दिया। बात-की-बात में यह दुःखद समाचार मुहल्ले-भर में फैल गया। रमाकान्त का घर स्त्री-पुरुषों की भीड़ से भर गया। जिसने सुना उसी ने उस दीन-दुखी विक्षुब्ध रोहिणी को समझाना चाहा। सबने ही इस संसार की असारता का मर्म प्रकट करके उससे सहानुभूति प्रकट की।

उसी दिन कुछ स्त्रियों ने अपने साथ ले जाकर रोहिणी की चूड़ियों को यमुना की धार में सला दिया। जहाँ जाने पानी की किस लहर को ओट में सदा के लिए उसका पति छिप गया था और सो गया था—उसको जीवन-भर रोने और तड़पाने के लिए छोड़कर।

उस क्षण कितना रोदन और चीत्कार भरा था उस रोहिणी के मानस में ?

महीने-भर तक रोहिणी के पास रमाकान्त के मित्रों और स्वजनों के समवेदनात्मक सन्देश आये। रोहिणी उन्हें देखती और अपनी आँसू-भरी आँखों को पोंछने के साथ उन्हें एक ओर रख देती। जिस घर को वह भरे उल्लास के साथ सजाने में जुटी थी, उसी के प्रति अब वह अनुभव करती कि जैसे एक भूत हो—श्मशान का ढेर-जैसा। जो लावण्यमयी रोहिणी दिन-भर हँसती और मुस्कराती दीखती थी, लगता, जैसे अब सभी-कुछ उसके पास से छिन गया हो। अब वह हड्डियों का खोल-मात्र ही रह गई थी। जिससे न शऊर से खाया जाता था, न सोया जाता था, और न चैन से बैठा ही जाता था। सम्बन्धिनी

तथा पड़ौसिन औरतें आतीं और उसे समझा-बुझाकर चली जातीं। किन्तु जैसे रोहिणी को वह सब नहीं रुचता था, भला नहीं लगता था।

एक दिन सन्ध्या समय रोहिणी दीपक जलाकर उसकी ऊँची उठती हुई लौ को देखने में लगी थी। लगता था जैसे वह अपने जीवन की गहरी समस्या का समाधान उसमें खोज रही हो। तभी उसने द्वार पर सुना—"भाभीजी...!"

उसने मुड़कर देखा कि घर के आँगन में सुरेश खड़ा था। जिसे देखकर एकाएक उससे कुछ कहते नहीं बना।

सुरेश बाबू ने आँगन में बिछी हुई चारपाई पर बैठते हुए कहा—"मैं बाहर गया था भाभी! आते ही सुना। पर देखता हूँ, यह क्या सुना। रमा भैया इस प्रकार, एकाएक हम सबको छोड़ गए। वह इस प्रकार...!" कहते-कहते सुरेश का गला भर आया। वह अवरुद्ध हो गया।

. रोहिणी सिर झुकाये बैठी थी वह सिसक-सिसककर रो रही थी।

सुरेश फिर बोला—"जो स्त्री अपना देवता-सा पति खो दे, उसका रोना तो सच का है भाभी! जो एक दिन का नहीं, जीवन-भर का रोना है। पर देखती तो हो भाभी, जैसे जीवन का विधान ही यह है। इस-उस ओर निभता ही यह है। मानो जीवन पानी का बबूला है, जो हवा का झोंका खाकर उठता है और बैठ जाता है। क्या कहूँ, मैं कैसे कहूँ मैं।"

रोहिणी तब भी चुप थी। वह तब भी अपनी भरी आँखों से दूर काले होते आए अन्तरिक्ष की ओर देख रही थी।

सुरेश फिर बोला—"रमा भैया के जाने से मुझे तो जीवन जैसे सूना-सूना और भयानक-सा दीखता है। जो निरुद्देश्य और बेकार की वस्तु लगता है। और रमा भैया तो लगते ही ऐसे हैं, जैसे कहीं गये हैं, कहीं छिप गए हैं ...।"

तभी मुहल्ले की दो-तीन स्त्रियाँ और आईं और बैठ गईं।

उन्हीं में से एक ने सुरेश से कहा—"भैया, अपनी भाभी को समझाओ। देखो तो अब रात-दिन रोने और भूखे मरने से क्या होता है? जो पंछी पिंजरे से उड़ गया और आँखों से दूर भी हो गया, वह अब क्या आ जायगा?

यह सुनने के साथ सुरेश ने रोहिणी के सूने हाथों की ओर देखा। उसके पैर भी सूने थे। तभी वह ऊपर के खुले आसमान की ओर देख-कर अपने-आप बोला—"जाने क्या दोष था इस सुकुमार नारी का कि जिसे यह भी देखना बदा था—और भी इतनी शीघ्रता में विवाह होने के साथ ही। ओह, राम....।"

वह उठकर जाते हुए बोला—"भोजन करो, भाभी! जब तक जीवन है, इसे पालना है। इसके प्रति उपेक्षा नहीं रखनी है। यही नियम है, इस सृष्टि का। जीवन का जो युद्ध है, उससे मुँह मोड़कर भी छुटकारा नहीं मिलता। अब रोओ मत। मैं सुबह आऊँगा, नमस्ते।"

सुरेश चला गया। वह उस द्वार से बाहर हो गया। किन्तु रोहिणी थी, जो तब भी उसी प्रकार खिन्न और उदास मन से उन पड़ौसिनों के बीच बैठी थी। जो तब भी अपने लिए न कहीं किनारा देखती थी, न उस जीवन के भव-सागर से पार पाने की राह।

हाय, कैसी दीन और याचक बन गई थी वह।

और कैसी बात थी कि जब सुरेश रोहिणी से विदा लेकर अपने घर की ओर चल दिया, तो रास्ते में वह रोहणी की स्थिति पर सोचते-सोचते उसके इतिहास पर पहुँच गया। जो अभी नया था। जो अभी वर्ष-भर को पार भी नहीं कर सका था।

बात यह थी कि जिस समय रमाकान्त के साथ रोहिणी के विवाह का प्रसंग चला था तो अधिकतर मध्यस्थता का काम सुरेश ने किया था। तभी उसे रोहिणी की माँ से पता चला था कि उन्होंने पहले सुरेश को ही रोहिणी के लिए चुना था। किन्तु धन-हीना लड़की को उसके पिता ने स्वीकार नहीं किया।

यह जानकर तो सचमुच ही सुरेश अपने पिता की नीयत पर लज्जित हुआ था। तब उसने रोहिणी की माँ को ढाढ़स देते हुए कहा था—अम्माजी, ईश्वर जो करता है, अच्छा करता है। आपने मेरे पिता के पास केवल धन देखा था। किन्तु रमा भाई के पास जो है, वह धन से बड़ा है। उनके पास जो विद्या और बुद्धि है, उसके द्वारा कल

 धन भी आ सकता है।

तभी राह चलते सुरेश को याद आया कि जब वह रोहिणी की माँ से बातें करके चला था, तो घर की ड्योढ़ी पर वह रोहिणी को खड़ी देखकर ठिठका था और हठात् उसकी ओर देखकर बोला था—'मेरे पिता के लिए तुम्हारी माँ ने जो-कुछ कहा, उसके लिए मैं शर्मिन्दा हूँ, रोहिणी ! पर विश्वास रखो, रमा भाई भी अपने हैं। वह मेरे बड़े भाई हैं। वहाँ भी मेरे लिए जो सेवा का काम होगा, विश्वास रखो यह सुरेश उससे विमुख नहीं होगा। रमाकान्त देवता हैं। वह हमारी मित्र-मण्डली में सबसे अगुवा हैं। और मैंने तो तुम्हारी माँ से कहा है, धन ही सब-कुछ नहीं होता। रमा भाई के पास तुम्हें जो-कुछ मिलना है, निश्चय ही वह और कहीं प्राप्त नहीं होगा। उनके पास जो आज धन नहीं है, वह भी, कल आ सकता है—वह जरूर आ सकता है।'

रोहिणी सुरेश की बातों को अनबोली-सी सुन रही थी। हाँ, एक बार सुरेश की ओर देखकर उसने अपना सिर झुका-भर लिया था।

'और आज वही रोहिणी यों विधवा हो गई है। वह यों निपट उजाड़ में लुट गई है। वह एकाकी हो गई है।' हठात् सुरेश ने अपने घर के द्वार पर पहुँचकर कहा। वह अपने सोने के कमरे में चला गया और कपड़े उतारकर पलँग पर पड़ गया। कुछ देर बाद नौकर उसे दूध पिला गया और लैम्प बुझा गया। किन्तु सुरेश को नींद नहीं आई। उसका मन तब भी उस विधवा, विपन्न और अपने भरे-पूरे जीवन में एकाकी हुई रोहिणी की दशा पर टिका था, जिसकी अभी सुहाग की रातें भी नहीं पुरी थीं। जिसकी सुहाग की माँगे भी अभी भली प्रकार नहीं पूरी गई थीं।

दूसरे दिन रोहिणी के घर जाते ही सुरेश ने देखा कि वह सफेद धोती पहने, कमर पर सिर के बाल फैलाये, आसन पर बैठी गीता पढ़ रही है। जब उसने सुरेश को देखकर गीता पढ़ना बन्द कर दिया, तो

सुरेश ने कहा—"तुम पढ़ो भाभी! गीता को मैं कभी इस प्रकार नहीं पढ़ पाया, पर सुना है, यह है अच्छी पुस्तक। शायद गीता कुछ शान्ति देती है।"

यह सुनकर बरबस रोहिणी ने मुसकरा दिया। सुरेश की ओर देखकर उसने कहा—"पर मेरा तो इसमें मन नहीं लग रहा है। शायद नई-नई जो पढ़ने बैठी हूँ इसलिए।"

यह सुनकर सुरेश ने एकाएक कुछ नहीं कहा। कदाचित् जो उसे कहना था, वह कह नहीं पाया।

तभी रोहिणी ने कहा—"जीवन भी अजब पहेली है एक। जाने कितनी गहरी और गूढ़। देखती हूँ मैं इसी में उलझी हूँ, और आज की रोहिणी का तो काम ही यह है कि दिन-भर रोती रहे और इस निपट-निर्जन जीवन की ओर देखती रहे, जो जाने कितना लम्बा है और कितना अपार!....."

सुरेश ने देखा कि रोहिणी ने अपने मुँह को घुटने पर रख लिया है और जैसे मन भी भारी कर लिया है। तभी उसने कहा—"भाभी, तुम जो-कुछ कह रही हो, कहना मुझे भी यही था। पर मेरा यह भी मत है—जीवन की चिन्ता करना, मरने-जीने की कल्पना करना कोई अच्छी बात नहीं है। यह तो तुमने समझ ही लिया कि जीवन एक लहर है, जो अपने स्वभाव के अनुरूप उठती है और बैठती है। मैं कहता हूँ, इसका मोह क्यों? मेरा तो विचार है, इसे जैसे चलना है, चलना है। इसका अबाध्य गति से बहता प्रवाह हमारे-तुम्हारे रोके से नहीं रुकेगा। और कहती हो मौत, इसका रूप तो हमें बस इन्हीं अर्थों में आँकना है कि पथिक चलते-चलते थका है तो वह एक पेड़ की छाँह में बैठ गया है। उसने वहाँ तनिक आश्रय पा लिया है। बस, मैं इसी को मनुष्य की मृत्यु मानता हूँ। और जब वह पथिक चला है, वह सुस्ताकर आगे बढ़ा है, तो समझो कि उसने फिर जीवन पा लिया है। वह फिर किसी नारी की कोख से पैदा हो गया है। समझा भाभी, यह है हमारी जीवन-मृत्यु का खेल। जो सभी को खेलना है; मुझे भी तुम्हें

 भी, और सारे संसार को भी। ठीक है, भैया रमा था, तो उनसे

हमारा और तुम्हारा स्वार्थ फलता था। पर क्या हमने उस रमा के रूप में आदमी को रोपा है। ना, भाभी, हमने अपने स्वार्थ को रोपा है। हमने इसी से रमा भाई को याद किया है।....."

रोहिणी बोली—"मैं दुर्बल हूँ, विपन्न हूँ सुरेश बाबू। नहीं सूझता कि मैं क्या करूँ ? मात्र रोना रह गया है, हँसना तो जैसे जीवन में मिलेगा ही नहीं।"

"भाभी, मैं इसे मानता हूँ," सुरेश ने कहा, "पर तुम्हीं बताओ, आखिर चारा क्या है। पर जिस दुर्बलता और विपन्नता की बात तुम लेती हो और जिन अर्थों में लेती हो, उसे न लो तो ठीक। अन्यथा तुम आज की तरह सदा भ्रम में रहोगी। मैं उपदेश नहीं देता। कहता हूँ, केवल धनहीनता के कारण ही अपने को विपन्न मत समझो। तुम अपनी जिस पवित्र नारी-देह में आत्मा को सँजोये हो, उसके महत्त्व को इतनी तुच्छ बातों पर न आँको। समझो, तुम्हारे पास जो महान् नारीत्व है उसके समक्ष धन कुछ नहीं, हाँ कुछ नहीं ! और देखती हो, रोटी सभी खाते हैं और सभी पाते हैं।"

यह सुनकर रोहिणी ने कुछ नहीं कहा।

सुरेश फिर बोला, "और इस समय तो मैं तुम्हें यह बताने आया हूँ भाभी, कि भैया रमा की इस महा यात्रा की बात ने मुझे रात-भर नहीं सोने दिया। मुझे अपने आस-पास का सभी-कुछ फीका और व्यर्थ जान पड़ा। मैं तुम्हारे और भैया रमा के जीवन-तट से जो एक दिन लग गया था, तो जैसे सदा-सर्वदा के लिए वहीं बँध गया था। इसी से भैया रमा के महा प्रयाण से विचलित होकर मैं आज यह सोचता हूँ और अपने जीवन की गहराई में आँखें डालकर देखता हूँ कि मैं तुम्हारे लिए किस प्रकार उपादेय हूँ और सार्थक हूँ। भैया रमा का अभाव पूरा करना तो किसी का काम नहीं है, पर जो तुम्हारी अन्य कठिनाइयाँ हैं उन्हें पूरा करना अपना कर्तव्य समझता हूँ।"

तभी रोहिणी ने एक लम्बी साँस खींची और शून्य आकाश की ओर छोड़ दी। उसी के साथ वह क्षीण स्वर में बोली—"मेरे लिए अब क्या शेष रहा है, सुरेश बाबू।"

सुरेश बोला—"भाभी, इस प्रातः के समय मैं तुमसे यही कहने आया हूँ कि तुम मुझे आशीष दो कि मैं सदा तुम्हारी सेवा में प्रस्तुत रहूँ," कहते-कहते उसने कुरते की जेब से हाथ निकाला और सौ-सौ के पाँच नोट रोहिणी के सामने रखकर बोला, "मैं तुम्हारी स्थिति को भी जानता हूँ, भाभी! अब तुम्हें दुनिया की जहाँ और चिन्ताएं होंगी, वहाँ सबसे गुरुतर और सबसे भयंकर जीवन-निर्वाह की बात होगी। रमा भैया के बाद, इसी से तुम्हारी सेवा कर पाऊँ, तो न तुम ही इस अधिकार को छीनना और न ही मैं चाहूंगा कि इस श्रेष्ठ कर्तव्य को भूल जाऊँ। ये पांच सौ रुपये रखो। मैंने रात इन्हीं विचारों में अपनी नींद घुला दी।"

रोहिणी ने आर्द्र कण्ठ से कहा—"पर सुरेश बाबू, ये रुपये क्यों? तुम्हें कष्ट क्यों? जो है, होने दो और निभने दो।"

सुरेश बोला—"इसका कुछ अर्थ नहीं है, भाभी! मेरे और रमा भैया के जो सम्बन्ध थे, उन्हें तुम जानती हो। आज भी समझो, यह उसी सम्बन्ध को पूरा किया जा रहा है, जो मेरा कर्तव्य है।"

तब रोहिणी ने नोटों को उठाकर रख लिया। सुरेश भी उठा और बोला—"अब मेरा अधिक आना-जाना नहीं रहेगा। मेरे लिए जो भी काम हो, कहलाकर भेज देना अधिक ठीक होगा। दुनिया की और हमारे समाज की जो रीति है, उसे हम सभी को निभाना होगा।"

यह सुनकर रोहिणी ने सुरेश की ओर देखा। उसने कुछ कहना चाहा। किन्तु तभी सुरेश ने ऊपर आकाश की ओर देखते हुए फिर कहा—"हम जिस कच्चे धागे से बँधे हैं और लटके हैं, उससे टूट जाना और भूतल पर बिखर जाना कभी भी और किसी क्षण भी हो सकता है। क्यों, मानती हो न तुम भाभी!"

तब दीखता था, रोहिणी ने उस बात का अर्थ नहीं समझा था।

सुरेश ने द्वार की ओर बढ़ते हुए कहा—"मैं चरित्र को भी जीवन का एक अंग मानता हूँ, भाभी! यह भी टूटता है और कभी भी शिथिल पड़ जाता है। अच्छा, नमस्ते!"

रोहिणी ने जैसे मूर्च्छा से जागकर कहा—"नमस्ते !"

सुरेश चला गया।

एक दिन अपने घर बैठा हुआ सुरेश जब एक उपन्यास पढ़ने में लगा था, तो तभी एक मित्र उसके पास आया। आते ही उसने इधर-उधर की बातों के बाद पूछा—"अच्छा, यह तो बताओ, रमा बाबू की पत्नी का क्या समाचार है ?"

सुरेश ने किताब को एक ओर रखकर कहा—"मैं इधर जा नहीं सका। वैसे समाचार ठीक होगा।'

"कितने दिन से नहीं जा पाए, तुम ?"

"लगभग एक मास से।"

आगन्तुक का नाम महेश बाबू था। सुरेश की तरह उनका भी रमाबाबू के मित्रों में विशिष्ट स्थान था। थोड़ा रुककर उन्होंने कहा—"सुरेशबाबू, मुझे रमाबाबू की मृत्यु से जितना दुःख हुआ है देखता हूँ, उससे अधिक उनकी विधवा पत्नी को देखकर होता है। कल मेरी पत्नी रमाबाबू के घर गई थी। वही मुझे बताती थी और कहती थी—'जो हुआ बुरा हुआ। मैं जब-जब रोहिणी को देखती हूँ, तो उस निरीह, अबोध बाला के सूने हाथों को देखकर अपने-आप चीखती हूँ और अपने अन्दर के परमेश्वर से पूछती हूं, क्या इसके साथ यही होना था! इसे यही देखना था। इस सलोनी, इस मधुर और यौवन की देहली पर आकर खड़ी हुई रोहिणी को सुहाग का इतना वीभत्स, कठोर और नगण्य रूप ही देखना था क्या ?'...

"मैंने पूछा—'तो क्या किया जाय ? अब रोहिणी से क्या कहा जाय ?'

"तो उन्होंने तुरन्त ही स्पष्ट स्वर में कहा—'रोहिणी का विवाह होना चाहिए। निश्चय ही रोहिणी को अकेली नहीं रहना चाहिए।'

"तब मैंने आश्चर्य से पूछा—'अरे, यह तुम कहती हो ?'

" 'हाँ, हाँ, मैं कहती हूँ। मैं तुम्हारे और तुम्हारे मित्रों के लम्बे-लम्बे उपदेशों को जब-तब सुन-सुनकर ऊब गई हूँ और उपेक्षा से टाल गई हूँ। उनको अब मैं तुम्हें देती हूँ और ग्रहण करने के लिए कहती हूँ। मैं उन्हें तुम्हारे सामने रखकर रोहिणी की ओर से निमन्त्रण देती हूँ कि अपने उन आदर्शपूर्ण उपदेश को सार्थक करो। तुम रोहिणी की कठिनाई दूर करो।'

"मैंने पूछा—'पात्र कौन है ? तुम्हारी दृष्टि में लक्ष्य कौन है ?'

"तो कहा उन्होंने—'तुम्हारे मित्रों में सबसे अधिक आदर्शवादी हैं सुरेशबाबू। जो समर्थ भी हैं और जो रोहिणी के लिए योग्य भी हैं। मैं उन्हीं से पूछूँगी और कहूँगी—तुम इस रोहिणी को अपनाओ सुरेश बाबू ! मैं इसके लिए उनकी हरेक प्रकार की अनुनय-विनय कर लूँगी। मैं उनसे स्पष्ट होकर कहूँगी—सुरेश बाबू, जीवन तो सभी पाते हैं और भोगते हैं। पर इसे आँख खोलकर जो देखते हैं और समझते हैं, वह कितने हैं ? शायद हज़ारों में एक-दो। मैं तुमसे कहती हूँ, तुम भी ऐसा ही जीवन पाओ और देखो, जो चाहते भी हो, तुम ! देखती तो हूँ कि तुम्हें रोहिणी-जैसी अनेक स्त्रियाँ मिल जायंगी पर वह ऐसी ही भावना और ऐसा ही हृदय लेकर तुम्हारे पास आयंगी, शायद यह मैं नहीं जानती।'...."

महेशबाबू ने कहा—"और भाई सुरेशबाबू, मैं तुम्हारी भाभी के इसी सन्देश को लेकर तुम्हारे पास आया हूँ। उन्होंने तुम्हें बुलाया है। आज खाने के लिए भी कहा है। सो, उठो तुम ! मेरे साथ चलो।"

महेश की इन बातों को अब तक सुरेश बिलकुल मौन होकर सुन रहा था। वह अपने सूखे ओठों में बरबस हँसी लाता हुआ बोला—"भाभी ने एक बड़े लक्ष्य को पूरा करने का बीड़ा उठाया है, महेशबाबू ! और दीखता है कि वह मुझको ही लक्ष्य करके उठाया गया है।"

यह सुनकर महेशबाबू ने कुछ नहीं कहा।

सुरेश ने फिर कहा—"मेरी जो स्थिति है, वह तो जानते हो, तुम।

तुम समझते हो। लेकिन खैर, भाभी जो कहेंगी, उसे सुनूँगा और उत्तर भी दूँगा।"

महेशबाबू ने कहा—"देखता मैं भी हूँ कि यह सम्बन्ध तुम्हारे लिए सुखपूर्ण तो होगा ही, साथ ही, यह अनुरूप भी होगा। मैं इसे जीवन में पुण्य का भी काम मानता हूँ, सुरेश बाबू! रोहिणी जिस अवस्था में है, वह विधवा-जैसी कठोरतम स्थिति को काटने की नहीं है। उसके हृदय में जो आहों का तूफान उठा है, वह भयंकर है। उसके सम्मुख हमारा हास-परिहास, लगता है कि एक क्षण को भी नहीं शोभता। रोहिणी सुखी होगी, तो निश्चय ही, रमाकान्त की मृतात्मा भी सन्तुष्ट होगी।"

तब कमरे की कड़ियों की ओर देखता हुआ सुरेश बोला—"महेश-बाबू, इन बातों का प्रतिकार मैं क्या करूँ; पर तुम्हें यह बता दूँ कि मैं अभी विवाह नहीं करूँगा। रमाबाबू की मृत्यु ने और रोहिणी के वैधव्य ने इस दिशा में मुझे अधिक दोलित किया है। इसी से मैंने अपने को घर के व्यवसाय में लगा दिया है। तुम मुझे सुखी मानते हो और वैभव-सम्पन्न समझते हो, पर रमाकान्त की मृत्यु से जो एक हाहाकार मेरे मानस में उठा है, उसने जैसे मुझे सभी ओर से उपेक्षित और उदासीन-सा कर दिया है। क्या कहूँ, जीवन कैसा है यह।"

महेशबाबू ने कहा—"जीवन ऐसे नहीं समझा जायगा। इतनी जल्दी समझने में भी नहीं आयगा।"

सुरेश फिर छत की कड़ियों की ओर देखने लगा।

महेशबाबू ने चलने को उद्यत होकर फिर कहा—"अच्छा, अब उठो, तुम घर चलो।"

सुरेश ने जैसे चौंककर पूछा—"अभी चलूँ क्या?"

"हाँ, नहीं तो, तुम बहुत दिन से नहीं गये हो। उठो, उठो।"

सुरेश उठ लिया। वह महेश बाबू के साथ-साथ मूक भाव से चल दिया।

वहाँ पहुँचकर, जो वह जाकर बैठा, तो कुछ देर बाद ही महेशबाबू की पत्नी ने उस कमरे में आकर कहा—"आज आ गए, सुरेशबाबू!

सौभाग्य है, जो बुलाने से आ गए।" कहते हुए वे हँस पड़ीं और सुरेश बाबू की ओर देखने लगीं।

सुरेश ने कहा—"मैं भी दुनियादारी के कामों में उलझ गया हूँ भाभी जी! अब पढ़ना तो है नहीं, जो समय मिले और बहाना मिले। पिताजी सब काम मेरे ऊपर छोड़ते जा रहे हैं। दिखता है, वह नये बैल को सिखा रहे हैं और सधा रहे हैं।"

भाभी ने अपनी हँसी रोककर कहा—"यह तो करना है, जो आज नहीं तो कल अवश्य करना है।"

"पर मैं इसे अच्छा नहीं समझता। मैं चौबीसों घण्टे पैसे की चिन्ता में फँसा रहना पसन्द नहीं करता।" सुरेश ने कहा।

तब जाने उसकी भाभी ने इसे स्वीकार किया या नहीं।

किन्तु उसी क्षण महेशबाबू ने कहा—"सुरेशबाबू, तुम्हारी जो बात है, वह सत्य तो है, पर व्यावहारिक नहीं। मैंने इसी भावना पर तुम्हारी इस भाभी लक्ष्मी का और अपना जीवन नष्ट कर लिया है। अब तो देखता हूँ, इस पैसे के चिन्तन ने धनिक और निर्धन दोनों को ही आन्दोलित कर दिया है। अवस्था का भेद है। चिन्ता दोनों की एक है। तुम सोचते होगे, मैं अनुभव नहीं करता कि मेरी स्त्री भी—यह लक्ष्मी—दूसरी स्त्रियों की तरह सज कर रहे। यह भी प्रसन्न और सुखी रहे। पर यह सब हो कहाँ सकता है। न पैसा है, न साधन। जितना पैसा आता है, उसके लिए चौबीसों घण्टे प्रयत्नशील रहना पड़ता है। समाज भूखा मर रहा है, देश दिन-पर-दिन कंगाल हो रहा है। धनिकों और राजाओं ने देश को चूसने का धन्धा ले लिया है। उन्होंने अपने स्वार्थ के समक्ष मानवीय धर्म को सर्वथा तिलांजलि दे दी है। तुम लोग, जो धनिक हो, जीवन के प्रति नहीं सोच पाते। जो ठीक भी है। धन है, तो मानवीयता नहीं है, उदारता भी नहीं है। बात यों है, यह धन का जाल, जो अपने चारों ओर आडम्बरों का ढेर करता है, आखिर क्यों? किसलिए? उन्हें भोगने के लिए ही तो। और उनकी दृष्टि में यही धन की महत्ता है। इसलिए ऐसे धनिक भी परे-

 शान हैं। एक पेट की रोटियों के लिए चिन्तित है तो दूसरा भोग की

सामग्रियाँ जुटाने के लिए आतुर है ! कितना बड़ा अन्तर है, दूर का और विशाल।..."

सुरेश ने कहा—"मैं इसे मानता हूँ, महेशबाबू।'

तब महेशबाबू ने कुछ नहीं कहा। उन्होंने अपनी दृष्टि को बाहर की ओर कर लिया।

सुरेश ने फिर उनकी पत्नी की ओर देखकर कहा—"कुछ दुर्बल-सी दिखती हो भाभी, कहो आज क्या बनाया है ? महेशबाबू ने मुझे आज यहीं खाने का न्यौता दिया है।"

किन्तु भाभी के कुछ कहने से पूर्व ही महेश बाबू ने लक्ष्मी की ओर देखकर कहा—"मैंने तुम्हारा प्रस्ताव सुरेश बाबू के सामने रख दिया है। मुझे तो कोई उत्तर नहीं मिला। तुम तैयार करो। यह कठिन काम तुम्हारे द्वारा ही होता है।" कहते-कहते महेश बाबू मुस-करा दिये।

अपने पति की बात सुनकर लक्ष्मी ने सुरेश बाबू को लक्ष्य किया और कहा—"एक नारी, नारी के मर्म को अधिक जानती है, सुरेशबाबू! रोहिणी के हृदय में जो चीत्कार छिपा है, वह सचमुच ही चिन्तनीय है। भला आप कैसे अनुभव करेंगे कि रोहिणी पर कैसे भारी वज्र का प्रहार हुआ है। सुरेशबाबू, वह तो ऐसी दुर्भागी कली है, जो खिलते-खिलते ही मुरझा चली है। भला, उसकी जवानी की गाँठें अभी कहाँ खुली हैं। फिर, जिस पर वह अकेली है। देखते हैं न आप, उसके जीवन में कोई भी साथी नहीं है। इस भरी-पूरी दुनिया में, जो एक-दूसरे से बँधी है, बेचारी रोहिणी के लिए कोई भी आधार नहीं है। वह निपट शून्य है। मुझे तो उसे देखकर ही इतनी दया और ममता उपज आती है कि जी चाहता है कि उससे सदा चिपटी रहूँ और उससे लगी-बँधी बैठी रहूँ। रोहिणी से अधिक भी अन्य स्त्री सुन्दर होगी, इसको तो मैं कल्पना भी नहीं कर पाती। वह अनिंद्य सुन्दरी है। वह सलोनी है। वह देवी है।..."

सुरेश ने गम्भीर होकर कहा—"इसमें से कुछ-कुछ मैं भी जानता हूँ, भाभी ! रोहिणी देवी है, मैं इसे हर बार स्वीकार करता हूँ।"

"तब ? तब ?" लक्ष्मी ने जैसे सुरेश को पकड़ते हुए पूछा।

तब सुरेश ने कहा—"जो तुम्हें कहना है और मुझसे ही उसकी सहमति पानी है, तो अवसर दो, मैं विचार लूँ और अपने आत्मीयों से पूछ लूँ। भला, इसमें जल्दी भी क्या है।'

उसी समय लक्ष्मी जैसे फिर कुछ कहने ही लगी थी कि बाहर से आवाज आई—"जीजी !..."

हठात् लक्ष्मी ने कहा—"लो आ गई रोहिणी।"

और तभी रोहिणी उस कमरे के द्वार पर आकर खड़ी हो गई।

उसे देखते ही लक्ष्मी ने कहा—"रोहिणी देखती है न, इन सुरेश-बाबू को, आज जाने कैसे आ गए हैं। अरी, तूने सुना नहीं, जो इनके पिता का बड़ा-सा लम्बा-चौड़ा कारोबार है, वह अब इनके कन्धों पर पड़ गया है। अब रुपया कमाने का लालच पड़ गया है इन्हें। इसी से, समय नहीं मिलता और हम सबको छोड़ दिया है। आज भी बुलाया तो आ गए है।" कहते-कहते लक्ष्मी हँस दी। उसने उसी प्रकार हँसते हुए सुरेश और महेशबाबू की ओर देखा।

तब सुरेश ने होठों में हँसते हुए कहा—"दुधारी गाय की दो लातें भी सही जाती हैं, भाभी ! तुम जो कहोगी, मैं सुनूँगा। जानता जो हूँ, यही सुनकर मैं तुम्हारे हाथ की रोटी खा पाऊँगा। वैसे, जो कहा है, अगर इसका उत्तर ही चाहो, तो मैं महेशबाबू से पाने के लिए कहूँगा।"

एक किताब पर झुके हुए महेशबाबू ने चौंककर कहा—"क्या कहा ! कुछ मुझसे कहा ? ना भई, मैं तुम दोनों के बीच में नहीं पड़ूँगा।"

"जी हाँ ! मीठा-मीठा गप्प और कड़ुवा-कड़ुवा थू ! धन-हीनता पर लेक्चर तो आते ही झाड़ दिया, और अब लगे दूर भागने ! तुम तो धन की उपादेयता मानते हो, भाई ! इसे सार्थक समझते हो ! इनसे कहो कि क्यों न आदमी इसमें रात-दिन लगा रहे।" सुरेश ने कहा।

तब महेश ने किताब को रखकर कहा—"मैं इतना स्वीकार नहीं करता। आदमी धन में ही लिप्त रहे, मैं इसे नहीं मानता।"

"तो क्या मानते हैं आप ?" सुरेश ने कहा।

 "मैं समझता हूँ, धन एक अवलम्ब है, साधन है, जिसे जुटाकर हम

अपनी जीवन की साधना को पूर्ण करें। जो लोग यह नहीं करते वह धन ही की साधना देखते हैं।"

तब सुरेश ने उस बात को छोड़कर लक्ष्मी की ओर देखकर कहा—"कुछ खाने-पीने का भी डौल है, भाभीजी। या यों ही बैठाये रखेंगी, अब पेट बोलने लगा है।"

यह सुनकर लक्ष्मी के साथ रोहिणी भी हँस दी।

तभी महेशबाबू ने कहा—"हाँ भाई, अब भोजन मिलना चाहिए।"

यह सुनकर लक्ष्मी ने उठते हुए रोहिणी से कहा—"आ रोहिणी, अब चलें उस ओर।"

रोहिणी लक्ष्मी के साथ रसोईघर की ओर चल दी।

तभी सुरेश ने रोहिणी की वेश-भूषा को लक्ष्य करके अपने-आप कहा—'सच, अब तो वैरागिन हो गई है, रोहिणी।' और तब शायद जीवन में यह पहली बार उसके मन में यह भावना पैदा हुई, जो उससे कह रही थी—सच, तुम्हें इस रोहिणी के चरणों में गिर जाना चाहिए। तुम्हें...

और तभी महेशबाबू ने सहसा यह कहा—"जीवन भी एक अजब रहस्य है, सुरेशबाबू! जो न देखा जाता, न समझा जाता!..."

सुरेश ने मानो किसी और दिशा की ओर देखते हुए कहा—"हाँ भाई! जीवन वस्तु ही ऐसी है, जो गूढ़ है, जो एक पहेली है।..."

उसी समय रोहिणी खाने का थाल लेकर आई। अपने स्वभाव के अनुरूप सुरेश ने हँसकर कहा—"तुम तो मुफ़्त में 'धन्यवाद' लेने आई हो, भाभी।"

रोहिणी ने पूछा—"कैसे, कैसे?"

यह तो महेशबाबू की श्रीमती जी बतायंगी; जिन्होंने चूल्हा फूँक-कर यह सब बनाया है। तुम तो खिलाने आ गई हो और बने-बनाये की मालकिन बन गई हो।"

"ओह, मैं अब समझी!" रोहिणी ने हँसकर कहा, "पर परोसा तो मैंने ही है। चलो, मैं अपना भी धन्यवाद लक्ष्मी जीजी को दे दूँगी। मैं उनसे समझौता कर लूँगी।"

तभी लक्ष्मी ने चौके में से आकर पूछा—"सब्जी में तो नमक ठीक रहा ? और खीर में मीठा ?"

सुरेश ने कहा—"यह सब तो अब पीछे बताया जायगा। अब तो खाने दो जी भरकर और जो-कुछ तुमने तैयार किया है, उसे खत्म हो जाने दो। समझीं, आज तुम दोनों को भूखा न रखा तो क्या बात !"

यह सुनकर लक्ष्मी ने नितान्त सदय होकर कहा—"हमें यह स्वीकार है।"

लेकिन यह तो महेशबाबू के हाथ की बात है। मेरा साथ इनको भी देना है। जो हैं तुम्हारे पति। भला बताओ, यह कब चाहेंगे अपनी सलोनी और सुन्दर पत्नी को भूखे देखना। निश्चय ही यह भूखे उठ जायंगे।" कहते हुए सुरेश हँसा और ठहाका भरकर फिर खाने में लग गया।

भोजन हो गया। लक्ष्मी ने एक-एक पान का बीड़ा भी दोनों को दे दिया।

तभी उठते हुए सुरेश बोला—"अच्छा, अब मैं जाऊँगा। कभी फिर आऊँगा।"

लक्ष्मी ने कहा—"आया करो, सुरेशबाबू ! देखती हूँ, आदमी जितना पास रहता है, शायद उतना ही दूर भी। यही तो बात है, आपकी। इधर, रोहिणी के पास भी नहीं जाते तुम !"

"अब आऊँगा। अब जल्दी-जल्दी आया करूँगा, भाभी।"

"और जो मैंने कहा, उसका उत्तर भी जल्दी।"

सुरेश ने हँसकर कहा—"अच्छा, अच्छा, नमस्ते।"

चलते हुए उसने रोहिणी की ओर भी देखकर कहा—"नमस्ते।"

रोहिणी ने कहा—"नमस्ते।"

सुरेश चला गया।

रमाकान्त के घर आने पर रोहिणी का जो सबसे पहले परिचय हुआ, वह लक्ष्मी से हुआ था। तभी से रोहिणी का लक्ष्मी से 'जीजी' का सम्बन्ध बना हुआ है। इसी से रोहिणी ने सदा लक्ष्मी का आदर किया, और लक्ष्मी ने उस जीजी के नाते को सदा सार्थक किया। सुरेश के पास यदि रोहिणी की सहायता के लिए पाँच सौ रुपया था, तो जो उस लक्ष्मी ने दिया, वह उसकी उस सीमित स्थिति में अपने गले का लौकिट बेचकर सौ रुपया देना किसी प्रकार भी कम नहीं था। वह महेश बाबू की स्थिति को देखते हुए बहुत बड़ा काम था। रमाकान्त जो महेशबाबू को अपना बड़ा भाई मानता था उसी का वह श्रेष्ठ उपहार था, जो उसने बड़ा ममता और दयनीयता से भरकर कर्तव्य के नाते उस वैधव्यमयी रोहिणी को दिया था। सुरेश ने रोहिणी को क्या दिया, उसने यह न उनसे कहा था और न उन्होंने पूछा ही था।

लेकिन, लक्ष्मी समझती और देखती कि इस दुनिया में रोहिणी अगर किसी के निकट मिल-बैठ सकती है, और दूसरे विवाह-जैसी सम्भावना की कल्पना कर सकती है, तो निश्चय ही, ऐसी धारणा सुरेश के लिए हो सकती है।

और जब लक्ष्मी स्वतः चाहती है कि रोहिणी अकेली न रहे, तो बरबस ही, वह स्वयं भी हिर-फिरकर सुरेश को देखती है। यह धार्मिक संस्कारों में पली लक्ष्मी, जाने किस प्रेरणा पर, अपने एकान्त मन से रोहिणी को सुखी देखना चाहती है। उसे पहले की तरह ही हँसती और खिलती देखना चाहती है।

महेशबाबू पूछते—"क्यों लक्ष्मी, अब तुम्हारी वह धारणा कहाँ गई?—वही पतिव्रत धर्म की बात। वह सती होने की बात!"

लक्ष्मी तुरन्त तुनककर कहती—"वह मैं अब भी मानती हूँ। मैं अब भी उसी धारणा को स्वीकार करती हूँ। किन्तु बताओ तो, ऐसा समय है, आज! वह अनुकूल वातावरण है क्या आज! कहती हूँ, इस प्रकार तो रोहिणी भ्रष्ट हो जायगी, पतित हो जायगी। वह अभी दुर्बल है, निस्सहाय है। देखते तो हो, केवल एक माँ का अवलम्ब था, और वह भी पति के घर आते-आते खो चुका था। वह एकाकी और

शून्य-सी रोहिणी !...वह फूल की अधखिली पंखड़ी-सी रोहिणी, सच, आज दीन बन गई है ! वह अपरिचित बन गई है, बेचारी !..."

यह कहते हुए लक्ष्मी हँसती नहीं दीखती ! उसकी आँखें भर-भर आतीं। और जैसे गले की नसें भी फूल जातीं, वह रुक जाती। वह सब ओर से छूटकर उस रोहिणी की सीमा में बँध जाती।

यह देखकर तब महेशबाबू कहते—"लक्ष्मी, तुम ठीक सोचती हो, तुम समय की गति को पहचानती हो।"

तभी उन्हीं दिनों, एकाएक सुरेश स्वातन्त्र्य-आन्दोलन में जेल चला गया। सुरेश के पिता चाहते थे कि [redacted] का विवाह हो और वह गृहस्थी हो। इसी से उनके द्वारा जो एक स्थान पर विवाह की बात चली, वह पक्की भी कर ली गई। किन्तु सुरेश तो विवाह करना नहीं चाहता था और अभी तो बिलकुल ही नहीं चाहता था। लेकिन जो पिता थे, जिनका वह आत्मज था, उनका विरोध करना भी उसकी शक्ति से बाहर की बात थी। कदाचित् यही था, उसके जेल जाने का अर्थ। किन्तु जब रोहिणी ने सुरेश को छः मास की सजा होने का समाचार सुना, तो स्पष्ट ही उसे यह अच्छा नहीं लगा। तब सचमुच ही उसे अपने चारों ओर सूना-सूना और नीरस-सा वातावरण दिखाई दिया।

इधर लक्ष्मी ने रोहिणी के सामने अपना प्रस्ताव रख दिया था। वह क्यों ऐसा चाहती है और क्यों रोहिणी से ऐसा करने के लिए कहती है, इसका उसने अनेक युक्तियों द्वारा समाधान भी कर दिया था।

लक्ष्मी ने बताया था कि यह इस मानव का स्वभाव है, इसकी एक इच्छा है कि यह किसी के साथ मिले और बैठे। तुझे यही चाहिए रोहिणी ! सुरेश इसीलिए चाहिए। यह पाप नहीं है। तू जो सोचती है, यह तेरी भ्रष्टता भी नहीं है। और कहती है समाज, इसका विधान, सो बहन देख, तू बता, समाज का कोई आया तेरे पास ! ना, कोई नहीं आया। समाज रोते को देखकर हँसता है। उसे मूर्ख भी कहता है। सो, तू मूर्ख भी नहीं है और रोने के लिए भी नहीं है। जीवन है, तेरा यह नारी का जीवन, जरा इसका मोल तो देख ! इसकी महत्ता तो

 माप रोहिणी ! इसे असमय ही, ऐसे मत तोड़ दे। इसे यों मत मसोस

दे ! इसे खिलने दे ! हाँ, इसे फलने-फूलने दे रोहिणी ! ईश्वर यही चाहता है। यह भरा-पूरा विश्व भी यही चाहता है। तू माँ होती, तू एक बच्चे की जननी होती, तो निश्चय ही, मैं तुझे बस माँ बनी रहने के अतिरिक्त और कुछ न बनने की सीख देती होती। पर क्या करूँ अब तू जहाँ खड़ी है, तू जिस स्थिति में अपने को देखती है, उसमें अपनी आँखों देखे, तेरी यह जीजी शान्त नहीं रह सकती है। यह तुझे इस प्रकार देखकर हँस नहीं सकती है, रोहिणी ! बस, यह रो सकती है। यह अपने अन्तर-प्रदेश में चीख सकती है और पुकार-पुकार कर जैसे बिलकुल निर्बल दुर्बल वाणी में अपने ईश्वर से कह सकती है और उससे पूछ सकती है, ना, इस रोहिणी के लिए यही करना था, क्या ! इसे, इस छोटी आयु में यही दिखाना था, क्या !...

और अब, मानो रोहिणी भी, अज्ञात रूप से कोई साथी चाहती थी। जैसे सुरेश को वह चाहती थी। उसमें जो अशान्ति थी, आकुलता थी, निःसन्देह वह अनायास ही खो जाने वाली नहीं थी। वह अन्दर-ही-अन्दर रोहिणी को नोंच रही थी।

और यह सुरेश है, जो अकारण ही जेल चला गया है। जाने क्यों चला गया है जेल।' ऐसे जब रोहिणी सोचती और अपने-आप कहती, तो सचमुच वह खोई-सी रह जाती। वह अनुभव करती कि दुनिया भाग रही है, चल रही है और सब ओर से छूटकर वह अपनी गति को सार्थक कर रही है। किन्तु वह है एक, जो न अपनी गति बना सकती है, न दिशा देख सकती है। सच, जैसे नितान्त अन्धेरी, निरी अपरिचित और एकाकी वह इस बड़ी दुनिया में रह रही है और बस रही है।...

रोहिणी के मन का उद्वेलन, सचमुच उसे कभी भी शान्ति नहीं दे पाता। वह कभी भी उसका साथी नहीं बनता। उसके मन का जो चोर है, वह जैसे उस स्थिति से निकलना नहीं चाहता।

तब ऐसे, जब रोहिणी में खिन्नता और उदासीनता का भाव पैदा होता, तो उसे वह और भी अधिक व्याकुल बना देता। तभी उसका मन अपनी हीनतापूर्ण स्थिति को लक्ष्य करके कहता—'अब यह कैसे होगा

रोहिणी ! ना, यह नहीं होगा। सुरेशबाबू चाहें तो ! मैं चाहूँ तो ! सब मिट्टी हो गया ! सब राख हो गया !...'

किन्तु रोहिणी के मन की यह अवस्था भी टिकी नहीं रहती। वह तत्क्षण ही लोप हो जाती। वह जब फिर हँसती-खेलती दुनिया को आँख खोलकर देखती, तो तुरन्त अपने-आप एक थिरकन, एक मद-भरा उद्वेलन-सा पाती और अनुभव करती—'हाँ, ठीक कहती है, लक्ष्मी जीजी ! वह मुझे जिस रत्नाकर का गर्भ बताती है, और उसमें हीरे। माणिक-जैसे अमोल पदार्थों के रहने की बात कहती है, वही सत्य है जैसे मैं भी अधिकार रखती हूँ। मैं भी [redacted] स्थान पाना चाहती हूँ, जो मां का है और नारी का है।...'

यह सोचते-सोचते सचमुच ही रोहिणी जैसे किसी स्वर्गीय स्वप्न से भर जाती। वह थिरक उठती। उसकी नाड़ियों का जमा हुआ खून तीव्र हो जाता और गतिमय बन जाता।

तब ही, एक दिन अकस्मात् रोहिणी को सुरेश का पत्र मिला। जिसमें लिखा था—

"भाभी, तुम्हें यह समाचार महेशबाबू ने दिया होगा कि मैं जेल आ गया। एक दिन मैंने तुमसे कहा था कि इस प्रकार जेल जाना मैं देश-भक्ति नहीं मानता। और अब तो मैं यहाँ आने में कौतुक के अतिरिक्त और कुछ भी नहीं देखता।

जेल-निर्वासन में तुम अनेक बार मेरे सामने रही हो। मैं जिस सूनी और एकान्त कोठरी में बैठा हूँ इसमें तुम ऐसे दीखती हो, जैसे यहीं बैठी हो। महेशबाबू और उनकी पत्नी ने जो मुझसे कहा, निश्चय ही, वह तुम सुन चुकी हो। यह भी सत्य है कि तुम उस पर अपना मत भी दे चुकी हो। यही कारण है, कि मैं जेल आया हूँ और अपने पिता-जी की धारणा को नष्ट करने आया हूँ। पिताजी ने अभी मेरा विवाह निश्चित किया था और मुझसे उसे स्वीकार करने के लिए कहा था। तब इनकार तो मैं क्या करता! कैसे करता! हाँ, जो मुझे सरल और सुगम पथ दिखाई दिया मैं उस पढ़ लिया। यही तो अर्थ है मेरा जेल आने का।

महेशबाबू की पत्नी की तुम पर अगाध ममता है और मुझ पर

अपरिमित स्नेह ! शायद इसी से उन्होंने मुझे और तुमको पकड़ा है। मुझे आज भी याद आता है कि जिस हीरे को मेरे पिता ने काँच समझकर उपेक्षित किया था, उसीका जब मैं रमा भाई की ओर से सौदा करने गया, तो उस हीरे की महत्ता को समझकर मैं सचमुच लोभान्वित हुआ था। यही कारण है कि मैं रमा भाई से और अधिक बँध गया था। उसमें तुम्हारे स्नेह ने प्रोत्साहन दिया था। आज उसी हीरे के रूप में रमा भाई की पत्नी को विधवा की स्थिति में देखकर मैं शान्त नहीं हूँ। मैं अपने हृदय की इस विशाल खाई में उद्वेलन और चीत्कार ही देखता हूँ। यदि ईश्वर है और उसकी महत्ता तुम्हारे सामने है, तो उसी को साक्षी करके तुम सुरेश की ओर से इस बात को स्वीकार करो कि सुरेश कल की तरह आज भी किसी लालच से नहीं भरा है। यह अपनी पाशविक और दैहिक मनोवृत्ति को इसलिए नहीं स्वीकार करता कि उनमें न तो कोई प्रेरणा देखता है और न जीवन ही है। यही कारण है कि जब-जब तुम्हें पत्नी के रूप में स्वीकार करने का प्रश्न मेरे सामने आया है, तब-तब मैंने अपने में तुम्हें एक सुवासित और ममतामयी नारी के रूप में पाया है। मैंने सदा ही, तुम्हारी अपनी सुन्दरता को नहीं देखा है। मैंने तुम्हारी आत्मा की उस अनुपम आभा को ही देखना चाहा है, जिसे मैंने सत्यम्-शिवम् को आराधना में व्याप्त हुआ देखा है। महेश बाबू की पत्नी और तुम्हारी इच्छा के अनुरूप यदि यह हुआ, तो सचमुच मेरे लिए सुखकर हुआ, अनुपम हुआ।

और क्या कहूँ ! और क्या लिखूँ ! स्वास्थ्य का ध्यान करना।

तुम्हारा—सुरेश"

पत्र समाप्त हो गया। किन्तु रोहिणी का मन जैसे हर्षित नहीं हुआ। वह बरबस जैसे गहरे अंधकार में खो गया। तभी उसने अपनी देर की रुकी हुई सांस को छोड़कर कहा—'आह, सुरेश बाबू ! यह सब तो जानती थी मैं ! विवाह के समय भी जानती थी...।'

और तभी वह झटके के साथ खड़ी हुई और बरबस बोल उठी—"मैं तो आज जैसे कुछ नहीं सोच पाती, कुछ नहीं देख पाती ! और यह

सुरेशबाबू है, जो अब कहने बैठा है, जो अब सोचने बैठा है। यह अब रोहिणी को हीरा और माणिक बताने बैठा है, भोला कहीं का !...

तभी लक्ष्मी उसके आँगन में आकर खड़ी हो गई। रोहिणी की और उसकी चार आँखें हुईं। देखकर रोहिणी एक बारगी विह्वल और अधीर होती हुई बोली—"अरे, अब तुम क्या सोचती हो, जीजी! तुम क्या देखती हो, फिर इस रोहिणी की माँग में सिन्दूर पूरना चाहती हो, लो, पढ़ो सुरेश बाबू की चिट्ठी। कहती थीं, वह स्वीकार न करेंगे। पर अब तो स्वीकार है, उनको। जो मुझको नहीं अब! हाँ, मुझको नहीं !..."

रोहिणी की बात सुनते-न-सुनते लक्ष्मी ने पत्र पढ़ लिया। तब उसने रोहिणी के कन्धे पर हाथ रखकर कहा—"तो खिन्न क्यों हुई, पगली! रोई भी! हुश, ऐसे हुआ करते हैं, क्या! पढ़ा तो, भावुकता का पत्र है, जिसमें सुरेशबाबू ने स्पष्ट कह दिया है कि उनके मन में तुम्हारे लिए आज क्या, पहले से ही स्थान बना है।" कहते-कहते लक्ष्मी ने क्षणेक हँसा और उसने उसी प्रकार रोहिणी की ओर देखा।

रोहिणी ने कहा—"जीजी, जो जीवन टूट गया, टूट गया। अब उसे जोड़ने से क्या? उसे इस प्रकार मनाने से क्या ?..."

"अच्छा, अच्छा! आ, मेरे घर चल! चल।"

और लक्ष्मी ने उसे अपने साथ ले लिया।

साथ जाकर जो रोहिणी ने लक्ष्मी के घर में पैर रखा, तो उसे देखते ही महेशबाबू ने हँसकर कहा—"आओ रोहिणी, आओ। सुरेश-बाबू का पत्र आया है। पत्र तुम्हें भी दिया है? उसने यही लिखा है।"

रोहिणी ने बैठते-बैठते कहा—"जी, मिला है, पत्र।"

तभी लक्ष्मी ने कहा—"और सुना तुमने, अब रोहिणी को जाना है। इसने रास्ते में मुझसे कहा है।"

"यह तो ठीक है। यह तो अच्छा है, रोहिणी!" सुनते ही महेश-बाबू ने कहा।

"पर सिद्धान्ततः मैं नहीं मानती। मैं इसे स्वीकार नहीं करती।" लक्ष्मी ने कहा।

यह सुनकर महेशबाबू ने अपने हाथ में ली हुई किताब को सामने टेबिल पर रख दिया। और तब लक्ष्मी और रोहिणी की ओर देखकर कहा—"लक्ष्मी, सिद्धान्ततः मैं इसे स्वीकार करता हूँ। तुम अपनी जानो। हाँ, जो नीयत का प्रश्न है, मैं उसका विरोध करता हूँ। जेल जाना ही, मैं देश-भक्ति नहीं मानता। मैं तो सोचता हूँ, हमारे सामने जो रचनात्मक कार्य है, उसी को करना अधिक व्यक्ति का लक्ष्य हो, तो ठीक! अन्यथा इस प्रकार जेल जाना तो मैं किसी अंश में भी व्यावहारिक नहीं देखता हूँ।"

"लेकिन कांग्रेस का तो विधान ही यह है। उसका कहना ही यह है।" लक्ष्मी ने कहा।

महेशबाबू ने कहा—"न, न, लोगों ने विधान समझा ही नहीं है। और इससे जो महत्त्वपूर्ण बात है, वह यह है कि लोगों ने इस सेवा का व्रत लिया ही नहीं है। देश, समाज और धर्म की सेवा के लिए, हमें जो आत्म-बल चाहिए, उसे लेना तो दूर, हमने उसकी कल्पना को भी नहीं छुआ है। ऐसी अशिक्षित, असभ्य और स्वार्थपूर्ण हुई फौज को इकट्ठी करके इस युद्ध के नायक ने जैसे पहले विजय नहीं पाई, उसी प्रकार मुझे इस बार भी असफलता ही स्पष्ट दिखाई देती है। लक्ष्मी,—" महेशबाबू ने और अधिक गम्भीर होकर कहा, "इस जीवन के लिए तप चाहिए और लगन चाहिए। इस वर्ग के लोगों की भीड़ में क्या तुम्हें ऐसी भावना दीखती है, जो 'सत्यं-शिवं' की है और जिसकी जड़ 'वसुधैव कुटुम्बकम्' रूपी भावनाओं के धरातल पर टिकी है। ना, इस युद्ध के सेनापति को छोड़कर किसी की भी आत्मा से ऐसी घोषणा नहीं होती दीखती। तब क्या कहें हम, किससे कहें हम!"

"और रोहिणी," उन्होंने रोहिणी की ओर देखते हुए कहा, "तुम में भावना हो और इच्छा हो, तो जेल जाने की अपेक्षा किसी कार्य में

लग जाओ।" यह तुम्हारे सामने शहर-का-शहर पड़ा है। इसके आस-पास ही हमारे ग्रामीण भाइयों का समाज बसा है। चाहो तो, करो इसमें काम। इन सबको सचमुच ही पथ चाहिए और उसके लिए पथ-वाहक! मैंने तो लक्ष्मी से अनेक बार कहा है। आज तुमसे भी यही कहता हूँ। नहीं चाहूँगा कि मैं अपनी इस इच्छा को तुमसे छिपाऊँ कि 'जो वैवाहिक जीवन था, उसका जो रस था, जो अनुभव था, किसी प्रकार तो वह तुमने पाया। वह देखा तुमने। और पुरुष हो या नारी यह एक विवाह क्या, हजार विवाह भी करे तो भूखा रहेगा और उसके प्रति इच्छित रहेगा। देखता हूँ, तुम तरुणी हो। तुम तरुणाई की दहलीज पर अभी-अभी आकर खड़ी हुई हो। जो अपने साथ जाने कितनी कुचली और दबी हुई इच्छाएं लिये हो। किन्तु, जीवन का यही तो दर्पण नहीं है, रोहिणी! वह और है। वह सेवा है। वह दरिद्रनारायण की उपासना है। तुम तपस्विनी बनोगी और इस महान् व्रत को लेकर इस धनिक और कलुषित समाज के प्रहारों से कुचले अपने आत्मीयों को छाती से लगाओगी, उन्हें अन्धकार से निकलने की प्रेरणा दोगी, तो सचमुच तुम आज की रोहिणी नहीं रहोगी। तब तुम महान् नारी होगी। तुम पूजनीया होगी। तब तुम सच्चे अर्थों में देवी होगी, रोहिणी! तब तुम जाने कितने असंख्य भाइयों की बहन और माँ बन जाओगी। तब तुम अपने इस संकुचित जीवन को छोड़कर विस्तृत बन जाओगी और सबकी होकर सबकी हो जाओगी।"

यह कहते-कहते महेशबाबू ने लक्ष्मी की ओर देखा। उसी ओर उन्होंने तनिक होंठों पर हास्य लाकर कहा—"क्यों लक्ष्मी, मेरा यह कहना तुम्हें नहीं रुचा क्या? रोहिणी के लिए यह हितकर नहीं हुआ। खैर, जाने दो। देखती हो, भावुक तो हूँ ही मैं। लिखता भी यही हूँ और सोचता भी यही हूँ। मैं तो तुमसे आज फिर कहता हूँ, भले ही, मेरी यह भावुकता व्यावहारिक न हो, पर मैं तो इसी दर्पण में अपना मुँह देखता हूँ। इसी को जीवन मानता हूँ। मैं मरा तो, मैं जिया तो, इस सबकी भूमिका को मैं सदा एक सूत्र में लिये नित-नित की तरह आज भी यह देखता हूँ कि हम जिस लिए यहाँ आये हैं, निःसन्देह

उससे दूर हो गए हैं, और भ्रष्ट हो गए हैं। हम तो कुत्ते-बिल्ली-जैसी स्थिति को भी अब पार कर गए हैं। यह पुरुष और नारी का संयोग, यह हमारे सबके बीच का आदान-प्रदान आज निकृष्टतम हो गया है। लगता है, वह हमारा अमर लक्ष्य हमसे दूर हो गया है। हम विलासी हैं, हम स्वार्थी हैं, हम दम्भी हैं, इन तीन इच्छाओं पर केन्द्रित हुआ यह मानव, अब मानव नहीं, राक्षस बन गया है। यह धूर्त और लम्पट हो गया है, लक्ष्मी देवी! जो पाप है, यह! इस मानव का दुराचार है ,यह !..."

लक्ष्मी और रोहिणी ने देखा कि महेशबाबू का मुँह जैसे क्रोध से आच्छन्न हो गया और लाल हो गया। अपनी बात समाप्त करके महेश-बाबू ने कुर्सी को छोड़ दिया। उन्होंने अपने हाथों की दोनों मुट्ठियों को बाँध लिया और कमरे की खुली खिड़की के पास जाकर अपना मुँह अन्तरिक्ष की ओर कर लिया।

तभी देर की रुकी हुई साँस को छोड़कर रोहिणी ने लक्ष्मी की ओर देखा। उसने उसी प्रकार देखते हुए कहा—"आज मैंने बहुत सुना। सुन्दर और अनुपम सुना।"

"तो जेल जायगी? या तू..."

"नहीं, जीजी! मैं जेल नहीं जाऊँगी। मैं यहीं किसी काम में लग जाऊँगी।"

तब हठात्, महेशबाबू ने खिड़की से हटकर कहीं जाने के उद्देश्य से अपनी छड़ी उठाकर रोहिणी की ओर देखते हुए कहा—"मैं आज सुरेश को पत्र लिखूँगा। तुम्हें उसका पत्र मिल गया, पत्र में यह भी बता दूँगा। और कुछ? विवाह की बात पर कुछ?"

यह सुनकर रोहिणी ने लक्ष्मी की ओर देखकर कहा—"और कुछ नहीं। हाँ, कुछ नहीं।"

"अच्छा, अच्छा।"

और तभी उन्होंने बाहर की ओर जाते-जाते लक्ष्मी को सम्बोधित करके कहा—"कहीं मेरी इतनी लम्बी बात पर तो रोहिणी की यह धारणा नहीं बनी। भाई, मेरी तो बात ही यह है, पर सबकी थोड़े ही

है, जो व्यावहारिक और सबके लिए निभने वाली नहीं है। समझी रोहिणी, तुम्हारी जो स्थिति है, उसे देखकर तो, तुम्हें ही नाप-तोल करनी है।"

रोहिणी ने उनकी ओर देखकर कहा—"जी, कुछ नहीं। ऐसा कुछ नहीं।"

महेशबाबू चले गए।

उनके पीछे ही लक्ष्मी ने कहा—"सुना, यह है इनका आदर्शवाद और व्यवहारवाद! मैंने यह नित-नित सुना है और अपने हृदय के जाने कितने गहरे अन्धकार में इसे छिपाकर रखा है।"

रोहिणी ने कहा—"तुम भाग्यशाली हो जीजी, जो ऐसा पति पाया है तुमने।"

लक्ष्मी ने कहा—"मुझे अपनी इस विपन्नता और आये दिन की आर्थिक चिन्ता में जो घुलना पड़ा है और इस प्रकार सूखना पड़ा है, तो इसलिए ही कि मैंने देवता-सा पति पाया है। मैंने अपनी इसी निधि को जीवन के एकान्त में सँजोया है, रोहिणी!"

और तब, जब रोहिणी ने इस पर कुछ नहीं कहा, तो कुछ देर की चुप्पी को तोड़कर लक्ष्मी ने कहा—"देख रोहिणी जो बात है, यह है। यह तो तूने भी देखा कि सुरेश तुझसे विवाह के लिए सहमत है। अब तेरा जो विचार है और निश्चय है वह स्वयं तेरे ऊपर निर्भर है। दो पथ हैं, जो सामने हैं। एक सुन्दर है, सजीला है, दूसरा जो सेवा का पथ है, वह कँहे,टीला पथरीला है और नाना प्रकार की आपत्तियों से भरा है। यह जीवन-तप है और वह जीवन भोगने और इसका रस लेने का ढंग है।"

तभी रोहिणी ने कहा—"भोग में रस नहीं है, जीजी! व्यथा है, पीड़ा है।"

"हाँ सत्य यही है।"

"तब! तब यह सब क्यों? इस रोहिणी के लिए ही क्यों?"

"यह सुनकर लक्ष्मी ने रोहिणी के सिर को अपनी छाती के समीप

खींचकर कहा—"मुझे यही करना है, मेरी रानी ! तू अभी दुर्बल है। तू अभी अजान है।"

रोहिणी ने तब बरबस ही अपने सिर को लक्ष्मी की छाती पर रखते हुए कहा—"जीजी, महेशबाबू ने जो कहा, जो मेरे लिए कहा, सच, वह सत्य कहा, अनुपम कहा।"

"तो तू मानेगी, यह ! तू सेवा के काँटों-भरे पथ पर अपने कोमल पग रख सकेगी क्या ?"

"हाँ, क्यों नहीं रख सकूँगी ? मैं तुम-जैसी जीजी और महेशबाबू जैसे भाई पाकर भी, न चल सकूँगी ? मैं न निभ सकूँगी। जीजी जब पथ-भ्रष्ट हूँगी, तो तुमसे सहारा माँग लूँगी। मैं जरूर माँग लूँगी।"

तब उस समय लक्ष्मी जीजी के मन में जैसे ममता का स्रोत उमड़ आया था, जो बरबस ही, उस रोहिणी पर निछावर हो गया था। उसने रोहिणी के सिर पर हाथ फेरते हुए बड़े स्तब्ध स्वर में कहा—"मैं तुझे सभी कुछ दूँगी, पगली ! बे-माँगे ही दूँगी।"

यह सुनकर रोहिणी ने जैसे प्रफुल्लित होकर हँस दिया। उसने उसी प्रकार आह्लादित होकर लक्ष्मी के गुदगुदी करके उसे भी हँसा दिया।

घर में बात करने, रहने-सोने और उठने-बैठने के लिए, रोहिणी को एक साथिन मिल गई है। जो उसकी चिर-परिचित रामू की माँ है। साठ वर्ष की तो होगी रामू की माँ; अब रोहिणी ने अनायास ही उसे पा लिया है। वैसे रमाकान्त के सामने भी उसका आना-जाना था और उठना-बैठना था। और अब तो रोहिणी का घर ही उसका घर बन गया है। एक ने दूसरे को समझ लिया है। मुहल्ले वाले इस बात को जानते हैं कि इस बुढ़िया का एक बेटा था रामू, जो फौज में जाकर मर गया था, पति उससे पहले ही मर चुका था। तब से बेटे के बाद

से, जैसे इस बुढ़िया का जीवन ही बदल गया था। घर लोग हैं, जो अब भी उसे 'रामू की माँ' कहकर पुकारते हैं। जो उसे अच्छा लगता है और सुखकर लगता है। रामू की माँ को यदा-कदा अपना पुत्र याद आता है, रोहिणी को अपना पति। एक का घाव अभी ताज़ा बना है और दूसरी का सूख गया है। किन्तु जहाँ तक जीवन से सन्तुष्टि का प्रश्न है वह मानो दोनों के लिए एक-सा बना है। इसी से, दोनों ने एक-दूसरे को पा लिया है और समझ लिया है।

रामू की माँ में एक आदत है, जिसकी अब तो वह अभ्यस्त बन गई है। वह जहाँ भी अवकाश पाती है और किसी से बात करने बैठती है, तो अपने पुत्र का कीर्ति-कलाप करना वह जैसे आवश्यक समझती है। वह जैसे इसी में सुख पाती है।

इसी से, उस रात भी, जब रोहिणी लक्ष्मी के घर से लौटकर आई और खा-पीकर चरपाई पर पड़ गई, तो वहीं, दूसरी चारपाई पर पड़ी हुई रामू की माँ कुछ कहना चाहती थी और सुनना चाहती थी। निश्चय ही वह तब रामू की उस बात का उल्लेख करना चाहती थी जब कि उसका रामू जहाज पर चढ़कर सात समुद्र पार गया था, और वहाँ कैसी हिम्मत के साथ दुश्मन की फौज से लड़ा था तथा अपनी चिट्ठी में उसने इसके अतिरिक्त और क्या-क्या लिखा था।

किन्तु उसने देखा रोहिणी सो गई है या जैसे सोने लगी है। लेकिन रोहिणी सोई नहीं है। वह जाग रही है। वह आँखें मूँदे-मूँदे जाने कहाँ-के-कहाँ के विचार लिये उनमें डूब गई है।

तभी अपने लोभ को संवरण न करते हुए रामू की माँ ने हँकोरा — "बहू..."

"हाँ, रामू की माँ! क्यों?"

"सो गई! अभी से सो गई!"

"नहीं, नहीं, रामू की माँ!" रोहिणी ने करवट ले ली।

रामू की माँ ने कहा—"जाने कितनी लम्बी रात है, काली-काली! काटते नहीं कटती!..."

"हाँ, तुम ठीक कहती हो, रामू की माँ!"

"जब रामू था—मेरी गोद में था और दूध पीता था, तो सच, ऐसी एक रात क्या, चार रातों का सोना भी कम दिखाई देता था। वह समय ही जवानी का था और नींद का था। और उत्ता रामू, जहाँ रात को जागा, तो झट, दूध पीने को चिपटता था। वह चिपटा ही रहता था, रात-भर !..."

और तब अपने-आप ही रामू की माँ ने साँस भरकर उसे छोड़ते हुए कहा—"अब क्या रखा है, बहू ! यह जिन्दगी किसी कुए-पोखर में खप जाय, यह कट जाय तो ठीक !"

"क्यों, क्यों, रामू की माँ ! तुम्हें तो अभी और जीना है। तुम्हें इस दुनिया में और रहना है।"

तब रामू की माँ ने इसका उत्तर नहीं दिया। उसने अपना मत भी प्रगट नहीं किया। उसने तब रोहिणी की ओर देखकर कहा—"बहू, आज मैं अपनी एक सहेली के यहाँ गई थी। जो आज मेरे-जैसी ही बुढ़िया हो गई है। आज अचानक वह मुझे रास्ते में मिल गई। देखते ही मुझे पहचान गई। मैं तो समझती थी कि वह मर गई होगी पर नहीं मेरी तरह उसकी उमर भी बढ़ गई है।"

रोहिणी ने पूछा—"तुम उसके घर गई थीं क्या ? वहाँ कुछ खाया-पिया होगा ?"

"हाँ, बहू, वह अपने घर ले गई। उसकी दो बहुएं हैं, उन्हीं को दिखाने ले गई थी। पर वहाँ कुछ खाना तो दूर, मुझे वहाँ टिकना एक-एक मिनट भारी हो गया। एक वह दिन था कि जब वह सन्तान के लिए छटपटाती थी और तरसती थी। वह दिन-रात पूजा-ध्यान में लगी रहती थी। भक्तों की सेवा करती थी। पर उसने पाया क्या ? दुःख और क्लेश के सिवा उसे कुछ भी नहीं मिला। उसने रो-रोकर अपनी कमर दिखाई, जो बेटों ने मार-मारकर सुजा दी थी। बहुएं उसे फूटी आँखों भी नहीं देखना चाहती थीं। मैं वहाँ जब तक बैठी रही, उससे बेटों और बहुओं की बुराई ही सुनाती रही।"

"तो बेटे उसे मारते हैं ! ऐसा मारते हैं ! राम-राम !"

"पर बहू मैं तो सोचती हूँ, कसूर उसी का है। उस चुड़ैल ने ही

उन बहुओं के नाकों दम कर रखा है। वह बहुओं का सजना अपनी फूटी आँखों नहीं देख सकती। उनका बनना, सँवरना और इठलाकर चलना उसे नहीं सुहाता। बहुएं माँग काढ़ती हैं तो उसे बुरा लगता है। अपने पतियों से हँसकर बोलती हैं, तो उसे खिसियाना आता है। क्यों बहू, है ना वह कलमुँही बुढ़िया! और तुझे पता नहीं बहू, जब वह जवान थी, तो वह सभी-कुछ करती थी और करती रहती थी। और उस पर तुर्रा यह कि जिन बेटों से पिटती है, उन्हीं के लिए अब भी मुरादें माँगती है,—ईश्वर से आशीष माँगती है, वह!..."

यह सुनकर रोहिणी ने कुछ नहीं कहा। उसने रामू की माँ द्वारा कथित बुढ़िया की आलोचना को सुनकर कुछ तीव्र हुए भाव में अपने-आप कहा—"हमारा समाज ऐसा ही है। हमारे बूढ़ों ने जिस बात को किया है और भोगा है, उसी को न करने के हेतु तो उन्होंने बीड़ा उठाया है। आज उसी को उन्होंने पाप कहा है।"

देखा कि रामू की माँ ने सोना आरम्भ कर दिया। तभी उस ओर से मुँह फेरकर रोहिणी ने सामने के गहरे अंधकार को ओर देखते हुए कहा—'यह जीवन की दलदल और कीचड़ सभी के लिए है। सो ही तेरे लिए भी है। इसका सोच क्या! चिन्ता क्या!...'

किन्तु दिखता था, उस क्षण जो रोहिणी के मन में फिर रहा था, वह बार-बार उसकी जिह्वा पर आकर भी बाहर नहीं आता था। जो अन्दर-ही-अन्दर हिर-फिर रहा था।

तभी रोहिणी ने अपनी एक बाँह को माथे पर रखकर कहा—'जो जीवन का पाप और पुण्य है, वह मुझे तो दीखता है, यह लोगों ने न आज तक माना है, न मानना चाहा है। उन्होंने इसे समझा भी नहीं दीखता है, और एक मैं हूँ जिसने व्यर्थ ही इन दो धाराओं के बीच में अपने को डुबा देना चाहा है। कभी सुरेश की ओर देखना चाहा है और कभी वैराग्य की ओर। पर मैं तो कहती हूँ, यह मेरी भ्रान्ति है और लम्पटता है। शायद मैंने अभी जीवन को नहीं समझा है। मैंने समझना भी नहीं चाहा है!.....'

उसी समय रोहिणी उठी और दूसरे कमरे में चली गई। उसने

लालटेन जलाई और सुरेश के लिए पत्र लिखने बैठ गई। वह लिखने लगी—

"सुरेशबाबू,

पत्र मिला। आप जिस उद्देश्य की पूर्ति के लिए जेल गए हैं, उसे पत्र से जानकर मैं सचमुच आश्चर्य में हूँ। फिर भी आप जो जेल गये हैं, आपके इस पौरुष को देखकर मैं सराहती हूँ। वैसे, आपके पत्र की जो भावना है, उसे पाकर मैं दुखी हूँ। देखती हूँ, अपनी इस विधवा अवस्था में आप-सबके बीच, एक बार फिर खिलौना बनने चली हूँ। प्रार्थना करती हूँ और आपसे इस सँजोई हुई भावना को दूर करने की आशा करती हूँ। मैं दुर्बल हूँ और शिथिल हूँ। इसलिए आप-जैसे अपने आत्मीयों से बल पाने की इच्छा करती हूँ, पथ-भ्रष्टता की नहीं।

शेष क्या! अपनी जेल-अवधि पूरी करके तुम लौट आओ, इसकी प्रतीक्षा करूँगी। तब सबकी तरह मैं भी आशा करूँगी कि तुम किसी सुन्दर-सी दुलहिन से विवाह करोगे और अपने पिताजी की इच्छा पूरी करोगे। यही है मेरी विनय और भाभी की सीख। और यह तुम्हारी भाभी तो है ही एक और एकाकी, जो हँसी-खुशी तुम्हारी दुलहिन के पास बैठकर काट देगी अपने इस जीवन के अभागे और दुर्भागी दिन। मुझे इसी में सन्तोष और सुख होगा, सुरेशबाबू।

तुम्हारी भाभी—रोहिणी"

रोहिणी ने लिफ़ाफे पर पता लिखकर उसमें पत्र रख दिया। उसने लालटेन को बुझा दिया और बाहर आकर चारपाई पर पड़ते-पड़ते अपने-आप कहा—'रोहिणी, अब तक जो-कुछ हुआ है, अच्छा नहीं हुआ। यह जो सुरेशबाबू को पत्र लिखा है, यह भी क्या ठीक हुआ है। नहीं, यह भी विपरीत हुआ है।'

'तब!···तब!' रोहिणी ने अपनी छाती को दाबकर एकाएक फिर सोचा, 'जो उचित नहीं है, जहाँ समता नहीं, वहाँ जाकर और बैठकर जीवन बिताना क्या हीनता का द्योतक न होगा? मैं कहती हूँ, जरूर होगा। मेरा एक तो विवाह का विचार नहीं; यदि हो, तो वह क्या इस सुरेशबाबू के साथ ठीक होगा। यही आज का आदर्शवादी और

साम्यवादी सुरेशबाबू कभी भी यह कह सकेगा कि मैंने इस रोहिणी को कूड़े के ढेर से उठाया था, इसे भूखी मरती-मरती बचाया था, मैंने !···'

किन्तु दीखता था, इतना-भर कहने के बाद भी रोहिणी को सन्तोष नहीं था। उसका मन अभी व्याकुलता और व्यग्रता से भरा था। तभी उसे लग रहा था कि जैसे घर के उस अन्धकार में सुरेश उसकी चारपाई के पास आकर खड़ा हो गया था। जो रोहिणी की ओर हाथ पसारे था। कहने लगा था, आओ रोहिणी आओ ! हम-तुम एक पथ पर जायं और इसी अन्धकार में किसी भी ओर बढ़ जायं ! देखती हो, यह पथ विशाल है, यह सीमा-रहित है। आओ, हम तुम भी एक-दूसरे में मिल जायं ! दोनों अपने को भूल जायं, और ब्रह्माण्ड के अटूट और अखण्ड अन्धकार में अपनी अहम्मन्यता और दासता को छोड़कर इस अखिल विश्व के पवित्र और सुन्दर पात्र बन जायं, रोहिणी···!

और रोहिणी जैसे अब उठ जायगी। वह सुरेश के उस मधुर आमन्त्रण को पाकर उसके उन पसारे हुए हाथों पर टिक जायगी, वह उसके आगे अपने को समर्पित कर देगी।

कि तभी उसने अस्फुट-से स्वर में कहा—"सुरेश बाबू···"

उसी क्षण रामू की माँ ने चौंककर पूछा—"बहू, कुछ तुमने कहा ? पानी माँगा क्या ?"

तब जैसे रोहिणी पर कोई बड़ा-सा पहाड़ गिर गया था। उसने रुद्ध हुए स्वर में कहा—"कुछ नहीं, कुछ नहीं रामू की माँ !"

और उसने अपने मुँह पर कपड़ा डाल लिया था और सोने के लिए बरबस ही प्रयत्न आरम्भ कर दिया था।

एक दिन एकाएक रोहिणी के घर रमाकान्त के मामा का छोटा पुत्र और उसकी भाभी आ गए। इन दो अतिथियों के आने से उस सूने

घर में कुछ चहल-पहल पैदा हुई और रौनक हुई। मामा के बड़े लड़के की बहू रमाकान्त के मरने की खबर सुनकर आई थी। उन्हें इस दुःखद घटना की सूचना अभी मिली थी। कारण यह था कि रोहिणी ने रमाकान्त के किसी भी आत्मीय को यह खबर नहीं दी थी। यह भाभी रमाकान्त के विवाह में आई थी। तब दो दिन रह सकी थी और चली गई थी। जो छोटा देवर उसके साथ में आया था वह रोहिणी के सामने आज पहले-पहल ही आया था।

मामा के लड़के की यह बहू, जो रोहिणी की बड़ी भावज थी, रोहिणी की जिस दुःखद अवस्था की कल्पना करके आई थी वैसा वह नहीं देख पाई। उसने रमाकान्त की मृत्यु का समाचार पाकर अपने मन में सोचा था कि जिस रमाकान्त को गये इतना समय हो गया और वह अपने पीछे कुछ जमा-पूँजी भी नहीं छोड़ गया, तो निश्चय ही वह अपनी स्त्री को निपट उजाड़ जंगल में भटकने के लिए बैठा गया है। वह जीवन-भर के लिए उसे वैधव्य और भूख की वेदना दे गया है। उसका मन कह रहा था, जाने कैसे फटे हाल होगी, वह बेचारी रोहिणी! कहाँ से खाती होगी और कैसे जीवन की अन्य आवश्यकताएं पूरी करती होगी। किन्तु आकर जो देखा—मानो उसकी सारी कल्पनाओं का रंग बेरंग हो गया। देखा, रोहिणी के हाथों की काँच की चूड़ियों का स्थान सोने की चूड़ियों ने ले लिया है। जो सुहागिन रोहिणी में आभा थी, उसमें भी कोई अन्तर नहीं आ पाया है। अपितु, जैसे यौवन और अधिक चढ़ाव पर आकर चमक गया है और सुन्दर बन गया है।

तब, यह समझ-देखकर, मानो उस भाभी की सारी समवेदना का रूप बिना तड़पे और मचले ही, जहाँ-का-तहाँ रह गया, वह ऊपर नहीं उठा और उसने मन-ही-मन में एक शंका, भय और जिज्ञासा को लिये, स्पष्ट ही न उससे कुछ कह पाया, न उसकी सुन ही पाया।

मामा के इस छोटे पुत्र का नाम है अजयकुमार, जो इसी साल बी० ए० की अन्तिम परीक्षा देकर आया है। रमाकान्त के विवाह से लौटकर जब भाभी ने रोहिणी के रूप और गुण की प्रशंसा अपने घर में जाकर की, तो अजय उसीसे बहुत प्रभावित हुआ था। इसीलिए वह आज

अपनी भाभी को देखने आया है। जो विधवा हो गई है अब! अपंग और अकेली हो गई है अब! अजय और रमाकान्त में प्रेम था और सामीप्य भी था। उसने रोहिणी से भी कई बार अजय का उल्लेख किया था और बताया था कि अजय जहाँ परीक्षा से छूटेगा, तो यहाँ दौड़ा आयगा। लेकिन, वह इस अवस्था में आयगा, ऐसी रोहिणी के पास आयगा। बस, अपने इस दुःख को समेटे अजय न रोहिणी के साथ हँसा था, न अधिक बोला था।

लेकिन अजय को पाकर और देखकर रोहिणी को हर्ष हुआ। उसे अजय के रूप में एक साथी के मिलने का भान हुआ। इसीसे, उसने भाभी से कहा—"अजयबाबू शरमाते हैं। दीखता है, कम बोलते हैं। जैसा सुना, मुझे यह वैसे ही दीखते हैं।"

भाभी ने कहा—"नहीं बहू, अजय बड़ा बातूनी है। रमाकान्त से मिलने और तुझे देखने की इस साल-भर में इसने एक क्या, अनेक चेष्टाएं की हैं। अभी बोला नहीं है। खुला नहीं है। रमाकान्त के वियोग की इसके अन्दर भी आँधी उठी है। जो इसे मसोस रही है और अशान्त बना रही है।"

इस प्रकार तीन-चार दिन रहकर उस भाभी ने लौट जाने का विचार किया। इसी अभिप्राय से उसने रोहिणी से कहा—"बहू, मैं सोचती हूँ, तुम भी साथ चलो। अब वहीं रहो। दो रोटियाँ तो खानी हैं, यहाँ नहीं तो वहीं सही। मुझे आज जाना है।"

रोहिणी ने कहा—"भाभीजी, अभी से जाना है क्या! इतनी जल्दी जाना है। ना, अभी नहीं! कम-से-कम एक सप्ताह नहीं।"

तब भाभी ने पूर्ववत् कहा—"घर अकेला है, बहू! मुझे अजय के भाई के खाने-पीने की भी चिन्ता है।"

रोहिणी ने निराश होकर कहा—"अच्छा!"

उसी समय अजय वहाँ आया। उसकी भाभी ने पूछा—"अरे गाड़ी कितने बजे जायगी, अजयकुमार? चलना नहीं है क्या?"

अजय ने आश्चर्य से पूछा—"आज ही चलना है क्या?"

 भाभी ने कहा—"हाँ, नहीं तो कब?"

उसी समय रोहिणी ने कहा—"सुनो भाभीजी, तुम तो जा रही हो, तो क्या अजयबाबू को भी लिये जा रही हो ? मेरी विनय है, इन्हें छोड़ जाओ।"

भाभी ने अजय की ओर देखकर कहा—"बोल अजय, तुझे रहना है तो रह जा। मुझे स्टेशन पहुँचा दे, मैं अकेली ही चली जाऊँगी।"

अजय ने एकबारगी कहा—"अच्छी बात है, मुझे यहाँ रहना स्वीकार है। आज तुम्हें रेल पर चढ़ा आऊँगा और एक सप्ताह बाद ही मैं इन भाभीजी को लेकर आ जाऊँगा। क्यों भाभीजी," उसने रोहिणी की ओर देखा और पूछा, "आपको मेरा भी प्रस्ताव स्वीकार है या नहीं ?"

रोहिणी ने हँसकर कहा—"मुझे स्वीकार है।"

फलस्वरूप उसी दिन शाम की गाड़ी से अजयकुमार रोहिणी के साथ जाकर अपनी भाभी को गाड़ी पर चढ़ा आया और हँसता-हँसता घर लौट आया। घर में घुसते हुए उसने रोहिणी से कहा—"बड़ी भाभी चली गई, तो समझो मुझे छुट्टी मिल गई।"

यह सुनकर रोहिणी ने हँसते हुए पूछा—"तुम ऐसी सीधी और भली भाभी का भी बन्धन मानते हो, अजयबाबू ?"

अजय ने कहा—"मैं यह गलत नहीं मानता हूँ। ठीक मानता हूँ, भाभी। मैं घर-भर में इन्हीं से डरता हूँ। शायद तुमने नहीं सुना, मैं बचपन में अपनी इसी भाभी का दूध पीकर पला हूँ। मैं इन्हें माँ मानता हूँ।"

"तो डर क्यों ? उनसे दुराव क्यों ?"

यह सुनकर अजयकुमार हँसा। वह बोला—"यह दुःख की बात नहीं है भाभी, सम्मान की बात है। मुझे उनके आदेश का पालन करना पड़ता है। उनके नियत किये समय पर भोजन कर लेना पड़ता है। समय पर सो जाना पड़ता है और उठ जाना पड़ता है। तुम्ही बताओ, ऐसे शासन में रहकर, और उनके समय की ऐसी नाप-तोल देखकर, मुझे क्या, किसी को भी ऊब आ सकती है। कल तुमने देखा न, शायद एक-दो रोटी कम खाई होंगी। पर भाभीजी का माथा तो चढ़ गया।

उन्हें कहने को आधार मिल गया कि कहीं बाज़ार में चाट-पकौड़ी खाई होगी। यहाँ आकर ज़रूर तूने बदपरहेज़ी की होगी। कहो, थी न उल्टी बात! पर उन्हें यही सब सुहाता है। मुझे भी यह सब सुनना शोभा देता है। और भाईजी तो आदी हो गए हैं, इन बातों के,—मानो चिर-अभ्यस्त!..."

"और तुम अभ्यस्त बनने जा रहे हो! कहो धीरे-धीरे बन रहे हो," रोहिणी ने मुसकराकर कहा, "अच्छा है अजयबाबू, ऐसी ही आदत एक दिन काम आयगी और तुम्हें सुख और सन्तोष दे पायगी।"

अजय ने जैसे अपनी ही बात लेकर कहा—"मैं अपनी भाभी को एक कुशल गृहिणी और माँ के रूप में देखता और मानता हूँ। पता नहीं, उन्होंने तुमसे भी कहा या नहीं, मैं अब उनके सिर में एक और धुन घुसी देखता हूँ। जहाँ देखो, उनकी यही बात सुनता हूँ। उन्हें मेरे विवाह की चिन्ता है, बस इसी एक बात में मैं आजकल उन्हें उलझा हुआ पाता हूँ। जहाँ सुना कि कोई लड़की वाला आया और भाईजी ने उसे बाहर-ही-बाहर विदा कर दिया और कहीं अवसर पाकर भाभीजी ने उसे देख लिया, तो बस, समझिये कि घर में राम-रावण का युद्ध आरम्भ हो गया।"

"तो भाईजी क्यों नहीं सम्बन्ध लेते? वह क्यों नहीं भाभीजी की इच्छा पूरी करते?

"हाँ, यह कारण उन भाभीजी को नहीं पूछना है। उन्हें यह नहीं समझाना है। उन्हें तो बस, अपने अजय की बहू का मुँह देखना है।"

यह सुनकर रोहिणी ने नितान्त गम्भीर होकर कहा—"अजयबाबू, बड़ी भाभी ठीक कहती हैं। जिसे उन्होंने अपना दूध पिलाया है और पाल-पोसकर बड़ा किया है, उसके लिए, क्या वह यह भी न जान पायंगी कि उनके अजय को नई-नवोढ़ा दुलहिन भी चाहिए। जो गौरव और मान पाने की इच्छा एक माँ में होती है, उन्हें वही तो तुम्हारी बहू से चाहिए। जो अभी—अब चाहिए। कहा तो तुमने, वह तुम्हारी भाभी है और माँ है; तब उन्हें यह क्यों न चाहिए?"

अजय ने कहा—"तुम्हारा कहना सभी उचित है भाभी! किन्तु मैं

तुम्हीं से पूछता हूँ, क्या सब ओर से छूटकर, हमारे लिए विवाह ही आवश्यक है ?"

यह सुनकर रोहिणी ने कुछ नहीं कहा। उसने पहले ऊपर आकाश की ओर देखा, बाद में अजय को लक्ष्य करके कहा—"तुम्हारे भाई जो बात इस विवाह के लिए कहा करते थे, आज वही मेरी बात है, जो अब मुझे न कहकर तुम्हें कहनी चाहिए। वह कहते थे—'विवाह मनुष्य की एक नैतिक और धार्मिक समस्या है, जिसे समाज ने इसी उद्देश्य पर निर्धारित किया है'।"

अजय ने यह सुनते ही, जैसे सचेत होकर अपनी दृष्टि से एक ओर घूरते हुए कहा—"भाभीजी, हमारी जो नैतिक भूख है, यह समाज की व्यवस्था पर अधिक निर्भर है। समाज में जो गन्दगी है, जो सड़न है, वह, सच पूछो तो, इस विवाह-प्रथा द्वारा ही निर्मित हुई है। रही तुम्हारी धार्मिकता की बात, वह तो, आज क्या, कदाचित् जन्मते ही, अपने रूप में एक दिन भी स्वीकार नहीं की गई। जिन धनिकों के द्वारा समाज की व्यवस्था हुई है, उन्हीं के हाथों इस नारी की जो छीछालेदर और दुर्गति हमारे इतिहासों में की गई है, निश्चय ही, वह आज क्या, कभी भी असहनीय और वेदना की वस्तु से कम नहीं दिखाई दी। नैतिकता और धार्मिकता की जो छद्मवेषी दो धाराएं इस पृथ्वी पर उन्हें प्रवाहित होती दिखाई दी हैं, तुम मानो, यह केवल मूर्खों और अशक्तों के लिए ही व्यवस्थाएं की गई हैं। समर्थ और धनिकों ने ये कभी नहीं स्वीकार कीं।"

तब रोहिणी ने एकाएक उद्वेग के साथ कहा—"अजयबाबू, जाने तुम कौन-से सिद्धान्त की बात कहते हो। इस आदमी को छोड़ दो। तुम सृष्टि के किसी भी प्राणी को लो। क्या उसे इस स्वभाव से अलग पाते हो तुम ?"

सहसा अजय ने रोहिणी की ओर देखा। उसने कुछ सदय होकर कहा—"भाभीजी, एक विचार के सभी हों, मुझे इसका भरोसा नहीं है। मुझे तो अपनी बात कहनी है, अपने विवाह की बात, जिसे पूरने की अभी मेरी इच्छा नहीं है। मेरी तरह सब बनें, मैं यह कहने की भी

इच्छा नहीं करूँगा। वैसे मेरा मत है कि इस मानव ने जिस रूप में समझ लिया है और मान लिया है, निश्चय ही, ऐसे तो, इसने अपनी विवेक-हीनता और हृदय-हीनता का परिचय दिया है। ऐसे इसने अपने को मानव नहीं रहने दिया है। इसने अपने को पशुओं की कोटि में रख लिया है। जो इसका आदर्श था, साम्य था और बुद्धिवाद था इसके पास एक अनोखा उपहार था, इसने उन सभी को अपनी अहम्मन्यता में खो दिया है और भ्रष्ट कर दिया है।…"

उसी समय रोहिणी ने देखा कि अजय बोलते-बोलते लाल हो गया है। उसका मुँह तमतमा गया है। जिससे उसने फिर सुना—

"और भाभी, यह केवल पुरुष-वर्ग की ही बात नहीं है, यह नारी की भी बात है। मैं स्पष्ट देखता हूँ और अनुभव करता हूँ कि इस नारी ने—इस माँ और पत्नी ने—दीखता है, अपना अस्तित्व ही खो दिया है। जिस पुरुष के हाथों उसने अपने को बेच दिया है, उसने इस नारी का किस प्रकार दुरुपयोग किया है, निश्चय ही उसे देखकर तो यह कहना सरल बन गया है कि नारी ने अपने रूप और यौवन के पीछे अपने आदर्श को, अपने चिर-आध्यात्मिक जीवन को अपने हाथों खो दिया है। माँ ने अपने मातृत्व को यों ही गेंद की तरह उछाल दिया है और दूर फेंक दिया है। जो नारी कोमल थी, जो विश्व की सुन्दरता थी, जो इस मानव के लिए प्रकृति की अनुपम देन थी, उसने अपने उन समस्त गुणों को इस वासना रूपी कीचड़ में इस प्रकार लथपथ कर दिया है कि उसका वह देवि-रूप नष्ट हो गया है और मिट गया है। आज की इस प्रणय की भूखी नारी ने अपने को जला दिया है और भस्म कर दिया है। बताओ, यह आज की नारी-पुरुष का मेल—यह विवाह नशा नहीं है क्या? यह एक विकार नहीं है क्या…?"

तब यह सुनकर रोहिणी ने उत्तर नहीं दिया। तब बस, उसने अपने हाथ की हथेली पर मुँह को रख लिया और आँखों को पृथ्वी की ओर कर लिया।

लक्ष्मी ने एक दिन अजयबाबू को अपने यहाँ भोजन करने का निमन्त्रण दिया। जब वह रोहिणी के साथ वहाँ पहुँचा, तो उस समय महेशबाबू 'समाजवाद' पर लिखी एक नव-प्रकाशित पुस्तक पढ़ रहे थे। जाते ही, अजय ने पुस्तक के नाम को देखकर कहा—"मैं इन व्यर्थ के झगड़ों में मन नहीं खपाता! ऐसी पुस्तकों में नीरसता और थोथी आदर्शवादिता के अतिरिक्त मैं और कुछ नहीं देख पाता···।"

महेशबाबू ने पुस्तक बन्द कर दी और एक ओर रख दी। तब उन्होंने अजय की ओर देखकर प्रश्नात्मक ढंग से कहा—"आपका क्या कथन है कि समाजवाद कोई वस्तु नहीं है, मैं समझता हूँ इन बिखरे आदमियों की बस्ती को एक सूत्र में बाँधने और इनके कुछ संस्कार-निर्मित करने के लिए एक समाज की स्थापना आवश्यक है। जो उसके नियमों की साधना है, वह सभी के लिए हितकर है। आखिर समाज क्या है—कुछ विचारों का—कुछ नैतिक और आध्यात्मिक आधार पर निर्मित विचारों का एक स्थल ही तो है, जो इस मानव को नियमित बनाता है और कर्मण्य बनाता है। समाज की अपनी उपादेयता और सार्थकता है।"

उसी समय लक्ष्मी और रोहिणी भी वहाँ आकर बैठ गईं।

तभी अजय ने एकाएक प्रताड़ित हुए स्वर में कहा—"महेशबाबू मेरा तो मत है कि हमारे लिए कोई भी 'वाद' उपयुक्त और सार्थक नहीं है। जिस मानव को आज क्षुधा की लपलपाती और सुलगती भट्टी में अपनी आहुति देनी है, उसके सामने ऐसे समाज की प्रतिष्ठा और स्थापना कोई अर्थ नहीं रखती। सदियाँ गुजर गईं, इस मानव की आयु-पर-आयु निकल गई, परन्तु आज जो इसकी स्थिति है, निश्चय ही वह सदा सुहागिन की तरह ऐसी ही बनी रही है। कहा जाता है, समाज की इस प्रतिष्ठापना ने मानव को मानव बनाया है। इसे अन्धकार से निकालकर प्रकाश का एक सुन्दर पथ दिखाया है। यह समाज का ही काम है कि जिसने इस मानव को प्रगतिमय और जागरूक बनाया है। परन्तु, क्या सत्य यह भी नहीं है कि इस समाज ने, उसके इस नियमन ने, मानव की आत्मा को, उसके सुन्दर और भले जीवन को

तोड़-मरोड़ दिया है और नष्ट कर दिया है। जो मानव 'जियो और जीने दो' के नारे को लिये था, आज वही उससे छीन लिया है, इसे परतन्त्र कर दिया है। समाज का यह आर्थिक विकास यह मुद्रा-प्रसार और यह विनिमय दर का कठोर और सांघातिक प्रहार क्या आज मानव मानव को नहीं तोड़ रहा है! उसके टुकड़े-टुकड़े नहीं कर रहा है? यह समाज का आशीष है, यह उसी की स्वेच्छा की गति है कि जिसने इस मानव को इतना दीन और मोहताज कर दिया है कि यह दाने-दाने के लिए द्वन्द्व करता दीख रहा है।"

महेशबाबू ने कहा—"यह समाज की कमी है, उसकी बुराई है, जो हमें दूर करनी है।"

"भाई मेरे!" अजय ने फिर कहा, "हमारा समाज, आज प्रायः जल गया है और सड़ गया है, यह किसी दिन अवश्य पूर्ण था और साकार था, मुझे इसका पता नहीं है। समाज जिन व्यक्तियों ने निर्धारित किया, उन्होंने ही, उनके पृष्ठ-पोषकों और सहायकों ने ही, इस मानव-समाज को जब-तब आग की भट्टी में झोंक देना चाहा। उन्होंने सदा ही मानव को अपना शिकार बनाये रखा। उनके द्वारा जिस रोटी के टुकड़े की बाँट हुई, निश्चय ही वह बन्दर की मनोवृत्ति को लेकर हुई, वही आज है। समाज ऐसे ही व्यक्तियों के हाथ है। जो हमारा द्वन्द्व है, स्पर्धा है, वह इसी 'वाद' की कृपा से है। हममें जो हाहाकार उठा है, जो उद्वेलन और चीत्कार हमारी आत्मा को झंकृत कर रहा है, वह नित-नित की तरह आज भी हमें निखालिस प्रतिहिंसक बनाकर 'रोटी-रोटी' के नारे से समस्त जीवन को अशान्त बना रहा है। जो चोर है, डाकू है, खूनी है, लुटेरा है, बताइये तो, वह क्यों ऐसी स्थिति में आ पड़ा है। यह क्यों अपनी मानवता को छोड़कर दानव बन गया है। निश्चय ही, समाज का जो निकृष्टतम प्रमाद है, वह उसमें भर गया है। और कहा जाता है, सुरक्षा के लिए यह राजा है, फौज और पुलिस की व्यवस्था है, जेलखाने और कचहरियाँ हैं, जिन सबने इस मानव को मानव बनाये रखा है और नियमन की डोर में बाँध रखा है। आखिर

क्यों? किसलिए? स्पष्ट है, जिनसे छीना जाता है और जिन्हें लूटा

जाता है, उन्हीं का मुँह बन्द करने के लिए समाज की ओर से धर्म के नाम पर और विवेक के नाम पर पाप-पुण्य का पहले तो अवरोह खड़ा किया जाता है, किन्तु जब यह भूखा और उनके हाथों लुटा हुआ मानव इसे स्वीकार नहीं करता तो, उसे चोर, डाकू और खूनी कहकर पुलिस, फौज, जेलखाना और कचहरी-जैसी संक्रामक बीमारियों से भयभीत किया जाता है। किन्तु जो पेट की भूख का बीमार है, उसे यह सब क्या, फाँसी-जैसी असाध्य बीमारी का भी भय नहीं दिखाई देता और महेशबाबू, कभी था, जब यह मानव अपनी रक्षा के लिए ईंट-पत्थरों का आश्रय लेता था और जंगली जानवरों से युद्ध करता था। किन्तु आज तो यह साक्षर और सुबोध मानव ईंट-पत्थरों से भी ऊपर नये-नये वैज्ञानिक आविष्कारों का आश्रय लेता है और मानव बनकर मानव पर प्रहार करता है। जिसे आप जंगली मानव कहते थे और अव्यवस्थित कहते थे, वही अन्धकार से प्रकाश में आने वाला यह मानव जंगली जानवरों के सदृश ही, अपने पड़ौसियों को मारता है और नष्ट करना चाहता है।"

देखा, तब महेशबाबू चुप थे। वह एकाग्र होकर अजय की बात सुन रहे थे।

अजय ने फिर कुर्सी पर सीधा बैठकर कहा—"बताइये, आखिर क्यों है यह युद्ध। और समाज-शास्त्रियों ने लिखा है कि युद्ध है तो जीवन है। युद्ध ही मनुष्य को कर्मण्य बनाता है। यह युद्ध ही प्रगति-पथ दिखाता है। शायद ठीक ही है यह, अब तो यही है। यही निभना है। निर्बल के लिए इस दुनिया में स्थान नहीं है। मानो अखाड़ा है, यह दुनिया, जहाँ सभी को लड़ना है और मरना है। और इस पर तुर्रा यह कि समाज में जो धार्मिकता है, वही उसकी नैतिकता है। जो यही ठीक हो। परन्तु मैं तो कहता हूँ, जब हमारे विकास की ऐसी विडम्बना है और अवहेलना है, तो यह दम्भ और प्रलाप की कैसी पराकाष्ठा है कि हमें देखने का अधिकार है, कहने का नहीं। आज हमारा यही झगड़ा है हमें जो सत्य से दूर रखा गया है, वह सचमुच अच्छा नहीं किया गया।"

महेशबाबू ने देर की रुकी हुई साँस छोड़ते हुए कहा—"मैं इसे मानता हूँ। मैं इसे स्वीकार करता हूँ।"

रोहिणी ने कहा—"धर्म और समाज हमें अपने से दूर नहीं करता। नीयत की और बात है, वही सुधरे। धर्म हमें मानवता का पाठ पढ़ाता है और समाज-बन्धन हमें अपने नियमों से मानव बनाता है और सांस्कृतिक व्यक्ति बनाता है।"

अजय ने कहा—"इसे सब कोई मानता है। किन्तु जो हममें अधीरता और चञ्चलता है, उसका सबक भी इसी समाज से मिला है हमें।"

उसने फिर कहा—"और जो हमारा धर्म है, हमारे नैतिक जीवन की धार्मिकता है, उसे तो जैसे हमने आज तक समझा ही नहीं, उसने हमें सदा ही धोखे में रखा है। एक ओर हमें ईश्वर-भक्ति में दया और पुण्य का पाठ पढ़ाया गया है और सिखाया गया है कि यह दुनिया एक जंजाल है, व्यर्थ का आडम्बर! हमारी नारी को उसके पति के मरने पर जल जाने और सती होने के लिए कहा गया है। किन्तु इस बदलती दुनिया के साथ चलकर भी हमने वास्तविकता को नहीं समझा, और न समझना चाहा। आज विज्ञान का युग है। व्यक्ति एक सेकिण्ड में कई हजार मील की बात सुन सकता है और अपनी सुना सकता है। वैज्ञानिक समुद्र में आग लगा सकता है और प्रलय मचा सकता है। किन्तु एक है आपका देश—कट्टर धार्मिक और समाजवादी, जो गुलाम और रोटियों का मोहताज बना हुआ दूसरों का आश्रय देखता है। हमारे जिन हजारों धार्मिक कवियों ने राधा और कृष्ण की प्रेम-लीला के गीतों में दुनिया को लीन करना चाहा, यदि वह अपनी कृतियों से इस विश्व को जीवन-जागृति और प्रेम का सन्देश देते, तो यह भारत आज भी अपना कुछ महत्त्व रखता। यह आज की तरह गुलाम, अपाहिज और टुकड़े माँगने वाला देश न कहलाता। हमारी माँ-बहनें आज की तरह भगाई न जातीं, वे लूटी और चुराई भी न जातीं। जो पुरुष-समाज आज उन पर शासन करता है और मनमानी करता है, तब वह इस प्रकार, जीवन

से हेय और पद्दलित न दिखाई देतीं। वह पुरुषों के समान जागरूक होतीं।"

रोहिणी ने कहा—"हाँ, यह मानी तुम्हारी बात।"

यह सुनकर अजय हँस दिया। रोहिणी की इस बात ने लक्ष्मी और महेशबाबू को भी हँसा दिया।

तभी लक्ष्मी ने कहा—"अरी रोहिणी, अजयबाबू को इनाम तो दे कुछ।"

रोहिणी ने कहा—"इनाम नहीं, आशीष!"

अजय ने कहा—"हाँ, ठीक है यह! पर तुम्हारा जो आशीष है, वह भी देखना चाहिए।"

लक्ष्मी ने कहा—"सुन्दर-सी बहू आये। छम-छम करती आये..."

"हाँ, हाँ, यही आशीष।" जल्दी से रोहिणी ने कहा।

यह सुनते ही अजय ठहाका मारकर हँस पड़ा।

लक्ष्मी ने कहा—"तो अजयबाबू, कथा बाँचने के बाद पण्डित को भोजन कराया जाता है। कहो, भूख लगी है क्या?"

अजय ने कहा—"जो प्रतीक्षा में है कि खाना आय और उसे पेट में रख लिया जाय उसी से आपने यह पूछा है। बस, समझिये कि इसे खाना है, और अभी खाना है। वैसे जो पूछना ही है तो महेशबाबू से पूछें। ।"

महेशबाबू ने कहा—"हाँ, भाई, अब लाओ खाना।"

लक्ष्मी और रोहिणी के चौके की ओर चले जाने पर महेशबाबू ने अजय को लक्ष्य करके कहा—"हमारे यहाँ मौलिक पुस्तकें नहीं लिखी जातीं।"

अजय ने कहा—"पाठक ही नहीं हैं हमारे यहाँ, और फिर ऐसे प्रकाशक भी कम हैं। लेखक इतना समर्थ और जागरूक नहीं। वैसे मैं मौलिकता का कायल भी नहीं।"

"क्यों, क्यों?"

"मौलिकता कोई वस्तु है, मैं इसे मानने के लिए सहमत नहीं। लेखक, लेखक से सामञ्जस्य रखता है और अपने विचार लिखता है।

जो बातें हैं, उन्हीं का विस्तार-भर सामने आता है। यही उनकी मौलिकता है।"

महेशबाबू ने कहा—"कुछ ऐसे भी हैं, जो मौलिक बात कहते हैं।"

अजय ने कहा—"बहुत कम। उँगलियों पर गिनने लायक।"

तभी भोजन आ गया। थाल की ओर देखकर अजय ने कहा—"ओह, आज तो लक्ष्मी भाभी ने इतने माल बना लिये हैं कि देखकर ही मन भर गया है।"

उसी समय लक्ष्मी ने आकर कहा—"बातें तो मैं बहुत कम कर पाऊँगी, अजयबाबू! इसके लिए रोहिणी है, जो मेरी तरफ से है।"

"लेकिन मैं तो उनका भी हूँ और तुम्हारा भी भाभी जी!"

उसी समय रोहिणी चौके से पूरी लेकर आई। वह महेशबाबू को देकर जब अजय की ओर झुकी, तो उसे न लेने के लिए हाथ से इन्कार करते देखकर बोली—"वाह, यह भी बात है कुछ! जो इतना बोलता है वही इतना कम खाय, भला यह क्या अच्छा लगता है।" और उसने पूरी थाल में डाल दी।

अजय ने कहा—"मैं अधिक नहीं खाऊँगा, भाभी!"

लक्ष्मी ने कहा—"अच्छा, अच्छा जो है उसे तो खाइये। धीरे-धीरे खाइये।"

और अजय खाने में लग गया।

अब तक रोहिणी की दृष्टि में अपने लिए सुरेश ही एक समस्या था, किन्तु अजय के आते ही उसे लगा, जैसे यह उससे भी बड़ी समस्या का रूप उसके सामने आया। अजय के कुछ अपने विचार हैं। जिनसे उसके परिचित प्रायः सभी प्रभावित हुए हैं। यही कारण है, लक्ष्मी और महेशबाबू ने अजय की अधिक प्रतिष्ठा की है और उसके प्रति सम्मान की भावना प्रदर्शित की है। इसी प्रकार उसने घर में बैठकर जो रोहिणी से बातें की हैं, उनसे निश्चय ही रोहिणी ने जीवन की

नई गति और लय पा सकी है। वह नाते में अजय से बड़ी होकर भी अपने को छोटा समझने लगी है। अब एकाएक वह अजय के सामने उसकी बात का विरोध नहीं करती; अपितु, पहले उसकी बात के मर्म तक पहुँचती है, तब कहीं जाकर वह अपनी बात कहने की चेष्टा करती है। यही कारण है कि वह अब तक अपने जिस संसार की रचना किये थी, वही अब उसे झूठी और बेकार की वस्तु दिखाई देने लगी थी।

इसी बीच रोहिणी ने अजय को सुरेश का परिचय दिया और बताया कि तुम्हारे भाई के साथ उनका घनिष्ठ सम्बन्ध रहा है। आजकल जेल में हैं सुरेशबाबू। अब आने वाले हैं। उसका कहना था कि सुरेश को पाकर निश्चय ही तुम्हें और अधिक सुख और सन्तोष मिलेगा। लेकिन इसके विपरीत अजय तो कहता है जो सुरेशबाबू धनिक हैं, तो अवश्य ही, मुझे उनसे कुछ नहीं मिलना है। वैसे वह आयं तो परिचय के लिए इतना क्या बुरा है। इतने में मेरा कुछ नहीं आना-जाना है।···

यह सुनकर, तब रोहिणी ने कहना चाहकर भी कुछ नहीं कहा। जैसे उससे नहीं कहा गया। परन्तु जो उपेक्षा का भाव उसने अजयबाबू में देखा, वह उसे भला भी नहीं लगा।

उन्हीं दिनों एकाएक रोहिणी को बुखार आ गया। जो अजय पहले दिन-भर बाहर घूमता, वही अब रोहिणी की परिचर्या के हेतु, उसकी चारपाई से लगा बैठा रहता। रोहिणी के लिए दवा लाने, उसे उठाने-बैठाने आदि के कार्य के लिए वहीं उपस्थित रहना वह आवश्यक समझता था। दो-तीन दिन के बाद रोहिणी का बुखार कम होने की अपेक्षा और अधिक बढ़ गया। उसे पेशाब और पाखाने के लिए भी उठना अब कठिन हो गया था। देखा कि रामू की माँ ने अपनी सारी सेवाओं को उसके हाथों सौंप दिया था। उसे ढाढ़स दिया था और जल्दी ही आराम होने के लिए दिलासा दिलाई थी। लेकिन इसके विपरीत अजय था कि जो बिना कहे-सुने रोहिणी के सभी कामों में अपने को लगाये हुए था। वह रामू की माँ को कोई भी काम करने का न तो अवसर देता था, और न ही उस वृद्धा को किसी काम में लगाने की चेष्टा करता था। उसने अपनी इधर की कई दिन की रातें कुछ जाग-

रमा भैया याद आ गए।"—अजय ने पूछा।

यह सुनकर रोहिणी ने अजय की ओर देखा। उसकी उन लाल हुई आँखों को देखकर अजय ने कहा—"यह तो मैं जानता हूँ, जो प्राणी हँसता है, रोना भी उसी के साथ लगा है। किन्तु जो बीत गया, जो हमारी दृष्टि से ओझल हो गया, उसी के लिए रोना मुझे संगत-सा नहीं लगता।"

"अरे, अब मैं किसी के लिए नहीं रोती, अजयबाबू!" रोहिणी ने मौन भाव से अजय की आँखों में अपनी आँखें डालते हुए कहा, "जो मर गए, सच, जो मुझसे दूर हो गए, उनके लिए अब मैं रोना ठीक भी नहीं समझती। तुम्हारे भाई से अधिक माँ ने मेरे लिए त्याग किया था। अब मैं उसे भी नहीं रोती, उसे याद भी नहीं करती! पर मेरा जो भाग्य है— लीक है मेरे जीवन की, मैं उसे अवश्य देखती हूँ और देखती रहती हूँ। देखते हो, मैं निराश्रित हूँ। मैं अब लोगों की सद्भावना के भरोसे ही जीती हूँ और अपना जीवन काटती हूँ। इसी से कहती हूँ कि मैं मरना चाहती हूँ। मैं अब अपने इस पथ से दूर होना चाहती हूँ, अजयबाबू!..."

इस प्रकार रोहिणी को फिर रोते और उद्विग्न होते देखकर अजय उलझन में है और चिन्ता में है कि वह क्या कहे! और रोहिणी है; जो फफक रही है और रोती जा रही है। वह जो अपनी बात कह सकी है, निश्चय ही वह आज की वेदना नहीं है। जो ऊपर भी नहीं है, वह इस रोहिणी के अन्तःप्रदेश में छिपी है। जो निरी साकार है और सपाट है। वही तो आज इस भाभी के अन्तर में कसक रही है और दुख रही है।...

इसी भावना में अजय का मन उद्वेलित-सा हो गया। उसकी सूखी आँखों में बरबस ही, आँसुओं का जल छलक आया। किन्तु उसने अपनी आँखों को छुपा लिया। कठिनाई से वह उन्हें पोंछकर रोहिणी के मुँह की ओर झुकता हुआ बोला—"भाभी, देखती हो मेरा मन पत्थर नहीं है। निश्चय ही, यह तुम्हारे आँसू देखकर स्थिर नहीं रह सकता और तुम रोये जाती हो। बताओ, तुम अपने को कैसे निराधार

समझती हो। यह तुम्हारा अजय तुम्हारा अपना ही है। लगता है जैसे तुम इसे देख ही नहीं पातीं। तुम्हारे लिए जो सेवा और व्रत इसके पास है, तुम उसे क्यों नहीं लेतीं। इसकी एक भाभी है, जो इसकी माँ हैं, तब तुम भी इस अजय की भाभी हुईं, क्यों न अपने को उनकी सहोदरा समझतीं। अजय अपनी दोनों भाभियों का सेवक है और इन दोनों के चरणों पर इसका सर्वस्व अर्पित है," कहते-कहते उसने रोहिणी के आँसू पोंछे, उसकी छाती के कपड़े को ठीक किया और फिर कुरसी पर सीधा बैठता हुआ बोला, "तुम भी खूब हो। अच्छा, अब तो हँस दो, हँसो।"

पर रोहिणी चुप थी। वह वैसी ही अनमनी-सी बनी हुई गुम-सुम पड़ी थी।

अजय ने फिर कहा—"अब भी चुप हो, भाभी! गुम-सुम हो। न जाने क्या अपने मानस में सँजोये हो?"

यह सुनकर रोहिणी जैसे बरबस मुसकराई। वह अजय की ओर देखकर बोली—"तुम अपने हाथ को मेरे सिर पर रख दो, अजयबाबू! लाओ रख दो।"

यह सुनकर अजय ने अपना हाथ रोहिणी के हाथ में पकड़ा दिया, जिसे उसने फिर अपने दोनों हाथों में दाब लिया।

उसी समय रोहिणी ने कहा—"अजयबाबू, अब तुम्हें यहाँ से नहीं जाना है। तुम्हें पाकर मुझे जो शान्ति मिली है, उसे मैं शब्दों में नहीं व्यक्त कर सकते। देखते हो, आज मेरा बुखार उतर गया है। यह जो आँसू बहे हैं, उनसे मन भी हल्का-सा हो गया है।"

अजय ने अन्तरिक्ष की ओर देखते हुए कहा—"अच्छा, मैं घर न जाऊँगा। मैं यहीं रहूँगा, बस!" और तभी उसने अपना हाथ खींचना चाहा, जिसे चाहते हुए भी वह नहीं खींच पाया। निदान उसने फिर कहा, "मैं सोचता था, मैं ही बच्चा हूँ। पर आज तो मैं तुम्हें भी निरी बच्ची पाता हूँ, भाभीजी!"

"इस बात को छोड़ो अजयबाबू! मेरी बात सुनो। सुनोगे न, मेरी बात?" जाने कितने दुलारपूर्ण और स्नेहपूर्ण स्वर में रोहिणी ने पूछा।

तदनन्तर उसने कहा—"तुम विवाह कर लो। तब मैं भी रह जाऊँगी, तुम्हारी बहू रानी के पास।"

अजय ने हँसकर कहा—"न नौ मन तेल होगा, न राधिका नाचेगी। न बहूरानी आयगी, और न···!"

तभी रोहिणी ने बीच में टोककर कहा—"न, अजयबाबू, अब ऐसा नहीं होगा। भला बताओ, तुम्हारा विवाह क्यों नहीं होगा। मैं कहती हूँ, जरूर होगा। तुम्हारी भाभी जाते-जाते मुझे यह काम सौंप गई हैं। वह मुझसे तुम्हें विवाह के लिए तैयार करने को कह गई हैं।" कहते-कहते उसने अजय के थामे हुए हाथ को सिर पर रख लिया और बोली—"कहो अब, कि मैं विवाह करूँगा। देखते हो, तुम्हारा हाथ मेरे सिर पर है, इसी की शपथ खाकर बताओ कि मैं किसी भी सुन्दर सुकुमारी से अपना सम्बन्ध बाँध लूँगा, मैं विवाह कर लूँगा।···"

"भाभी···"

"अजयबाबू, जो तुम्हारे मन में है, मैं उसे जानती हूँ। तुममें मानव के जिस अंग की पूजा और सेवा की लगन है, अब मैं उसे पहचानती हूँ। लेकिन मैं कहती हूँ, उसमें नारी की महत्ता न बाधक हुई है, न घातक। नारी पुरुष के किसी भी क्षेत्र में सहायक और बराबर की सहयोगिनी सिद्ध हुई है। नारी शराब-सी मादक सिद्ध हुई है तो यह गंगा के जल-जैसी स्वच्छ और पवित्र भी दिखाई दी है। दृष्टि का अन्तर है। इसमें साधक और साधना की जरूरत है, अजयबाबू। वही तुम करो। ऐसी नारी ही तुम पाओ।"

अजय उस समय मौन था। जैसे वह अपने प्रति कुछ भी नहीं सोच पा रहा था, अथवा वह और किसी बात पर टिका था। अब रोहिणी ने उसका हाथ छोड़ दिया था। अजय दोनों हाथों की उँगलियों को सिर के बालों में फेरता हुआ जैसे अपने अन्दर ही टूटा जा रहा था। तभी वह एकाएक कुर्सी से उठ खड़ा हुआ। उसने रोहिणी की ओर देखा और स्थिर हुए स्वर में बोला—"भाभी, तुम जिस बात को मुझसे पूरी करने के लिए कह रही हो, निश्चय ही, तुम्हारे पास आने

से पहले मैं इसका महत्त्व नहीं जानता था और न उसका मर्म ही जानता था। उसे अब तुम्हें देखकर समझा हूँ। किन्तु, मैं जिस समस्या में अटका हूँ, उसे पहले सुलझाऊँगा। नहीं जानता कि यह सुलझेगी, या वैसी ही रहेगी। जो हो। मैं उसे पूरने के लिए जिऊँगा और उसी के लिए मरूँगा। इसी से कहता हूँ, जब तुमने मुझे समझा है, तो मुझे अपने पथ पर जाने दो। मैं जिस ओर बढ़ रहा हूँ, मुझे उसी ओर बढ़ने दो। तुम मुझे जीने दो, और जीवन दो, मेरी भाभी! मैं तुमसे यही चाहता हूँ। मैं इसी की माँग करता हूँ।···"

रोहिणी ने एकाएक चौंककर देखा कि अजय अपनी बात कहते हो वहाँ से उठने का उपक्रम कर रहा है। इसी से, उसने पुकारा—"अजय-बाबू! अजयबाबू!"

किन्तु देखा कि अजय ने इसे सुनकर भी अनसुना कर दिया। उसने लौटकर रोहिणी की ओर नहीं देखा। वह दूसरे कमरे में जाकर मेज के पास रखी हुई कुर्सी पर बैठ गया। मेज पर कोहनी टेककर उसने हाथ की हथेली पर सिर को रख लिया। उसे इस प्रकार बैठे अभी एक ही मिनट हुआ होगा कि रोहिणी ने कठिनाई से वहाँ तक आकर उसकी पीठ-पीछे से पुकारा—"अजयबाबू···"

सहसा रोहिणी की आँखों में अंधेरा आ गया और उसके सिर में चक्कर आ गया। वह गिर पड़ती यदि तत्क्षण ही उसने दरवाजे की चौखट को न पकड़ लिया होता। उससे आगे नहीं बोला गया। वह थर-थर काँप रही थी।

यह देखकर अजय ने तुरन्त कुर्सी छोड़कर, उसे पकड़ते हुए कहा—"तुम यहाँ आ गईं। ऐसी दशा में। आठ दिन से कुछ खाया नहीं, उठने-बैठने का दम नहीं। बताओ, अब क्या कहने आई हो?" कहते-कहते उसने रोहिणी को फिर चारपाई पर ले जाकर लिटा दिया। देखा, रोहिणी हाँफ रही थी। उसकी साँस तेजी से चल रही थी। वह अजय से कुछ कहना चाहकर भी कुछ न कह सकी।

अजय खड़ा था। वह पूर्ववत् रोहिणी को खिन्नता और ममता की दृष्टि से देख रहा था।

तभी, अपनी उस अशांति में रोहिणी ने कहा—"मैंने जो कुछ कहा है, उसे भूल जाओ अजयबाबू! उसे अपने हृदय से निकाल दो।"

यह सुनते ही अजय ने मर्माहत व्यक्ति की तरह एकाएक उद्विग्न होकर कहा—"तुमने क्या-कुछ कहा है, भाभी! तुमने व्यर्थ ही अपने को अस्थिर किया है।"

"तो मैं क्या करूँ, अजयबाबू! मैं····"

"तुम सो जाओ। अच्छा, अब चुप हो जाओ।"

और उसने अपने मुँह को दूसरी ओर लटकाकर कहा—"मैं तो सदा के लिए सोना चाहती हूँ, अजयबाबू! मैं ऐसे ही···"

"भाभी, तुम अपने को परेशान करती हो, और मुझे भी। तुम···"

तभी द्वार पर अजय ने लक्ष्मी भाभी को आते देखा। उसे देखते ही, वह बोला—"आप आ गईं। सच, बड़े अच्छे समय आ गईं। जरा इनके पास बैठो और सुनो इनकी बात।"

रोहिणी ने उन दोनों की ओर देखते हुए कहा—"भला मेरी भी बात है कुछ, जिसकी जड़ है न साख!···"

अजय ने हँसते हुए कहा—"यही तो बात है! और इससे बड़ी क्या बात होगी?"

लक्ष्मी ने कहा—"लगता है, भाभी-देवर का झगड़ा हुआ है। यदि ऐसी बात है तो मेरा तुम दोनों के बीच में पड़ना अच्छा नहीं।"

अजय ने हँसते हुए कहा—"सो तो मैं इस बात को पहले से ही जानता हूँ। आप भले ही इनका पक्ष लें, मेरा साथ न दें; लेकिन मैं महेशबाबू से ऐसी आशा नहीं रखता हूँ। कम-से-कम उन्हें तो मैं अपनी ओर मिला ही सकता हूँ।"

रोहिणी ने कहा—"तब क्या नई बात हुई है आज। पुरुष ने पुरुष का साथ दिया, तो स्त्री क्यों दोषी हुई?"

यह सुनकर अजय हँस दिया। तब लक्ष्मी ने धीरे-से मुस्करा दिया।

लक्ष्मी ने रोहिणी से पूछा—"अपनी तबियत का हाल कह, ठीक है न आज? बता, तेरे लिए क्या बना दूँ कह तो, ज़रा-सी खिचड़ी, पतली-पतली मूँग की दाल की···"

"मैं कुछ नहीं खाऊँगी जीजी!" रोहिणी ने जल्दी से कहा, "देखती हो, यह तुम्हारे अजयबाबू टोकरी-भर सब्ज़ी ले आए हैं, जिस पर सिर हैं कि खाओ इन्हें! भला, मैं इन सबको कैसे खा सकूँगी? यह बीमार की स्थिति तो जानते नहीं और कहते यह हैं कि मैं तीमारदारी कर सकता हूँ। जीजी, यह अच्छे-भले आदमी को बीमार न डाल दें, तो बात! इनका बस चले, तो उसे मार भी दें।..."

"तो बुरा क्या हुआ? तुम मरना चाहती हो, मैं मारना! बस, ठीक ही तो संयोग हुआ।"

"पर मैं अभी नहीं मरूँगी! ऐसे भी नहीं मरूँगी, समझे!" रोहिणी ने विद्रूप हँसी हँसते हुए कहा।

यह सुनकर अजय जोर का ठहाका मारकर हँस दिया। वह बाहर चला गया और एक किताब पढ़ने में लग गया। तभी रोहिणी ने अपने पास बैठी लक्ष्मी जीजी की ओर देखकर कहा—"जीजी, तुम समझाओ न इन अजयबाबू को, जाने क्या सोचते हैं यह! कहते हैं, मैं विवाह नहीं करूँगा। और देखा तुमने, इन दिनों दो-तीन रात मेरे कारण क्या सो पाये हैं, अजयबाबू! ना, एक दिन भी नहीं! मैं बीमार हूँ, इसलिए यह एक दिन भी ठीक से न खा पाए हैं और न सो पाए हैं।..."

यह कहते-कहते रोहिणी स्वतः अपने में खो गई और लगता था कि वह सभी-कुछ भूलकर अजय की सीमा में लय हो गई।

अपनी सजा की अवधि पूरी करके सुरेश छूट आया। एक दिन महेशबाबू ने सुरेश की इस यात्रा पर दावत का आयोजन किया। उसमें रोहिणी और अजयबाबू को भी निमन्त्रित किया गया। सुरेश के आने पर रोहिणी जितनी प्रसन्न और उल्लसित थी, लगता था, वह अजय के लिए कुछ भी नहीं था। सुरेश जब रोहिणी के घर आया और रोहिणी द्वारा उसे अजय का परिचय दिया गया, तो दीखा, अजय ने

सिवा 'नमस्कार' आदि के न कुछ कहा था, न सुना था। यह अचरज ही था कि जो अजय किसी से मिलते ही घनिष्ठता बढ़ाता और घण्टों बात करता था, वही उस सुरेश की ओर से सर्वथा निरपेक्ष होकर रोहिणी और उसके बीच में गुम-सुम बैठा हुआ केवल 'हाँ-हूँ' के द्वारा ही बातों में योग दे रहा था। लगता था, वह उस क्षण वहाँ जबरदस्ती बैठा था। वह अवसर पाकर उनके पास से उठ लिया और अपने लिखने-पढ़ने के कमरे में जा बैठा।

सुरेश चला गया। रोहिणी ने देखा कि अजय भी अपने कमरे में नहीं था। वह बाहर चला गया था। उसे गये काफी देर हो गई थी। शाम का भोजन बने भी दो घण्टे से ऊपर का समय हो गया। रोहिणी अजय के आने की प्रतीक्षा में बैठी थी। रामू की माँ तो खा-पीकर अब अपनी खटिया बिछाकर सोने की तैयारी करने लगी थी। बस, रोहिणी ही अनेक अकल्पित आशंकाओं में बँधी, आँखें खोले चारपाई पर पड़ी आसमान के तारे गिन रही थी। कान उसके द्वार पर लगे थे। अचानक उसे याद आया कि कल ही जब उसने सुरेश के आने की बात को अजय के सामने रखा; तो उसने न जाने कितने रूखे भाव में कह दिया था, मैं ऐसे व्यक्तियों में आस्था नहीं रखता भाभी! मैं उनसे मिलने की इच्छा भी नहीं रखता। सुरेशबाबू धनिक हैं और हम निर्धन, इसी से, मैं उनमें और अपने में कोई समता नहीं देखता।"

तब रोहिणी ने कहा था—"नहीं, अजयबाबू, सुरेशबाबू बिलकुल निराले हैं, सबसे अलग। तुम्हारा उनका परिचय होगा, तो सचमुच ही, तुम्हें सुख का अनुभव होगा।"

तब अजय ने जैसे ऊपरी भाव से कह दिया था—'अच्छा है, अच्छा है, भाभीजी।'

और आज, अजय अपनी टेक से क्या तिल-भर हटा है जो उसने कहा, आज उसी को सत्य और सार्थक किया।···एकाएक रोहिणी ने बड़बड़ाया और फिर वह उस काली घिर आती रात की अँधियारी की ओर देखने लगी।

इतने में ही अजय द्वार खोलकर अन्दर आ गया। रोहिणी ने

उसे अत्यन्त व्यग्र और अस्थिर रूप में देखा। उसके सिर के बाल अस्त-व्यस्त हैं, और छितरा रहे हैं, कुरते की एक बाँह की आस्तीन ऊपर चढ़ी है। पैरों में घुटनों तक गर्द भरी है। यह देखकर रोहिणी ने उठकर पूछा—"कहाँ गये थे ? कहीं दूर गये थे क्या ?"

अजय ने रोहिणी की उसी चारपाई पर बैठकर एक लम्बी साँस भरते हुए कहा—"हाँ, भाभी ! मैं आज दूर निकल गया था।"

रोहिणी ने उठते हुए कहा—"देखते हो, भोजन यों ही पड़ा है। जो अब तक ठण्डा हो गया होगा।

अजय उठा और मुँह-हाथ धोकर, रसोई में रोहिणी के सामने जा बैठा। तभी रोहिणी ने पूछा—"आखिर ऐसा क्या काम था ? रात आधी होने आई है, क्या तुम्हें इतना भी ध्यान नहीं। ऐसा था तो कहकर जाना था !…"

अजय ने अप्रतिभ-सा होकर कहा—"तुम्हें खा लेना था, भाभी ! तुम्हें मेरी प्रतीक्षा नहीं करनी थी। और पूछती हो, मैं कहाँ गया था, तो सुनो, मैं यहाँ से आठ कोस पर गया था। मुझे एक रोगी की सेवा करने जाना था।"

"वहाँ कैसे जा पहुँचे तुम ?" रोहिणी ने खाने का थाल अजय की ओर बढ़ाते हुए पूछा।

अजय ने खाने की ओर बिना देखे ही कहा—"मैं जिस रोगी के पास गया था, वह मर गया। आज मेरा बटुआ भी खाली हो गया। बड़ी भाभी जो रुपये दे गई थीं; उन्हें आज पाई-पाई करके समाप्त कर दिया। जो रोगी मर गया वह मेरे एक मित्र की पत्नी थी, तुम-सी ही मेरी एक और भाभी, जो विधवा थी और अकेली थी सर्वथा निःसहाय। मैं पिछले आठ दिनों से रोजाना वहीं जाता था और उसकी खैर-खबर ले आता था। वह आज समाप्त हुआ। आज वह खेल खत्म हुआ,...." कहते-कहते अजय का गला भर आया। अपनी अश्रु-सिक्त आँखों को पोंछकर वह बोला, "उस नारी ने एक दिन भी अपने जीवन को नहीं देखा। उसकी सुहाग-माँग में एक दिन भी शऊर से सिन्दूर नहीं भरा गया। उसने एक दिन भी नहीं समझा कि दाम्पत्य-

सुख क्या है, उसका मोल क्या है ! विवाह के कुछ वर्ष बाद ही उसका सर्वस्व खो गया था। उसका पति देश के लिए फाँसी पर चढ़ गया था, वह मेरा अनन्य मित्र था। तुम्हारे पास आने की बात के साथ मेरा इस भाभी से भी मिलने का काम था। मैं तुम्हें कैसे बताऊँ भाभी कि वह कितनी महान् नारी थी। मैंने जीवन में यही एक ऐसी नारी देखी जिसने अपने पति की मृत्यु पर न तो शोक किया और न खेद ही। उसके दो छोटे-छोटे बच्चे थे, जो उसकी आँखों के सामने ही भूख से तड़प-तड़पकर मर गए। उसने जिन हाथों से उन्हें पाला, उन्हीं हाथों से उन्हें नदी में सुला दिया। तुम्हारा भी मैंने उससे जिक्र किया था। कहती थीं, मैं अच्छी होऊँगी, तो अवश्य तुम्हारी भाभी से मिलूँगी, पर कहाँ मिल पाईं वह ! वह तो ऐसी यात्रा पर चली गईं, जहाँ से न आयंगी, न लौटेंगी—"

रोहिणी मौन थी। उतनी देर में वह नितान्त भावुक और खोई-सी बन गई थी। अजय ने खाना आरम्भ कर दिया। कुछ खाया और यों ही वह खड़ा हो गया। तब रोहिणी ने भी अपने में कुछ खाने के लिए रुचि और उत्साह को नहीं पाया उसने खिन्न हुए और टूटे-से मन को लिये, सो जाना चाहा।

किन्तु अजय ने रोहिणी की ओर ध्यान न देकर अपनी बात आगे बढ़ाते हुए कहा—"मैं आज थक भी गया हूँ। दिन-भर ही व्यस्त रहा। वहाँ से जाते ही कार्य में लग गया ! ख़ैर, यह तो हुआ ! तुम सुनाओ, अपनी लक्ष्मी जीजी आई थीं, आज ?"

रोहिणी ने जैसे कठिनाई से कहा—"आई थीं ! कल अपने घर भोजन करने का तुम्हें बुलावा भी दे गई हैं।"

सुनते ही अजय ने कहा—"ओह, वह जो सुरेशबाबू के लिए दावत की बात थी, ठीक ? पर भाभी, मेरी वहाँ जाने की इच्छा नहीं है। मैं आज जिस नारी की अर्थी उठाकर श्मशान ले गया हूँ और फूँककर आया हूँ, उसी के जीवन-चित्र को देखने के अतिरिक्त, मुझे आज अभी किसी भी बात में आस्था और लगन नहीं दिखाई देती। इसी से,

 मुझे इन व्यर्थ के आडम्बरों में कोई भी प्रेरणा अनुभव नहीं होती। वैसे,

अब मैं जाने वाला भी हूँ। कल घर पत्र लिखूँगा। पैसे आये नहीं कि मैं चला जाऊँगा। देखता हूँ, तुम्हें बहुत कष्ट दिया। देखो तो, जब-तब मेरे लिए तुम भोजन लिये बैठी रहती हो। सोचता हूँ कि सबको सुख दूँ, पर ऐसा निभता कहाँ है। पहले बड़ी भाभी की बात थी, अब एक तुम हो, जो मेरे लिए यह सब झगड़े-टण्टे करती हो और कष्ट उठाती हो!....."

लेकिन दीखता था, इसके विपरीत वह रोहिणी थी जो बरबस उलझी थी, उलझती जा रही थी। वह जिस अजय को जितना भी समझ पाई, देखा, अभी वह उसकी वास्तविकता से दूर खड़ी थी। अभी कुछ देर पहले जो-जो बातें उसके मन में आई थीं, वह सब-की-सब उससे दूर हो गई थीं। नहीं तो उसने अभी-अभी चाहा था और अपने मन में कहा था कि अजय आय, तो वह पूछेगी, "बताओ, तुम बाहर कहाँ जाते हो। और तुम क्यों, अकारण ही, सुरेशबाबू से उपेक्षा रखते हो। तुम क्यों उन्हें इतना हीन समझते हो....."

लेकिन अजय तो आ गया। उसने थोड़ा-बहुत भोजन भी कर लिया। अब वह सोने भी जा रहा है, पर रोहिणी चुप है। वह अजय की ही सब बातें सुन रही है। अजय जो-कुछ कह रहा है, जैसे वही सत्य और अटल मान रही है। तभी उसने पुकारा—"अजयबाबू..."

अजय मानो उसके इस वाक्य की प्रतीक्षा ही कर रहा था। बोला—"हाँ, भाभी!"

"क्या तुम मुझे ग़ैर समझते हो। बोलो, तुम मुझे किस दृष्टि से देखते हो? तुम मेरी ओर से ऐसा कौन-सा अन्याय और अपराध होता देखते हो?"

यह सुनकर चकित और मर्माहत-सा होकर अजय बोला—"यह क्या कह रही हो भाभी! तुम कैसे अन्याय और अपराध की बात कहती हो? मैंने तो कहा, तुम्हारे पास इतने दिन रहा, मैं तुम्हें कष्ट ही देता रहा। और जानती नहीं, शायद तुम नहीं समझतीं, जीवन के प्रति जो ममता और अनुभूति मैंने यहाँ पाई है और अनुभव की है, निश्चय ही वह मेरे लिए अनुपम और पवित्र रही है, भाभी!"

"तुम घर से रुपये मँगा रहे हो, बताओ तो, रुपयों की क्या जरूरत आन पड़ी ?"

यह सुनकर अजय हँसा। वह रोहिणी की ओर देखता हुआ बोला—"तुम भी खूब हो, भाभी ! क्या तुम भी जरा-सी बात में उलझ गई हो। बताओ, तुम्हारे पास ऐसी कौन-सी कमाई आ रही है, जो मुझे देती रहोगी और स्वयं भी खर्च करती रहोगी !"

"घर से रुपये नहीं मँगा सकते तुम। रुपये मुझसे लेने होंगे, समझे।"

अजय ने हँसते हुए कहा—"जो, समझा ! समझा भाभीजी !"

तब रोहिणी ने फिर कहा—"कल लक्ष्मी जीजी के यहाँ न जाना भी उचित प्रतीत नहीं होता। तुम नहीं गये तो निश्चय ही लक्ष्मी जीजी तो बुरा मानेंगी ही, वह महेशबाबू और सुरेशबाबू को भी बहुत अखरेगा। जाने कैसे हो तुम कि आज सुरेशबाबू आये, तो उनसे ठीक से बोल भी न पाये, न कुछ कह ही सके। जाने क्या सोचते हो तुम ! क्या देखते हो ?···"

रोहिणी ने फिर कहा—"तुम तो मेरे आत्मीय हो। लेकिन यह सुरेशबाबू, जो अपनी मैत्री और सद्भावना को लेकर यहाँ आते हैं, निश्चय ही, वह मेरे साथ तुम सभी को आभारित और कृतज्ञ कर जाते हैं। आज ही वह मुझसे मेरे निर्वाह के लिए अपनी सम्पत्ति में से पाँच हजार रुपये बैंक में जमा करा देने की बात कह गए हैं। यह ठीक है कि वह रुपये मुझे नहीं लेने हैं। किन्तु इसका यह अर्थ तो कदापि नहीं कि उल्टे उनकी इस सद्भावना के विरुद्ध हो, हम लोग उपेक्षा का भाव रखने लगें। अजयबाबू, मेरी स्थिति और है तुम्हारी और। तुम पुरुष हो। तुम समाज में कहीं भी आ-जा सकते हो और उठ-बैठ सकते हो। परन्तु मैं तो एक नारी हूँ, और उस पर भी एक विधवा की स्थिति में हूँ। दीखता है तुम मेरी गुरुता और दयनीयता को कल्पना नहीं करते, जो ठीक भी है। तुम्हारे लिए अभी यही स्वाभाविक है। आखिर, अभी तुम समाज में कहाँ घुसे हो। तुम तो अभी इसे ऊपर-ही-ऊपर से देखते और समझते हो।···"

रोहिणी की इतनी लम्बी बात सुन, लगता था कि अजय का मन गिर गया। उसने रोहिणी की बात का कुछ उत्तर न देकर मन-ही-मन सोचा ?—'ऐसी है यह भाभी, जो सुरेशबाबू के रुपयों में बँधी है। इन रुपयों की खातिर ही इसे एक व्यक्ति का सम्मान करना पड़ता है।' तभी, उसने उद्वेलित होकर नितान्त रूक्ष भाव से रोहिणी की ओर देखकर कहा—"अगर यह रुपयों की बात तुम मुझसे न कहतीं, तो सचमुच तुम अच्छा करतीं भाभी ! तुमने जो-कुछ कहा है, देखता हूँ, वह अधिक कहा है। मैं अपने जीवन में किसी के प्रति उपेक्षा नहीं करता, ईर्ष्या भी नहीं करता। परन्तु जो व्यक्ति के विचारों की आत्मा है, उसकी क्षुद्रता और विवेकहीनता को भी, मैं क्षमा नहीं कर सकता। मुझमें यह कमी है, यही दोष है मेरा ! सुरेशबाबू धनिक हैं, वह तुम्हें रुपये देते हैं, या देना चाहते हैं, इसीलिए मैं उनका सम्मान करूँ, यह मुझसे नहीं हो सकता। और आज जब तुमने स्पष्ट ही मुझसे कहा है, तो मेरी तुमसे प्रार्थना है कि तुम भी यही स्वीकार करो। अपने इस सुन्दर और अनुपम नारी-जीवन में एक आदर्श की प्रतिष्ठापना करो, भाभी ! तुम्हारी आत्मा की ज्योति में, जो एक देवि-रूप मूर्ति देदीप्यमान हो रही है, उसे इस प्रकार कलुषित और भ्रष्ट न होने दो। उसे इस धन की चकाचौंध में मत खो जाने दो। जो जीवन तुमने आज पाया है, निश्चय ही वह पहले तुम्हें नहीं मिला है। और तुम अपने को विधवा देखती हो, असहाय देखती हो, निर्मम समाज के भय से काँपती हो। मैं कहता हूँ, समाज कुछ नहीं है, हाँ, कुछ नहीं। वह विचारों का एक समूह-मात्र है, जो बँधा पिण्ड है, वह जिधर इच्छा हो, उधर ही ढुल-काया जा सकता है। सुरेशबाबू के रुपये स्वीकार करने की अपेक्षा तुम्हें मजदूरी करके अपना पेट भरने में गौरव का अनुभव करना चाहिए। भैया रमाकान्त स्वाभिमानी थे। वह रुपयों को ठोकर मारना जानते थे। वह निर्धन थे, परन्तु हृदय से वह हजारों धनवानों से बड़े थे। और तुम हो उनकी पत्नी, जो अपने इस अजय से एक धनिक का सम्मान करने की बात कहती हो। जाने तुम क्या सोचती हो। जाने तुम जीवन को और इसकी आत्मा को किसी दृष्टि से देखती हो। जो

तुम्हारा समाज है और उसका चोर है, मुझे दीखता है, उसे तो तुम अपने साथ लिये हो। तुम तृषित हो! तुम धन और उसके वैभव की प्यासी हो।···"

"सुरेशबाबू····"

"भाभी, देखता हूँ, तुम मेरे लिए हर प्रकार से सम्मान की पात्री हो। तुमने जो-कुछ कहा है, सचमुच, वह सब अजय को बिना जाने-समझे कहा है। खैर, तुम्हारी राह और है, मेरी और! तुम मेरी आत्मीया हो, चाहो तो, कल मेरे साथ घर चल सकती हो। तुम सुरेश बाबू के रुपये लौटा दो। तुम अपने जीवन को गरीबी में और वैधव्य में पड़ा रहने दो, भाभी! तुम इसी में जीवन बिताकर वास्तविक शान्ति उपलब्ध कर सकोगी। यह अजय है, तुम्हारा अनुचर—तुम्हारा अपना ही एक, तब क्यों नहीं तुम इसके निर्बल कन्धों पर अपने आशीष का हाथ रख दो और इसे जीवन के गहरे-से-गहरे अंधकार में भटकने दो। इसे अपने आत्मीयों के लिए सुख और शान्ति की खोज करने दो। मैं तुमसे यही माँगता हूँ। तुमसे यही चाहता हूँ, भाभी।····"

रोहिणी चारपाई पर उठकर बैठ गई थी। वह घुटनों पर सिर रखे हुए थी। दीखता था, उस समय पर अशान्त और अस्थिर बनी थी। वह रह-रहकर अजय की ओर देख रही थी और उसकी बात सुन रही थी। अजय के मुँह पर जो क्रोध की और आत्म-पीड़ा की गौरवपूर्ण लाली दीखती थी, उससे रोहिणी सचमुच डर रही थी और अपने अन्दर-ही-अन्दर काँप रही थी।

लेकिन जिस क्षुब्ध भाव को लेकर अजय बोला था, उसी के प्रति फिर अपना ध्यान लगा, और रोहिणी को इस प्रकार बैठा हुआ पाकर वह बोला—"भाभी, क्या सोच रही हो! ओह, दीखता है, जो मैंने कहा, तुम उसी में अटकी हो! तुम मेरी ही बातों पर टिकी हो। मैंने जो-कुछ कहा है, बे-समझे कहा है, तो उसे क्षमा कर दो, भाभी! मैं तुम्हें हँसाकर जाऊँगा। मैं तुम्हें ऐसी छोड़कर नहीं जाऊँगा!"

किन्तु रोहिणी चुप थी, फिर भी मौन!

उसी समय किंचित् हास्य-मण्डित मुद्रा में अजय बोला—"तो कल

लक्ष्मी जीजी के यहाँ दावत है, सुरेशबाबू की ! यह है, पैसे की महत्ता कि इतने सस्ते में देश-भक्ति करने का तमगा भी और ऐसे-ऐसे सम्मान भी ! इसी से मैं कहता हूँ, इस प्रकार जेल जाने से इन व्यक्तियों का उद्धार नहीं हो सकता। देश की वास्तविक भूख ऐसे नहीं मिटेगी !…"

"तो तुम जेल जाना व्यर्थ समझते हो ?" एक काएक रोहिणी ने पूछा।

"हाँ, बिलकुल व्यर्थ !" अजय ने आवेश में कहा, "जो जाते हैं, मैं उनकी मनोवृत्ति की बात कहता हूँ। चार-छः महीने के लिए जेल जाकर जनता और मित्रों से सम्मान पाना और अपने व्यवसाय को अधिक प्रकाश में ले आना, मैं देश-भक्ति का ढोंग मानता हूँ। स्वतन्त्रता जिन्हें चाहिए, वह और हैं—वह निर्धन हैं। वह इन्हीं जेल जाने वालों के पैरों-तले कुचले गए हैं। इन शहरों की सीमा और चहारदीवारी के बाहर, जो हाहाकार मचा है और भूख की ज्वाला का चीत्कार हो रहा है, वह इन शहरी, महा प्रभुओं के द्वारा ही प्रादुर्भूत हुआ है। हमारे गाँव आज जितने नंगे और पंगु बन गए हैं, वे सब-के-सब अपनी आत्मा के करुण क्रन्दन से इसीलिए भरे हैं कि वे परतन्त्र हैं और इन धनिकों के द्वारा सताये गए हैं और लूटे गए हैं। जो आदर्शवादी हैं और समाजवादी हैं, उन्हीं धनिकों ने अपनी एकाकार और सपाट मनोवृत्ति के बल पर भ्रूण और पैशाचिक हत्याएं इस देश में प्रचारित की हैं। आज हमारी करोड़ों बहनें और माताएं अपनी लाज ढाँकने के लिए न वस्त्र पाती हैं, न पेट के लिए रोटियाँ। मुट्ठी-भर अन्न के लिए माताएं दो-दो चार-चार पैसों में अपने बच्चे बेचती हैं। वह अपने को दरिद्र-नारायण की उपासक कहने वाली धनियों और समाज-सेवियों की टोली अपनी दृष्टि के नीचे दिन-रात यह देखती है कि बच्चे और माताएं कुत्तों से टुकड़ा छीनते हैं और उससे अपने पेट की अग्नि शान्त करना चाहते हैं। आखिर यह सब क्यों ? यह स्थिति ही क्यों ? भाभी, मैं कहूँ कि समाज अन्धा है। आदर्श अन्धा है, विवेक अन्धा है, तो तुम कह सकती हो कि इन सबको अन्धा बनाया गया है। पैसा यों ही नहीं आता। इसके लिए उपचार किया जाता है। जाल बिछाया जाता है। वैसा वातावरण पैदा किया जाता है। तुम सरलता से समझो, तो कहूँ

कि पैसे को पाने के लिए पाप किया जाता है ! लूट, चोरी और डाके के साथ खून-जैसी नगण्य हत्याओं का रोमांचकारी दृश्य भी उपस्थित किया जाता है। पैसा तभी आता है। उदार और सद्भाव्य बने हुए व्यक्ति के पास पैसा न आता है, न आ सकता है। क्योंकि पैसा दूसरों की जेब से निकाला जाता है। जो सरलता से नहीं, दम्भ, और झूठ बोलकर पाया जाता है !...''

इसके बाद ही अजय ने कहा—''तुम महेशबाबू के घर चली जाना। मैं समय पर आ जाऊँगा।'' कहते-कहते वह तकिये पर सिर रखकर पड़ गया और बोला, ''भाभी, तुम कैसे बैठी हो, सो जाओ। आज मैं अधिक थका हूँ। भूखा भी हूँ। कहो, है कोई लड्डू गरम-गरम रसगुल्ले ! खाने के लिए जेब में पैसे ही नहीं।''

यह सुनते ही, जाने किस भावना से अभिभूत होकर रोहिणी एका-उठ खड़ी हुई, जब वह अपने कमरे की ओर जाने लगी, तो अजय ने उसका पल्ला पकड़कर पूछा—''कहाँ चलीं तुम ?''

''छोड़ो, भाभी आई।''

''बताओ, ला रही हो, क्या लड्डू।''

''हाँ, हाँ ला रही हूँ।''

और जब रोहिणी भीतर से लौटकर बोली—''सुनो अजयबाबू, खुले पैसे तो हैं नहीं, यह दस रुपये का नोट है। ले जाओ और दूध रसगुल्ले जो मनभाये ले आओ।'

अजय उसी प्रकार पड़ा-पड़ा बोला—''नहीं भाभी, यह कुछ नहीं अब कुछ नहीं।''

''तुम उठो तो ! मेरे कहने से उठो।''

अजय उठकर बैठ गया। वह रोहिणी की ओर देखकर हँसता हुआ बोला—''भला यह भी कोई बात है ! निरी बच्चों की-सी हठ है तुम्हारी !''

''और तुम उठ नहीं रहे हो। मेरी कसम, उठो। तुम्हें अकेले ही थोड़े खाने दूँगी, मैं भी तो खाऊँगी।''

 अजय उठा और हाथ में दूध के लिए लोटा और नोट ले बाहर

चला गया। तभी अकेले में रोहिणी ने अपने मन में कहा—'अजयबाबू एक पहेली है, जिसे समझना आसान नहीं है। यह अजय जहाँ एक शिक्षित और तार्किक व्यक्ति है, वहाँ निरा बच्चा भी है। इसमें छिपाव नहीं; अहं और स्पर्धा भी नहीं है।'

तभी रोहिणी अपने हल्के मन से चारपाई पर पड़ गई और ऊपर तारों-भरे आसमान को देखती हुई, जैसे निपट अजान-सी जाने कितने गहरे और गूढ़ अन्धकारमय पथ पर चढ़ गई। वह तब अजय के साथ थी। और उसीके मार्ग-प्रदर्शन में उस अनन्त और सीमाहीन पथ के अन्धकार में बढ़ती जा रही थी। लगता था, वह तब अपने जीवन से सन्तुष्ट थी। उसकी व्यापकता और सार्थकता उसकी दृष्टि में आ गई थी।

उसी समय अजय बाजार से दूध और रसगुल्ले लेकर आ गया। दोनों वस्तुएं उसने रोहिणी के सामने रख दीं और पैसे देने लगा।

रोहिणी ने कहा—"अपना बटुआ दो।"

"क्यों?"

"दो तो सही!"

अजय ने अपना बटुआ दे दिया। रोहिणी ने देखा कि उसमें एक धेला पड़ा था। तब वह हँस पड़ी। अजय भी हँस दिया।

उस बटुवे में रुपये-आने रखकर जब रोहिणी ने उसे अजय को लौटाया, तो वह बोला—"यह कल-भर में ही खत्म हो जायंगे भाभी! तुम्हीं रखो।"

तब रोहिणी ने नितान्त हर्षित और भावुक होकर कहा—"यह समाप्त होने के लिए ही तो दे रही हूँ। तुम्हारे हाथों मेरा सब-कुछ समाप्त हो, मैं इसकी ही कामना करती हूँ, अजयबाबू!"

"यह भावुकता है, पर वास्तविकता से दूर की बात है, भाभी!"

"अच्छा, यह रसगुल्ला लो। मुँह खोलो।"

अजय ने मुँह खोला और रसगुल्ला ले लिया। तब उसने भी एक रसगुल्ला उठाया और रोहिणी के 'न, न,' करते रहने पर भी उसे खिला दिया। रोहिणी ने दूध ठंडा करके अजय को पिला दिया और स्वयं भी पी लिया।

तब खा-पीकर अजय ने डकार ली और बोला—"अब मुझे नींद आयगी; आज गहरी नींद आयगी।" वह सो गया।

किन्तु रोहिणी थी, जिसे नींद नहीं आ रही थी। वह अपनी चारपाई पर पड़ी हुई कभी अजय को देखती और कभी ऊपर आसमान में चमकते और टूटते तारों को। वह तब प्रसन्न थी और निरुद्देश्य ही अपने मन में कह रही थी—'यह जीवन है, जिसका आर है न पार। जिसे समझना भी आसान नहीं है, सर्वथा कठिन और दुष्कर···!'

दूसरे दिन जब रोहिणी महेशबाबू के घर पहुँची, तो उसे देखकर लक्ष्मी ने पूछा—"और अजयबाबू ?"

रोहिणी बोली—"वह सुबह से कहीं गये हैं। यहाँ पहुँचने को कह गए थे, आते ही होंगे।"

महेशबाबू ने कहा—"अजयबाबू जरूर आयंगे।"

तभी सुरेश आया। उसे देखते ही महेशबाबू ने पूछा—"रोहिणी के जो देवर हैं, रमाकान्त के मामा के लड़के, वे तुम्हें मिले क्या ? बहुत समझदार और योग्य व्यक्ति हैं। इसी वर्ष बी० ए० की परीक्षा देकर आये हैं। वैसे और भी अध्ययन काफी किया है।"

सुरेश ने बैठते-बैठते कहा—"हाँ मिला, कल मिला।"

महेशबाबू ने कहा—"सुरेशबाबू, तुम बी० क्लास के बन्दी रहे। शायद तुम साधारण कैदियों के सम्पर्क से दूर रहे। कुछ दुर्बल हो आये दीखते हो।"

सुरेश ने कहा—"मैं मन से स्वस्थ हूँ। वहाँ का नियमित जीवन मैं पसन्द करता हूँ।"

महेशबाबू ने हँसकर कहा—"यही बात तो मैं जीवन के विषय में सोचता हूँ सुरेशबाबू! स्वतन्त्रता का हम उपयोग नहीं कर पाते। तुम्हारी ही बात है कि जेल में जो जीवन नियमित बनाना पड़ा, वह

तुम्हें पसन्द आया। जो बाहर, तुमसे नहीं निभ पाया।"

सुरेश बोला—"तुम्हारी बात से सहमत न होकर भी मेरी यह धारणा तो स्पष्ट है कि जो सामूहिक जीवन है, उसके लिए तो स्वतन्त्रता का आस्वादन करने के लिए अपने मन पर संयम रखना पड़ेगा। जो आसान नहीं है।" तभी उसने चौके में से बाहर निकलती हुई रोहिणी की ओर देखा। उसने पूछा—"भाभी, तुम्हारे मामा के लड़के नहीं आये?"

रोहिणी ने किंचित् मुस्कराते हुए उन दोनों की ओर देखते हुए कहा—"उनके मन की बात है, आ भी जायं!"

"कहीं गये हैं क्या?" सुरेश ने पूछा।

"हाँ, सुबह से गये हुए हैं। आने के लिए तो कह गए हैं। लेकिन आ जायं तो बात है।"

महेशबाबू ने कहा—"अजयबाबू के हृदय में कोई बात है। दीखता है, वह किसी सात्विक और महान् कार्य में लगे हैं। वह आयंगे तो अवश्यं, मुझे इसका भरोसा है।"

वहाँ से रोहिणी फिर रसोई में चली गई। महेश और सुरेश में जो बातें चली थीं, वह फिर अपनी उसी गति पर आ गईं। तभी कमरे के द्वार पर अजय की आवाज आई—"मैं आ सकता हूँ, महेशबाबू!" और अजय कमरे में चला गया। वह सुरेश को देखकर हँसता हुआ बोला—"आइये, आपसे हाथ मिलाऊँ सुरेशबाबू! आप जेल-यात्री हैं और आज की यह दावत केवल आपके ही कारण हो रही है।"

सुरेश ने हाथ मिलाते हुए कहा—"अभी आपका ही जिक्र चल रहा था। मैंने आते ही पूछा था,···बैठिये।"

अजय अपने कन्धे पर रखे कोट को कुर्सी पर टाँगकर बैठ गया और इस-उस ओर देखकर बोला—"दीखता है, वह चौके में हैं, हमारी दोनों भाभियाँ?"

महेशबाबू ने कहा—"वे दोनों खाना बनाने में लगी हैं।"

तभी रोहिणी ने अजय के पीछे से आकर कहा—"आ गए, तुम! दीखता है दूर निकल गए थे।"

अजय ने कहा—"हाँ, दूर निकल गया था भाभी !"

"पर स्नान तो कर लेते, सिर के बालों में तेल तो डाल देते !" रोहिणी ने उसके निकट आकर कहा।

ऊँह, अब मैं नहाने-धोने के चक्कर में नहीं पड़ूँगा। बस, मुँह-हाथ धो लेने-भर से ही काम निकल जायगा।"

महेशबाबू ने कहा—"स्नान कर लो।"

"नहीं भाई, मैं आज ऐसे ही खाऊँगा। देखना तुम सबसे अधिक खाऊँगा। लो, नहीं मानते तो मुँह-हाथ धोये लेता हूँ।" और वह गुसलखाने की ओर बढ़ गया। मुँह-हाथ धोकर जब वह लौटा तो रसोई के द्वार पर जाकर लक्ष्मी को सम्बोधित करते हुए बोला—"भाभी जी, नमस्ते। देखिये, मैं आ गया; अब जल्दी कीजिए। कोई मेरे योग्य सेवा हो तो आज्ञा करें।"

लक्ष्मी ने कहा—"बस, बैठ जाइए इतमीनान से, यही सेवा है आपके लिए।"

रोहिणी ने कहा—"बस इन्हें तो शोर मचाना आता है, काम करने का तो बहाना ही है, बस।"

"लो, भाभी जी सुना आपने, अभी खाया नहीं है कि झिड़कियाँ पहले पड़ने लगीं।" अजय ने लक्ष्मी की ओर देखकर कहा। वह हँसता हुआ महेशबाबू और सुरेशबाबू के पास पहुँच गया। वहाँ जाते ही महेशबाबू को लक्ष्य करके वह बोला—"यहाँ से चलते-चलते आपके मित्र सुरेशबाबू से भी परिचय हो गया।"

महेशबाबू बोले—"क्या मतलब ?"

"मतलब यह है कि मैं कल यहाँ से जा रहा हूँ ?"

"कल ही !" सुरेश ने कहा, "नहीं अभी और ठहरिये। आपने यहाँ के दर्शनीय स्थान तो देखे ही नहीं···।"

"जी, मैं सब जगह हो आया हूँ, मैं दिन-भर घूमता ही तो रहता हूँ। मुझे इसके अलावा काम ही और क्या है यहाँ ?"

उसी समय रोहिणी फिर वहाँ आई। जिसे देखते ही सुरेश ने

कहा—"सुना भाभी, तुम्हारे अजयबाबू क्या कह रहे हैं। यह कल यहाँ से जाने की बात कह रहे हैं।"

तभी रोहिणी ने अजय की ओर देखकर कहा—"अजयबाबू मेरे अधीन हैं, अपने नहीं। यह मुझसे पूछकर जायंगे, वैसे नहीं।"

तभी लक्ष्मी ने आकर कहा—"खाना तैयार है।"

सुनते ही अजय ने कहा—"तो हमारा पेट भी तैयार है, भाभी-जी!"

"अरे, रोहिणी मैं परसती हूँ, तुम इन सबको खिलाती जाओ।"

वह दोनों चली गईं तो महेशबाबू ने हँसते हुए कहा—"अजय बाबू, आपने सुना अपना फैसला! कितना साफ और स्पष्ट हुआ! कभी-कभी दुनिया की बात भी मानी जाती है, भाई!"

अजय ने कहा—"दुनिया की बात सुनी जाय, मैं इस सिद्धान्त को मानता हूँ।"

इतने में रोहिणी खाने का थाल ले आई। वह बारी-बारी से तीन थाल रख गई।

महेशबाबू ने कहा—"शुरू करो अजयबाबू!"

खाना आरम्भ हो गया। तभी खाते हुए सुरेश ने कहा—"भारतीय जेलों को मैं नर्क से कम नहीं मानता महेशबाबू! मैं उनमें कोई जीवन नहीं देखता।"

महेशबाबू ने कहा—"मेरा तो मत है, जो चोर अपने फन में बाहर कच्चा रहता है, वह जेल में जाकर और अधिक पक्का हो जाता है। भारतीय जेलें व्यभिचार और पापाचार के अड्डे बने हैं।"

सुरेश ने फिर कहा—"मैं अब इस पक्ष में भी नहीं हूँ कि हमारी माताएं और बहनें जेलों में जायं। मैं उनके लिए जेल को अनुकूल स्थान नहीं समझता।"

अजय खाने में लगा था। बीच में कभी-कभी वह उन दोनों की ओर देख लेता था। इतनी देर में वह आधे से अधिक खाना खा चुका था। तभी उसको लक्ष्य करके महेशबाबू ने प्रश्न किया—"आपका इस विषय में क्या मत है, अजयबाबू?"

अजय पानी पीकर डकार लेता हुआ बोला—"मैं अभी तक बड़े महत्त्वपूर्ण काम में लगा था। हाँ, अब कहिये अपनी बात।"

और उसने कहा—"जब जेल है, तो यह सभी-कुछ है। पाप भी है, व्यभिचार भी है। मैं कहता हूँ, जेल स्वयं ही व्यर्थ है और बेकार है। जिस किसी ने भी जेल का निर्माण किया है, निःसन्देह उसने मानवता के साथ विवेक-शून्य और अर्थ-रहित व्यवहार किया है। ऐसे ही अनेक दण्डों में जो कठोरतम दण्ड है वह फाँसी है, जो मानवता के लिए एक अभिशाप है, जो दण्ड की व्यवस्था का थोथा और निकम्मा रूप है। वही युगों से आज तक प्रचारित होता आया है।"

तीनों भोजन कर चुके। जब कुल्ला करके वे फिर अपनी-अपनी जगह पर बैठ गए, तो अजय बोला—"जेलों में ऐसे भी व्यक्ति मिलेंगे, जिनके तीस-चालीस वर्ष वहीं बीत गए। किन्तु उनका जीवन वहीं-का-वहीं रहा। वहाँ का व्यक्ति दुराचारी इसलिए अधिक बना कि यह नहीं समझा गया कि उस चोर, डाकू अथवा खूनी की भूख क्या थी और इच्छा क्या थी। उसकी एक बुराई को रोकने के लिए उसके विकासशील जीवन की अन्य गतियों को भी रोक दिया गया और उन्हें पूर्णतया दबा दिया गया।"

उसने फिर कहा—"मैं कहता हूँ, जेलों को गिरा देना चाहिए। कहा जाता है कि यह जितने भी अपराध हैं, यह व्यक्ति के मस्तिष्क की कमजोरी और स्वभावजन्य हैं। जो अवसर पाकर उभरते और फैलते हैं। पर मेरा मत दूसरा है, ये पूँजीवाद की दुर्बलता और अहम्मन्यता के प्रतीक हैं, जो उसने समाज में 'गुण्डा' और 'बदमाश'-जैसे शब्दों की सृष्टि की है। जो व्यक्ति लाखों के धन में से थोड़ा-सा ले पाता है, छीन पाता है या चुका पाता है, उसे ही इस पूँजीवाद की ओर से गुण्डा कहा जाता है। मैं पूछता हूँ, वह लाखों का धन आया कहाँ से। वह किन व्यक्तियों से आया? कैसे ढंग से आया? निश्चय ही आप इनको सभ्य और सुन्दर शब्दों से व्यक्त करेंगे और बतायंगे। परन्तु जिन व्यक्तियों को आप गुण्डा समझते हैं, यदि जरा भी सचाई के साथ सोचें, तो आप 'गुण्डों' और 'सभ्य' दोनों प्रकार के व्यक्तियों को एक ही

स्थल पर खड़ा हुआ पायंगे। अन्तर केवल इतना ही है कि एक के साथ अनेक साथी होते हैं—फौज, पुलिस, राज्य और विश्व-भर का पूँजीवादी समाज। दूसरा सर्वथा अकेला और एकाकी है। परन्तु तो भी आप उसे निर्भीक पायंगे। प्रतिहिंसक पायंगे। जो करता है, उसके प्रति दृढ़ पायंगे···!"

"महाशय, आप देखते हैं कि करोड़ों किसान और मजदूर, जो दिन-भर परिश्रम करते हैं, जो गाढ़े पसीने की कमाई खाते हैं, उन्हें मिलता क्या है?—मुश्किल से दो रोटियाँ। और जो धनिक हैं, वह उनकी कमाई को बरबस पाते हैं। जो मोटर, बग्घी तथा महलों के स्वामी बनते हैं। यह है अन्याय—यह है चोरी और लूट। पर चूँकि जो राजा हैं—राज्य है, वह स्वतः ही उस कमाई में बँटवारे का अधिकारी है, इसलिए धनिकों और जागीरदारों की चलती है और तभी उनकी स्वेच्छाचारिता फलती-फूलती है।"

महेशबाबू ने कहा—"जो धन की उपादेयता और सार्थकता है वह आज स्वयं अपने-आप में निकृष्ट बन गई है। हमें जिन वस्तुओं की आवश्यकता है, उसमें इस पैसे को मध्यस्थता ने विषमता की बेल बो दी है। समाज में जो दुर्बलता है, वह इस पैसे ने ही उत्पन्न की है।"

अजय ने कहा—"समाज और धर्म, यह पैदा ही अमीरों का किया हुआ है। पाप और पुण्य नाम के दो थोथे विचारों को यों ही उपस्थित किया गया है। इनके बल पर इस मानव को सदा ठगा गया है। जिसका सबसे अधिक प्रभाव नारी पर पड़ा है। इसे कुचला गया है और दबाया गया है।"

सुरेश ने कहा—"जो पैसे की सार्थकता है, उसे कैसे भुलाया जा सकता है? पैसे ने हमें बहुत-कुछ दिया है। मानवता का पाठ भी हमें इस पैसे ने ही तो पढ़ाया है!"

तब सुनते ही अजय ने कहा—"यह भी कह दीजिये कि जो दानवता और अमानुषिकतापूर्ण पैशाचिकता का पाठ इस व्यक्ति को पढ़ाया गया है, वह भी इस पैसे ने दिया है।"

"मैं इसे मानता हूँ और स्वीकार करता हूँ।" सुरेश ने कहा।

"तब तो कहूँगा, यह मानव यदि पहला-सा ही मानव रहता, जंगली रहता, अन्धकार में रहता तो सुखी रहता, शान्त रहता और ठीक भी होता।" अजय ने कहा।

उसी समय रोहिणी और लक्ष्मी वहाँ आ गईं। अपने को सँभालते हुए अजय ने कहा—"चलो भाभी, घर चलो।"

महेशबाबू ने कहा—"बैठो, बैठो।"

किन्तु अजय खड़ा हो गया। उसे चलने के लिए तैयार देखकर रोहिणी को भी चलना पड़ा। तभी सुरेश की ओर देखकर अजय बोला—"क्षमा करना भाई, मैंने अमीरों की बुराई बहुत कर दी।"

सुरेश ने कहा—"ठीक ही तो की आपने बुराई।"

तभी महेशबाबू ने पूछा—"सन्ध्या को मिलेंगे क्या? मिलें तो ठीक रहे, कहीं घूमने ही चले चलेंगे।"

अजय ने हाथ मिलाते हुए कहा—"अवश्य मिलूँगा। अब शाम तक घर पर ही रहूँगा।"

अजय और रोहिणी के जाते ही महेशबाबू ने कहा—"सुनी अजय-बाबू की बात, सीधी तीर-सी लगती हैं।"

सुरेश ने कहा—"बात कड़वी हो सकती है, पर है सच्ची।"

यह सुनकर महेशबाबू ने जाने कैसे भाव से खुले अन्तरिक्ष की ओर देखा। उनकी दृष्टि में कुछ समाया था, कुछ भरा था।

घर आते-आते रोहिणी ने अजय से कहा—"तुम क्या बार-बार जाने की बात कहते हो! सुन लो, तुम बिना मेरी इच्छा के कहीं नहीं जा सकते।"

यह सुनकर अजय अनबोला-सा ताकता रह गया। वह चकित होकर रोहिणी की ओर देखने लगा।

रोहिणी ने फिर कहा—"आखिर तुम्हारे मन में क्या है, कुछ मुझे भी तो बता दो ?"

कुर्सी पर बैठते हुए अजय ने रोहिणी को देखकर कहा—"मुझमें क्या-कुछ है भाभी ! कुछ नहीं !"

"कुछ कैसे नहीं, जाने किस रहस्यमय जीवन को लेकर चले हो, तुम ! जाने तुम···।"

"भाभी···!"

"अजयबाबू !" रोहिणी ने अजय की उस कुण्ठित हुई वाणी को सुनकर मानो अपने स्वर में विश्व-भर की दीनता और याचना सँजोकर कहा, "तुमने एक दिन भी नहीं देखा, तुमने नहीं समझा कि यह रोहिणी है मेरी भाभी; जो विधवा है, आखिर यह कुछ भी नहीं चाहती जीवन में। बताओ, इसने कौन-सा पाप किया है ? और दुनिया की तरह तुम भी हो जो नहीं चाहते, जो नहीं समझते कि इस भाभी के जीवन में जो रोदन है, जो चीत्कार है, वह इसके जीवन को तोड़ देगा और उजाड़ देगा। इसका यह सूनापन, यह भयावह जीवन, इस प्रकार कभी भी इसे नहीं पनपने देगा।" कहते-कहते रोहिणी का गला भर आया।

और अजय चकित था। वह उस क्षण में बन आई रोहिणी को जैसे जरा भी नहीं समझ पाया। जो अभी महेशबाबू के घर हँस रही थी, बोल रही थी, उसी को इस प्रकार देखकर वह एकाएक कुछ भी नहीं कह पाया।

रोहिणी ने फिर कहा—"मुझे क्या पता था कि जीवन की शान्ति के लिए और यह जीवन जीवित रहे इसके लिए, दूसरों से अनुनय-विनय करनी होगी। बताओ तो तुम, ज़रा एक बार देखो तो, मेरे अन्तस् में जो द्वन्द्व है, जो रोदन है, वह मुझे मार नहीं देगा क्या ? और तुम बार-बार कहते हो—मैं जाऊँगा, मैं चला जाऊँगा। जाओ तुम ! तुम सोचते हो—मेरा यही तीर है जो भाभी के लगता है। भाभी अकेली जो है, निर्बल जो है; पर भाभी जियेगी, तो जी लेगी। यह ऐसे किसी को बाँधकर भी नहीं रख सकेगी।"

यह सुनकर अजय नितान्त आतुर होकर कुर्सी से उठा और रोहिणी के पास जाकर उसके सिर पर हाथ रखकर बोला—"भाभी, तुम बड़ी भावुक हो! भला, ऐसे दुःखी क्यों होती हो! मेरे न जाने की बात कहती हो तो न जाऊँगा मैं—यहीं रहूँगा।"

तब रोहिणी ने अजय की ओर देखा। अजय ने कहा—"बताओ तो, क्या तुमने यह भी नहीं सोचा कि अजय तुम्हारा है, तुम्हारा रहेगा।"

रोहिणी ने तभी फिर रुआंसी-सी होकर कहा—"मैं जीवन में दिन-दिन बेचैन बनती जा रही हूँ अजयबाबू, मैं अपने लिए आधार और सहारा चाहती हूँ। मुझमें जो बिछलन है, जो सूनापन है, वह इस घर के एकाकी-जीवन में जैसे वीभत्स है, रौद्र है। मैं अपने को चीत्कार करता हुआ पाती हूँ।"

"कोई बात भी है, या अकारण ही तुम ऐसा पाती हो। तुम तो व्यर्थ ही डरती हो।"

रोहिणी ने अपनी भरी हुई आँखों को पोंछकर अपना सिर झुका लिया।

तभी अजय ने अनुभव किया कि जैसे किसी भूचाल में फँस गई है यह भाभी। अभी पूरा-का-पूरा जीवन उसका पड़ा है, जिसके आगे जरा भी प्रकाश नहीं है। जो सचमुच निराश्रित है। जिसका जीवन रोना-बिसूरना-भर ही रह गया है। जो अल्हड़पन और मस्ती के दिन थे, उन्हीं में उसे यह सब-कुछ मिला है। जब जीवन को कुछ समझा है, उत्तरदायित्व को समझा है; आकांक्षाओं का मुँह तो अब खुला है।

तभी उसने रोहिणी की ओर देखकर कहा—"मैं नहीं जाऊँगा, भाभी! नहीं जाऊँगा। और भाभी, तुम्हारे जीवन में जो चीत्कार भरा है, असमय ही एक अभाव तुम में जो समा गया है, देखता हूँ उसे अब कोई नहीं पूर सकता, कोई नहीं मिटा सकता। किन्तु इसके अतिरिक्त जो और व्यावहारिकता है, आत्मीयता है, उसके लिए इस अजय की सारी उपयोगिता और सार्थकता तुम्हारे चरणों में अर्पित है भाभी!"

रोहिणी ने कहा—"मुझे तुम पर भरोसा है। मैं जिस अन्धकार में हूँ, मैं जहाँ भटक रही हूँ, तुम्हारा सहारा पाकर मैं उसी से अपना निस्तार चाहती हूँ, मुक्त होना चाहती हूँ, अजयबाबू! और जानती नहीं कि तुम मुझे छोड़कर कहीं जाओगे! ऐसे नहीं जाओगे," यह कहते रोहिणी ने एकबारगी रोते हुए, नीचे झुककर अजय के पैरों को पकड़ लिया और रोते-रोते कहा, "अजयबाबू, मैंने जिस जीवन को नहीं समझा, आज तक नहीं देखा, उसे अभी देखा, वह तुम्हारे पास देखा। जो मैंने समझा था, वह सत्य नहीं है। वह उपादेय भी नहीं है। जीवन और है, कुछ और। वह तुम्हारे पास है।"

अजय मौन ही रहा। वह नितान्त गूढ़ और गम्भीर बना हुआ बाहर के खुले अन्तरिक्ष की ओर देखने लगा। उसकी खुली हुई आँखें जैसे हरे आसमान को छेदकर किसी खोई हुई वस्तु को पाने की चेष्टा में लगी थीं। तभी रोहिणी उसके पैरों को छोड़कर उसकी ओर देखकर बोली—"अजयबाबू!"

अजय ने उसकी ओर बिना देखे हुए कहा—"हूँ!"

"तुम रो क्यों रहे हो। तुम मेरी तरह ही रो पड़े हो। शायद मेरे कारण ही।"

यह सुनते ही अजय ने रोहिणी की ओर देखा, और एकटक खोया-सा उसे ही देखता रहा।

रोहिणी खड़ी हो गई और उसने दूसरी ओर देखते हुए कहा—"तुम्हें अपना जानकर ही मैंने इतना-भर कहा, अजयबाबू! देखते हो, रोहिणी का मसला हुआ हृदय है। यह निराशा, वैधव्य और सुनसान से भरा है। इसके भाग्य में जैसे यही लिखा है। तुम ही इस पर पैर रख दो, तुम ही इसे मसल दो।"

अजय ने मर्माहत होकर कहा—"भाभी, तुम कहे ही जाओगी! जो तुम्हारे मन में है, तुम उसे सुनाये ही जाओगी! तुम ज़रा भी नहीं देखतीं, तुम कुछ भी नहीं सोचतीं कि यह अजय है, जो हाड़-मांस का है, यह पत्थर का नहीं बना है।"

"हाँ, देखती हूँ तुम रोये हो, जो कदाचित् अपनी इस दुर्भागी

भाभी की दयनीय स्थिति को अनुभव करके रोये हो। पर मैं कहती हूँ, तुम क्यों रोते हो? तुम पुरुष हो, तुम स्वतन्त्र हो, तुम गतिवान हो, तुम प्रगति-सम्पन्न हो, भाई! और मैं?—जैसे निरी जड़, जो सूख गई है, जिसमें चेतना का नाम ही नहीं है। इस दुनिया के हाट-बाजार में जिसका कोई भी मोल नहीं है।"

"ओफ, मैं थक गया। मैं अब तुमसे हार गया, भाभी!" कहकर उद्विग्नता से अजय ने सिर झुका लिया।

उसी क्षण रोहिणी कमरे से चली गई। वह दूसरी ओर जाकर चारपाई पर कटे पेड़ की तरह गिर गई। कुछ देर बाद जब अजय ने सिर उठाकर देखा और वहाँ अपने को अकेला पाया तो वह तुरन्त ही वहाँ से खड़ा हो, रोहिणी के पास जाकर उसके सिरहाने जाकर बैठ गया। रोहिणी मुँह पर धोती डाले पड़ी थी। अजय ने उसके सिर पर हाथ फेरते हुए पुकारा—"भाभी!"

भाभी नहीं बोली, नहीं बोली।

अजय ने फिर कहा—"ज्ञात और अज्ञात में जो-कुछ अपराध मुझ-से हुआ, उसे क्षमा कर दो, भाभी!" कहते-कहते उसने रोहिणी के मुँह पर से धोती का पल्ला हटाया। देखा कि रोहिणी रो रही थी। उसकी आँखें बरसाती नदी की तरह बह रही थीं। उसी ओर झुककर अजय ने अपनी हथेली को उसकी गीली आँखों पर रख दिया और कहा—"ऐसे जाने तुम कब तक रोती जाओगी, कोई अन्त है, इसका?"

रोहिणी ने उसी प्रकार पड़े हुए कहा—"लो, तुम मेरा गला घोंट दो। घोंट दो।"

यह सुनकर अजय फिर चुप हो गया। जैसे फिर उसकी जिह्वा पर ताला ठुक गया हो। वह उसी क्षण फिर भावुक और गम्भीर बन गया। उसकी गले और मस्तिष्क की नसें फूल गईं। लगता था, जैसे नीचे-से ऊपर तक उसमें रोमांच उठ आया हो। रोहिणी के सिर को, उसने प्यार और ममता के साथ अपनी गोद में रख लिया और उसके बालों को सहलाने लगा।

रोहिणी ने फिर कहा—"घोंट दो न, मेरा गला। सच घोंट दो। तुम अपने हाथों से मुझे मार दो।"

अजय ने रोहिणी के उन रेशम-से बालों पर हाथ फेरते हुए कहा—"जाने तुम्हें कैसे यह विश्वास हो गया कि इस अजय में इतनी शक्ति है, क्रूरता है और यह ऐसा आतंकी है कि जो तुम्हारा भी गला घोंट देगा और मार देगा," रोहिणी के सिर को उसने और भी अधिक अपने-आप से सटा लिया और उस पर से मीठी-मीठी थपकियाँ देता हुआ वह फिर बोला, "जाने तुम कैसी भाभी हो, जो अपने इस अजय को भी नहीं समझ पाईं। जो नित्य ही कहता है कि यह बच्चा है। यह सदा से ही बच्चे जैसा मन लिये हुए आया है। अजय, जिसका मन कच्चा भी है और इसी को तुम रुलाती हो, इसी को तुम डाटती और फटकारती हो। भला मेरे मन में क्या है, जो तुम खोजती हो और पाना चाहती हो! ना, कुछ नहीं, हाँ, कुछ नहीं···!

देखा कि इतनी देर में रोहिणी के आँसू कुछ सूख गए थे, कुछ पुँछ भी गए थे। उसके जो होंठ रूखे और सूखे बन गए थे, वह अब एक-बारगी फिर लहलहा उठे और मुसकरा उठे। आँखों में मादकता छा गई थी। रोहिणी ने अब अपनी बाँहों को अजय के ऊपर डाल दिया था। सरल और सुन्दर आँखों से अजय को देखने के साथ, रोहिणी ने अपूर्व मधुर वाणी में कहा—"अजयबाबू, तुम्हारे में जो-कुछ है, वह ऊपर ही नहीं है, भीतर भी है। वह तुम्हारे किसी गहरे स्थल में छिपा है। मुझे यही रोना है। मुझे आज तुमसे यही कहना है कि वह तुमने आज तक मुझसे नहीं कहा है। जाने तुमने किस रहस्य को अपने भीतर छिपाकर रखा हुआ है?"

अजय ने कहा—"तुम्हारा भ्रम है भाभी! मुझमें कोई भी रहस्य नहीं छिपा है।"

रोहिणी ने फिर दुलार के साथ उसके गालों को थपथपाया और कहा—"यही तो झूठ है तुम्हारा। पर मैं पूछती हूँ, तुम्हारी जेब में जो पिस्तौल पड़ा रहता है, यह क्यों है भला? तुम्हारे बक्स में जो उसकी गोलियाँ रखी हैं, भला उनका अर्थ क्या है? निश्चय ही, इन सबमें

तुम्हारा कोई बड़ा संकल्प निहित है। पर मैं कहती हूँ, आखिर भाभी से कब तक छिपाओगे ? इसे क्या एक दिन भी उपयोगी और सार्थक नहीं बनाओगे अजयबाबू !···"

इतनी देर में जैसे अजय का साँस रुक गया था, उसकी गति धीमी पड़ गई थी। और जो उसकी आँखें अभी जैसे मद में आई दीखती थीं, वह फिर एकाएक खाली हो गईं। उसके होंठ सूख गए। उसने उन सूखी और रस-हीन आँखों से रोहिणी की ओर देखा और दूसरी ओर मुँह फेर लिया।

रोहिणी ने उठककर कहा—"अजयबाबू, तुमने मेरा हाथ पकड़ा है अब क्या छोड़ दोगे तुम ? मैं नहीं छुड़ाने दूँगी। मैं तुम्हारे जीवन की सहायक बनूँगी।"

अजय ने एकाएक उद्विग्न और उदासीन हुए स्वर में कहा—"अरे, भाभी तुम ! भला तुम ! अजय के मार्ग पर कांटे बिछे हैं। इसके सारे रास्ते आपदाओं से घिरे हैं। तभी तो कहा है मैंने, मुझे छोड़ दो। इस पथ के पथिक के साथ अपना नाता मत जोड़ो। तुम कोमल हो, तुम देवी हो, तुम पूजनीया हो, भाभी !"

रोहिणी ने कहा—"तुम अपने जिस पथ की बात आज कहने चले हो, रोहिणी उसे जानती है, उसे समझती है। यह आज से अधिक चाहेगी कि तुम अपने पथ के दावेदार बनो। तुम सफल बनो। तुम विजयी बनो।"

"तब ? तब ?" अजय ने मानो निरुद्देश्य ही प्रश्न किया।

रोहिणी ने कहा—"तब, तुम पर जहाँ विपदा आयगी, यह रोहिणी तुम्हें बचायगी, तुम्हारी कमियों को, तुम्हारी गति-विधियों को देखेगी और तुम्हें सचेत करेगी।"

यह सुनकर तब जैसे निरा कल्पनामय व्यक्ति बना हुआ अजय मुसकरा दिया। वह अपनी उस स्थिति को भूलकर हर्ष से भरकर बोला—"तब मैं तुम्हें नहीं रोकूँगा। तुम हम सबकी अग्रणी बनो, मैं इसकी कामना करूँगा।"

 रोहिणी ने कहा—"पहले तुम्हें अपने काम की उपयोगिता को

बताना पड़ेगा, अजयबाबू ! उसे समझाना पड़ेगा।"

अजय ने कहा—"यह मुझे स्वीकार है।"

उसी समय द्वार पर लक्ष्मी, महेशबाबू और सुरेशबाबू को देखकर रोहिणी ने छूटते ही कहा—"अब नहीं जायंगे अजयबाबू ! अभी यहीं रहेंगे।"

सुरेश ने कहा—"दीखता है, इसके लिए तुम्हें रोना भी पड़ा है।"

यह सुनकर रोहिणी ने वहीं खड़े हुए अजय की ओर देखा, जो उसकी ओर देखता हुआ धीमे-धीमे मुसकरा रहा था।

दूसरे दिन दोपहर को अजय कपड़े पहनकर कहीं जा रहा था। रोहिणी ने देखा कि उसने अपने कोट के अन्दर की जेब में पिस्तौल रखी है और अब पैंट के दोनों ओर की जेबों में कारतूस भरी हैं। उसने सोचा, आज इतनी सब तैयारी करके यह कहाँ जा रहा है ? क्या कुछ करना चाहता है, आज ? वह किसी भयंकर आशंका से सहम गई। और उसे लगा कि यह भोला-सा अजय जिसने आज राजपूती ढंग का साफा बाँधा है, पैंट और नया कोट पहना है, जिसके मुँह पर एक अभूतपूर्व तेज और शौर्य फूटा पड़ रहा है—सो अन्दर से जाने कितना भयंकर है, आज ? क्या है इसके मन में ? आज किसका खून करेगा ? सच जाने यह आज किस भारी षड्यन्त्र को अपने अन्दर छिपाये है ?

जब अजय तैयार हो गया और चलने के लिए प्रस्तुत हो गया, तो तो अन्दर से डरती और ऊपर से मुसकराती हुई रोहिणी ने, जैसे नाटकीय ढंग से अजय के पास आकर हँसती हुई आँखों से उसकी ओर देखा, और उसने कुछ पढ़ना और समझना चाहा।

तभी, आँखों की उस हँसी और होठों की मुसकराहट को देखकर अजय ने कहा—"क्यों भाभी, मुझे एक काम से बाहर जाना है ?"

"हाँ, सो तो देखती हूँ कि तुम आज विशेष रूप से बन-ठनकर चले

हो। भला बताओ तो, "कहाँ चले हो, तुम ?"

यह सुनकर अजय ने द्वार की ओर देखा। उसने उत्तर नहीं दिया।

रोहिणी ने फिर कहा—"मेरी इच्छा है कि मैं भी चलूँ, तुम्हारे साथ। तुम कभी भी साथ नहीं ले जाते। आज मैं अवश्य चलूँगी।"

यह सुनते ही अजय जैसे विचलित-सा हो गया। वह भ्रमित-सा होकर कुर्सी पर बैठ गया और उसने रोहिणी की ओर देखकर कहा—"मुझे जाने कहाँ-कहाँ जाना पड़े, भाभी ! तुम्हें आज नहीं···।"

"क्यों, आज क्यों नहीं ? मैं भी पैर रखती हूँ।"

"तुम व्यर्थ में परेशान होगी, भाभी !" अजय ने फिर कुण्ठित हुए भाव में कहा।

सुनते ही रोहिणी ने कहा—"न, अजयबाबू ! सच, आज तुम्हारे साथ मैं अवश्य जाना चाहती हूँ। मैं भी···।"

तब अजय ने और अधिक चिढ़कर कहा—"भाभी, तुम देखती नहीं हो, समझती भी नहीं तुम कि अजय का आग पर पैर रखा है, और तुम···?"

हाँ, हाँ, तभी तो चाहती है यह भाभी कि तुम्हारे साथ जाय। तुम्हें उस आग से बचाय ! मैं ऐसे नहीं जाने दूँगी। मैं तुम्हारे साथ रहूँगी। मुझ पर तुम्हारा दायित्व है। जाते-जाते तुम्हारी भाभी ने मुझी पर तुम्हें सौंपा है।"

यह सुनकर अजय हँसा। लगता था, वह बरबस और अपने अन्दर की पीड़ा को छिपाने के लिए ही हँसा था। वह कुर्सी से उठकर रोहिणी के कन्धे पर हाथ रखकर बोला—"तो तुम्हें चलना है ! सच, चलना है। यों कहो, अब तुम्हें मेरा उत्तरदायित्व अपने कन्धों पर लेना है ! अच्छा जी, तो चलो पहनो कपड़े। आज तुमने भी तोबा न की तो बात क्या !"

रोहिणी यह सुनकर मुसकराई। जब वह अपने कमरे की ओर गई, तो उसके पीछे ही अंजय ने अपने मन में कहा—'यह भाभी भी अजीब है। मानती ही नहीं। समझाओ तो समझती नहीं।'

तभी रोहिणी वहाँ आई। वह रामू की माँ से बोली—"लक्ष्मी जीजी

आयं तो कह देना, मैं कहीं एक काम से गई हूँ।" और तब उसने अजय की ओर देखा और मुसकरा दिया।

अजय उसकी उस रंग-बिरंगी साड़ी को देखकर मन-ही-मन हँसता हुआ बाहर चल दिया। रास्ते में एक ताँगा लिया और उसमें रोहिणी के साथ बैठकर अपनी दिशा की ओर बढ़ गया। उस समय दोनों चुप थे। दोनों ही अपनी-अपनी इच्छाओं और आशंकाओं में बँधे थे। ताँगे वाला कभी घोड़े को मारता, कभी राहगीरों को हटने के लिए कहता और कभी किसी गाने में लीन हो जाता, तब इस सबकी ओर न रोहिणी का ध्यान गया था, न अजय का। वैसे अजय गम्भीर नहीं था, वह भावुक और विचारक भी नहीं बना था। वह प्रसन्न था। वह कभी रोहिणी को देखता, कभी आकाश की ओर। इतने में ताँगा शहर के बाहर निकल गया था। अब वह खुले जंगल की ओर जा रहा था। तभी एकाएक ताँगा रुका। वह रोका गया था। चौंककर अजय ने पूछा "अरे, क्यों ताँगे वाले?"

और उसने देखा कि पुलिस का एक सार्जेंट पास आया। जो बड़ी शिष्टता के साथ अजय की ओर देखकर बोला—"ताँगा रोका गया है, इसके लिए क्षमा कीजिएगा। आज हमें एक व्यक्ति की तलाश है। वैसे आपका शुभ नाम?"

अजय ने कहा—"अनिलकुमार।"

"और यह आप, आपकी धर्मपत्नी?"

"जी, धर्मपत्नी।"

उसने डायरी में लिख लिया और कहा—"अच्छा, धन्यवाद अब आप जा सकते हैं। बढ़ा, ताँगे वाले!"

ताँगा बढ़ चला। सार्जेंट फिर उन्हीं पेड़ों में छिप गया। तब अजय, जो एकबारगी अपने में सिमट गया था, अब रोहिणी की ओर देखकर मुसकरा दिया। उसी समय रोहिणी ने अपने माथे पर आये पसीने को पोंछ लिया और अजय की ओर देखकर उसी की तरह मुसकराने का भाव प्रदर्शित करने का प्रयत्न करने लगी।

अजय ने कहा—"जीवन भी एक अजब खेल है, जो एक क्षण के लिए भी सन्देह से परे नहीं है।"

रोहिणी ने कहा—"जीवन खेल भी है और युद्ध भी। जिसे सभी कोई खेलता है और युद्ध करता है।"

यह सुनकर अजय ने बड़ी भावुक और मर्म-भरी आँखों से रोहिणी की ओर देखा। रोहिणी ने फिर कहा—"लेकिन सभी कोई कहाँ समझते हैं इस जीवन को? कहाँ देखते हैं? अपने ही स्वार्थ हैं सबके। अपना-अपना क्षेत्र है।"

अजय ने साँस खींचकर कहा—"जो जीवन की गहराई है, उसमें सभी कोई कहाँ उतरते हैं? उसे ये लोग कहाँ देखते हैं? यहाँ सभी अस्थिर हैं? सभी अपनी सीमा में बँधे हैं।"

रोहिणी ने कहा—"जिनके पास पैसा है और खाना है, आज की दुनिया में जीवन तो उनका है।"

यह सुनते ही अजय ने रोहिणी की ओर देखा और कहा—"यदि ऐसा होता, तब भी सन्तोष का विषय होता। लेकिन ऐसा भी नहीं बनता और नहीं निभता दीखता इन पैसे वालों का जीवन। पैसा उन्हें मार देता है। पैसे की ममता और महत्ता ने उनकी आत्मा और जीवन को खोखला और हीन बना दिया है। मानव की जो पीड़ा है, उसके जिस स्थल पर दर्द है, जहाँ टीस है, उसे न तो इन्होंने समझना चाहा है। और न ही ऐसी स्थिति में उनसे समझा जा सकता है। वह आत्मा और हृदय उनके पास नहीं रहा है। उन्होंने पैसा लिया है और अपना सर्वस्व दे दिया है। सच, वे दया के पात्र हैं। वे अपने पथ से भ्रष्ट हो गए हैं। ईश्वर ने जो अनादिकाल से इस मानव को अपने शुभाशीष और कृपा के सुनहरे भाव दिये हैं, हाय, अपनी मूर्खता में ये पैसे वाले अब उनसे वंचित हो गए हैं। भाभी, दुनिया तो मूर्ख है, जो यह समझती है कि पैसे वाले और पुत्र-पौत्र वाले ही भाग्यशाली हैं, इस विचार-भ्रष्टता ने हमारे बहुत-से खिलते और चमकते हुए तारे असमय ही तोड़कर शून्य में लीन कर दिए हैं। पैसा साधना नहीं है, साधन है; जो हमने बनाया है और उसे महत्त्व भी हमने ही दिया है।"

यह सुनकर रोहिणी ने देर की रुकी हुई साँस को छोड़कर अजय की ओर देखा।

अजय ने ताँगे वाले से कहा--"बस, आ गए हम। यहीं रोक ले।"

ताँगे से उतरकर उसने पैसे दिये और रोहिणी को लेकर एक ओर बढ़ लिया। उस पास के गाँव के बाहर-बाहर ही वे नदी की ओर चल दिए। नदी के किनारे पर जो नाव लगी थी, वे उसमें बैठ लिये। नाव चलने लगी। नाविक डाँड लगाने के साथ-साथ रोहिणी को देखता जाता था, जैसे वह उसका परिचय पाना चाहता था। तभी अजय ने उसकी ओर देखकर कहा—"भुवन, यह मेरी भाभी हैं।"

भुवन ने प्रसन्न होकर कहा—"इन्हीं भाभी का जिक्र किया करते थे आप!" और उसने रोहिणी की ओर देखकर कहा—"भाभीजी, आपके आज दर्शन हुए, धन्यभाग!"

तभी अजय ने रोहिणी की ओर देखकर कहा—"सार्जेंट को दिये गए मेरे उत्तर से तुम्हें बुरा तो लगा होगा भाभी! पर उस समय तो यही कहना था। यदि कहता कि यह मेरी धर्मपत्नी नहीं, भाभी हैं, तो वह बात बढ़ाता और कुछ सन्देह करता।"

रोहिणी चुपचाप अजय की बातों को सुन रही थी और नदी की उठती-बैठती तरंगों को देख रही थी।

अजय ने फिर कहा—"इस मार्ग पर चारों ओर काँटे बिछे हैं। कहीं भी साफ राह नहीं है। जानती हो भाभी, अगर वह सार्जेंट थाने में ले जाता, तो मैं पकड़ा जाता, बचता नहीं।"

रोहिणी नदी की ओर देखते हुए ही बोली—"जानती हूँ, मैं इतना तो समझती हूँ।"

थोड़ी देर में नदी का दूसरा किनारा आ गया। रोहिणी के साथ नाव से उतरते हुए अजय ने भुवन से कहा—"मुझे इसी जगह ले लेना मदनपुर के घाट पर उतरूँगा। अब नाव नीचे की ओर ले जाओ, शायद कोई उस किनारे पर आय।"

रोहिणी ने कहा—"सम्भव है, सार्जेंट ही आ जाय?"

अजय ने लापरवाही से कहा—"अब कुछ नहीं होगा। अब उसे

अजय तो क्या, उसका निशान भी नहीं मिलेगा। अब हम इस राह से भी नहीं लौटेंगे।" कहते-कहते वह किनारे के ऊपर चढ़कर उस बीहड़ वन में एक ओर को बढ़ता हुआ बोला—"तुम अपनी साड़ी सँभाल लो, यहाँ काँटेदार झाड़ियाँ हैं, अन्धेरा भी है। लो आओ, मेरा हाथ पकड़कर चलो।"

रोहिणी ने एक हाथ से अजय का हाथ पकड़ लिया और दूसरे हाथ से अपनी साड़ी को सँभाल लिया। उस राह की बीहड़ता और अन्धकार को देखकर अपने धड़कते मन के साथ उसने चाहा कि अजय से पूछे कि तुम कहाँ चले जा रहे हो—तुम कहाँ बढ़े जा रहे हो? जाने कितने जानवर होंगे, यहाँ! साँप, बिच्छू, शेर, बघेरे···। तभी एकाएक वह चीख पड़ी और रुक गई।

अजय ने चौंककर पूछा, "क्यों, क्या हुआ, भाभी?"

भाभी ने कहा—"काँटा लग गया।" और वह उस काँटे को निकालने के लिए बैठ गई।

अजय ने कहा—"ठहरो, ठहरो, मैं निकालूँ।"

वह भी बैठ गया। उसने रोहिणी के पैर की चप्पल को निकाल दिया और अपने घुटने पर उस पैर को रखकर देखा, तो सचमुच ही काँटा काफी घुस गया था। काँटे को पकड़कर बाहर निकालता हुआ वह हँसकर बोला—"काँटा भी जगह देखता है भाभी! वह हर किसी के तो नहीं चुभता है।"

रोहिणी दर्द-सा अनुभव कर रही थी, काँटे के निकलते ही उसे कुछ शांति मिली और तब अजय की बात सुनकर वह तपाक से बोली, "जी हाँ, काँटा भी जगह देखता है। जिसका चुभना ही काम है। दर्द करना और खून निकालना ही जिसका धन्धा है। सो, यही तुम करने चले हो, जो मुझे दिखाने ले आए हो।"

अजय ने काँटा चुभने की जगह से निकले रक्त को पोंछ दिया और रूमाल को उसी पैर में बाँधता हुआ बोला—"भाभीजी, तुम समझी नहीं हो, काँटे का स्वभाव ही यह है कि वह चुभे। दुनिया में इसकी भी जरूरत है। दुनिया यह भी चाहती है। और काँटा काँटा है, जो

बेजान और अनजान है। पर आदमी तो अनजान नहीं है, अन्धा नहीं है, वह क्यों नहीं देखकर चलता।"

रोहिणी बोली—"जी, खाक देखकर चलें ऐसे अँधेरे में। तुम्हीं देखकर चलो न! न कोई राह है, न कोई सीमा है। चारों ओर झाड़ियाँ और काँटे बिछे हैं। जाने कौन सी ठौर है तुम्हारी! चलो, लौट चलें घर!"

और उसने कहा—"देखते हो, जैसे इस काँटे ने खून निकाला है, वैसे ही तो इस पिस्तौल और बन्दूक से तुमने भी आदमी का खून करना चाहा है और इसको तुमने सेवा कहा है, मानव की पूजा कहा है। मैं कहती हूँ, तुमने काँटा क्यों बन जाना चाहा है। तुम्हें फूल बनना चाहिए, जो देवताओं पर चढ़ाया जाता है।"

अजय उठ रहा था, पर बात सुनकर नहीं उठा। उसने बैठे-बैठे ही रोहिणी का हाथ पकड़ लिया और बड़े मीठे और सरस शब्दों में उससे कहा—"भाभी, मैं तुमसे कहता था कि मेरी अच्छी राह नहीं है। बड़ा बीहड़ पथ है मेरा, अभी तो बहुत राह पड़ी है और तुम थक गई हो। काँटा भी चुभ गया है," कहते-कहते उसने रोहिणी के हाथ को छोड़ दिया और खड़ा होता हुआ बोला, "तुम केवल इसी अन्धकार को देखती हो, पर मेरे तो सारे जीवन में अन्धकार-ही-अन्धकार है। जिसमें से मुझे प्रकाश खोजकर अपनी तरह बनानी है।"

रोहिणी खड़ी हो गई थी। उसने फिर अजय का हाथ पकड़कर कहा—"अब चलो न, कहाँ चलना है।"

अजय ने कहा, "तुम थक गई हो। अच्छा, चलो।" कहते हुए वह फिर आगे हो लिया। उस समय रोहिणी के हाथ को उसने जोर से दाब लिया। दोनों चल रहे थे कि इतने में कोई सियार-जैसा जाने क्या, उनके सामने से निकल गया। रोहिणी फिर चौंक गई। वह झिझक गई। अजय ने हँसते हुए कहा—"तुम बहुत डरती हो भाभी, सच बहुत ही! कोई जानवर था, जो निकल गया।"

रोहिणी चलती चली। अजय कहने लगा—"इस अन्धकार में तुम्हें अपने साथ पाकर मैं कितना प्रसन्न हूँ और कितना सुखी हूँ,

सचमुच मैं उसे व्यक्त करने की सामर्थ्य नहीं पाता। लगता है इसी अन्धकार में जीवन है। मुझे यही प्यारा है। वैसे प्रकाश में तो सभी देखते हैं और चलते हैं। पर हमारे तो जीवन में अन्धकार है—निपट और शून्य! और तुम कहती हो, अजय एक काँटा है, मानव का पाप शायद यही हो। लेकिन विश्वास करो भाभी, मुझे मानव का पाप अथवा श्राप नहीं बनना है। इससे पूर्व तो मुझे मर जाना और नष्ट हो जाना भला लगता है।"

रोहिणी ने पूछा—"अभी और कितना चलना शेष है? मंजिल कितनी दूर है?"

"बस, पास ही।"

"कुछ बैठ लो।"

"थकी हो?"

"हाँ, कुछ-कुछ।"

अजय रुक गया और बैठ गया। तभी रोहिणी ने कहा—"मुझे अपने घुटनों पर सिर रख लेने दो।"

तब अजय ने अपने घुटनों को फैला दिया। रोहिणी ने अपने सिर को उन पर रख दिया। तभी अजय ने जैसे अपनी ही बात पर अड़े हुए कहा—"मैं फूल को अधिक महत्त्व नहीं देता भाभी, जो सूँघकर फेंक दिया जाता है। मैं आदमी बना रहना ही पसन्द करूँगा—आदमी का ही सेवक और दास! मैं यही बनने के लिए अपने जीवन की बड़ी-से-बड़ी इच्छा को दबा दूँगा और कुचल दूँगा।"

रोहिणी आँख बन्द किए थी। जो अब अजय के कन्धे पर अपनी बाँहें डालकर, जैसे अपने-आप ही ऊपर उठ गई थी। जो निरी कलात्मक और भावुक हो, अजय के मुँह के पास अपना मुँह ले जाकर उसकी उष्ण साँसें देख रही थी और अपने पास आती हुई अनुभव कर रही थी। जिसके विपरीत वह अजय था, जो तब भी जैसे निरा एकाकी और शून्य हो, उस अन्धकार में बैठा अव्यवस्थित हुआ भटक रहा था।"

अचानक रोहिणी के होंठ फड़के, वह कुछ खुले और जैसे किसी स्वर्गीय और अकल्पनीय प्रेरणा से भरकर उसकी आत्मा के उद्गार

खुले, जो उससे कुछ कह सकें और उसे समझा सकें। रोहिणी के गति-भाव और जागरूक होंठ तब अजय की उस दयनीय स्थिति को अनुभव करके अनायास ही उसके होंठों से मिल गए। वह उस खुले आकाश के नीचे, उस सपाट अन्धकार के साथ अजय के होंठों से टकरा गए और एक हो गए।

किन्तु कितना आश्चर्य था, असमञ्जस था कि वह अजय तब भी अपने में सिहरन न अनुभव कर सका था, और उसके मन में किसी इच्छा का भाव भी मुकुलित न हुआ था। वह तब भी जैसे निपट वैरागी-सा बैठा था। जैसे उसने रोहिणी के गीले और मधुर अधरों को देखा ही नहीं था और न ही उसके हृदय में छिपी नारी की ममता और चाह को वह पा सका था। लगता था, वह दुर्भागी था, कि जो स्वयं समर्पित हुई रोहिणी के प्रति उस समय उपेक्षित-सा बना था। तब मानो उसमें कोई रस नहीं था। उसकी आँखों में कोई मादक नशा भी नहीं आ सका था। और रोहिणी ने मानो उस क्षण में सारे विश्व को भूलकर एकान्त और एक मन से अपने को अजय की सीमा में आवेष्टित किया था, उसने और भी अधिक अपने को अजय की सीमा में आबद्ध कर लिया था।

रोहिणी की यह स्थिति देर तक नहीं रही। वह अजय को छोड़कर खड़ी हो गई और उसे देखकर बोली—"ओह ओह, अजयबाबू, बताओ तो आज तुम, क्या तुमने कभी यह भी सोचा कि इस भाभी में जो भूख है, इसमें जो तड़पन है, वह वासना की है! वह विषाक्त है! छिः! रोहिणी इतनी जंगली और कायर नहीं है। यह अपनी आत्मा देखती है। यह अपने परमात्मा को भी देखना चाहती है, अजय बाबू!" कहते हुए उसने फिर दीनतापूर्ण स्वर में कहा—"मैं तो तुम्हें बताना चाहती हूँ और दिखाना चाहती हूँ कि नारी भी एक है, अलभ्य और अमोल नारी, जो पुरुष की जननी है, उसकी प्रेयसि है। यह नारी मधुर भी है और कड़वी हलाहल भी।"

अजय तब भी निरा मूक हो, आसमान के तारे देख रहा था। उसके

मस्तिष्क में जो एक विकृत तूफान उठा था, वह घटने की अपेक्षा और बढ़ गया था।

रोहिणी ने क्षितिज के तारों की ओर देखते हुए फिर कहा—"मैं सोचती हूँ, तुम जो एक व्यक्ति हो, सांस्कृतिक हो, तो क्या अपने जीवन में मानव के रक्त, मांस और मज्जा से ही खिड़वाड़ करना चाहते हो! तुम इस रोहिणी की ओर क्यों नहीं देखते हो? तुम क्यों नहीं समझते कि इसमें जो माधुर्य और प्रेम है, वह तुममें भी है? इसीसे मैंने अपने अधरों को तुम्हारे अधरों पर रख दिया। मैंने निश्छल हो, निश्चिन्त हो, अपने को तुम्हारे अर्पण कर दिया। पर दीखता है, तुम अपनी जगह हो। तुम तिल-भर भी टस-से-मस नहीं हुए हो! तब क्या कहूँ मैं? किससे कहूँ?" और बरबस रोहिणी का गला भर आया। उसका स्वर रुँध गया और उसने अपने मुँह को साड़ी के आँचल में छिपा लिया।

अजय ने कठिनाई से कहा—"अच्छा भाभी, हमें कुछ दूर और चलना है। बस, पास ही।"

"रोहिणी ने कहा—"चलो, तुम्हें जहाँ चलना है। मुझे भी वहीं चलना है।"

तब अजय फिर एक बार रोहिणी के हाथ को अपने हाथ में लेकर बढ़ता हुआ बोला—"भाभी, तुम-जैसी ज्योति को पाकर सचमुच मैं तर जाऊँगा। मैं भाग्यवान हूँ। मैं अनुपम और अनूठी भाभी पा गया हूँ।"

उसी समय वह एक झोंपड़ी के पास पहुँचा। जिसके अन्दर से धीमा-सा और छनता हुआ प्रकाश उस अँधेरे पथ पर बिखर रहा था। अजय रोहिणी का हाथ पकड़े हुए उसी में चला गया था।

झोंपड़ी में जो व्यक्ति थे, वे सभी तरुण थे। अजय और रोहिणी को देखकर वह प्रसन्न हुए। अभी-अभी जो सब प्रसन्न और बच्चों की तरह एक-दूसरे से हँस-खेल रहे थे, एकाएक सभी गम्भीर बन गए थे। उन सब की आँखें उस व्यक्ति पर केन्द्रित थीं, जो उनके मध्य में बैठा था। वह आयु में भी सबसे अधिक लगता था। जवानी जैसे अभी-

उतरकर चली थी। किन्तु उसकी बढ़ी हुई दाढ़ी के अन्दर जो चमकती हुई आँखें दीखती थीं, वह इतनी तीव्र और गहरी थीं कि रोहिणी एक बार उन्हें देखकर फिर नहीं देख सकी थी।

सन्नाटे को चीरते हुए उस व्यक्ति ने कहा—"मैं देखता हूँ, आप जिस मार्ग पर हैं, उसकी बाधाओं को सहन करने की शक्ति, अभी आपको और सञ्चित करनी है। अभी आप असमर्थ हैं।"

झोंपड़ी और उसके बाहर सन्नाटा था, नितान्त मूक और व्यापक!

उस व्यक्ति ने अपनी उसी गम्भीर और तेज वाणी को और भी अधिक स्थिर बनाकर कहा—"विपक्षी लोग जब भी पता पायंगे कि उनके विरुद्ध एक ऐसा दल है जो उन्हें नष्ट करने का षड्यन्त्र कर रहा है, तो निश्चय ही, वह ऐसे व्यक्तियों को नष्ट कर देंगे—तुम्हारा अन्त कर देंगे।"

अजय ने पूछा—"तो आपका विचार है, जो हम सोचते हैं उसे छोड़ दें? जिससे हम लड़ना चाहते हैं वह बड़ी शक्ति है, इसे तो हम-सभी स्वीकार करते हैं। जो हमारा प्रयत्न और परिश्रम है उसीके बल पर हम अपनी विजय का भरोसा करते हैं।"

"लेकिन इससे अधिक तुम्हारे पास त्याग और तप चाहिए। जो बलिदान की भावना है वह पहले चाहिए,"—उस व्यक्ति ने कहा, "अजयबाबू, भला तुमसे कितनी बार कहा है मैंने, कि जो राष्ट्र का जीवन हैं, जो हमारे प्राण हैं, हम जब तक उनकी तड़पन, उनकी पुकार और उनकी माँग की भाषा को नहीं समझ पायंगे, हम कभी भी अपने लक्ष्य पर नहीं पहुँच सकते। ऐसे, कितने विफल हुए हैं हम! हम कितनी बार प्रताड़ित बने हैं। हमने भूलें-ही-भूलें की हैं। कहाँ है, इसमें संयम! हम जिस पथ के दावेदार बने हैं, वह इतना सीधा और सुगम कहाँ है। मेरे मित्रो ···!" उस व्यक्ति ने नितान्त गम्भीर वाणी में कहा, "आप जिस माँ के सुहाग को पुनर्जीवित करने चले हैं, इतिहास देखिये, कितने तरुण और तरुणियाँ, उसके लिए अपना जीवन दे चुके हैं। लेकिन जो होना था, वह नहीं हुआ। माँ का सुहाग नहीं पुरा। मैं कहता हूँ, वह आपका जीवन नहीं चाहती। वह अपने बच्चों से 'माँ-

माँ' सुनना भी महत्त्वपूर्ण नहीं समझती। वह आपकी पूर्णता चाहती है। वह अपने बच्चों को सफल देखना चाहती है। आपके पथ में जो काँटे हैं, बाधाएं हैं, जो चारों ओर अग्नि के सुलगते हुए कुण्ड दिखाई पड़ते हैं, उन सबके रहते, वह आपकी माँ—वह वसुन्धरा—जिस आत्म-प्रतिष्ठा की भावना आप में देखना चाहती है वही इसे दो, और देखने दो। मैंने अभी अन्धा जीवन पसन्द नहीं किया। आपका जो दावा है, आपके हृदय में जो सुलगती हुई ज्वाला है, वह एकबारगी न भभके। उसकी लपटें आपको स्वतः ही स्वाहा न कर दें, इसका क्या भरोसा है? साधारण मानव से ऊपर उठकर, उससे अधिक ऊँचे होकर आपको यह देखना है कि मानव की भूख क्या है—जीवन क्या है इसका? आपको अपने व्यावहारिक जीवन में हिंसक की कोटि से उठकर सहानुभूतिपूर्ण हो, अपने विपक्षी के प्रति भी दया और ममता को नहीं त्यागना है। लक्ष्य और है। वह बड़ा है, वह अमर है। उसकी पूजा के लिए तुम्हारा बलिदान आरम्भ और मध्य का हो सकता है, अन्त का नहीं। यहाँ तो एक बड़ा-सा कुण्ड रखा है, जिसके पास ही वेदी को सांस्कृतिक ढंग से बनाया गया है, जिस पर युग-युग से चले आए मानव को थोड़ा-बहुत अपना बलिदान देने के लिए कहा गया है। इस वेदी पर जो रक्त का कीचड़ और गारा तुम्हें दीखता है, नर-मुण्डों का जो ढेर-का-ढेर लगा है, वह सभी तो इसी निमित्त हुआ है। माँ भूखी न रहे, तृषित न रहे, इसी सदिच्छा से प्रेरित होकर इस देश के असंख्य स्त्री-पुरुषों ने अपना त्याग किया है, यह महान् योग किया है और माँ को अपना बलिदान सादर समर्पित किया है। वही करना है तो आप कीजिए, सहर्ष कीजिए, लेकिन आप अपने मानस में कोई अहं, कोई महत्त्वाकांक्षा न आने दीजिए। खून देना, अपने सिर को कटा देना और है तथा जीवन की चहुँमुखी आकांक्षाओं को दबाकर माँ वसुन्धरा के चरणों में समर्पित करके दरिद्रनारायण की उपासना करना और है। जेब में पिस्तौल रखना, कारतूसों की पेटी को साथ लिये फिरना-मात्र ही देश-सेवा का सूचक नहीं है। आप जनता-जनार्दन के
 पुजारी बनें, यह जीवन खोकर भी ऐसे बनें, ऐसी भावना, इच्छा और

आकांक्षा को मन में सँजोए आप अपने पथ पर चलें, मैं इसकी कामना करता हूँ और आशा रखता हूँ।"

"श्रीमती रोहिणी देवी," एकाएक उस व्यक्ति ने फिर रोहिणी की ओर देखकर कहा, "आप कहिए अपनी बात? मैंने नहीं पसन्द किया जो अजयबाबू आपको यहाँ ले आए हैं! पर दर्शन आपके करने थे, जो यों हो गए। आप भी अजयबाबू का हाथ बँटाना चाहती हैं क्या? वैसे पत्नी का कर्तव्य भी है कि पति का हाथ बटाय। इन्कार तो आप कर नहीं सकेंगी, क्योंकि अजयबाबू ने सार्जेण्ट को जो आपका परिचय लिखाया है उसमें आपको अपनी पत्नी कहा है।" कहते-कहते वह एकबारगी ठहाका मारकर हँस पड़ा।

यह देख-सुनकर रोहिणी को अचरज हुआ। उसे लगा, वह जिस व्यक्ति के सामने बैठी है, वह एक असाधारण है और गूढ़ है। उसकी तेज आँखें ही जैसे उसकी आत्मा का परिचय दे रही हैं।

उसी समय उस व्यक्ति ने एक दूसरे व्यक्ति की ओर देखा और कहा—"अब समय हो गया। दस बज गए। अच्छा अमरसिंहजी कल मिलना। तुम अजयबाबू, परसों।" और तब उसने रोहिणी से कहा—"पुरुषों की अपेक्षा मैं अपनी बहनों के कार्य पर अधिक विश्वास करता हूँ।"

जब सब उठे तो रोहिणी ने उस व्यक्ति की ओर देखकर पूछा—"बताइए, आपको किस सम्बोधन से पुकारूँ?"

उसने हँसते हुए कहा—"मैं भैया हूँ, इन सबका और तुम्हारा भी!

"तो मैं अपने ऐसे भैया से कहूँगी कि आपके जो आज दर्शन हुए, सौभाग्य मेरे! अजयबाबू ने एक दिन भी नहीं बताया कि एक ऐसे भैया हैं मेरे।"

"अजयबाबू ने तुम्हारे विषय में तो मुझे बताया हुआ है। इसने तुम्हारी-अपनी अनेक बातें मुझे सुनाई हैं।"

"तो कल मेरे घर आइए!"

"कल? अच्छा कल!"

तब उस भैया ने अजय की ओर देखकर कहा, "अच्छा, अजयबाबू, तुम्हें शहर तक छोड़ आऊँ, क्यों ?"

अजय ने कहा—"नहीं, हम चले जायंगे।"

"मैं चलूँगा। मुझे शहर में काम भी है, लौट आऊँगा। नहीं तो रोहिणीदेवी कहेंगी यहाँ जंगल में ले आए तुम ! और तुम्हीं एक साथी, जो पार करना है यह बियाबान जंगल, नदी-नाले, तब कहीं दूर जाकर आयगा इनका घर।"

तब सब झोंपड़ी से निकल पड़े। कुछ वहीं से विदा लेकर अपने-अपने रास्ते पर चल दिए। अजय, रोहिणी और भैया—तीनों नदी की ओर चल दिए। वह नियत स्थान पर खड़ी हुई नाव पर जाकर चढ़ गए। नाव के चालक से भैया ने कहा—"लाओ भुवनसिंह, डाँड मुझे दो; आज तुमने अधिक परिश्रम किया है।"

भुवन के उत्तर देने से पूर्व ही भैया ने डाँड अपने हाथों में थाम लिए और छप-छप वह पानी पर पड़ने लगे। अजय और रोहिणी नाव के बीच में बैठे थे और उस भैया के सुदृढ़ हाथों और मजबूत शरीर की ओर देख रहे थे। आध घण्टे बाद अजय ने कहा—"लाओ भैया, अब पतवार मुझे दो। अब नाव मुझे खेने दो।"

भैया ने कहा—"अभी मैं थका नहीं हूँ। जब थकूँगा, पतवार छोड़ दूँगा।"

भुवन ने उन सबको सुनाते हुए कहा—"भैया इसके अभ्यासी हैं।"

नाव दूसरे किनारे की ओर पहुँच गई। शहर की रोशनी नदी के जल पर दिखाई देने लगी। उसी किनारे पर जो और नावें खड़ी थीं, उनके मल्लाहों के गाने की ध्वनि भी स्पष्ट सुनाई पड़ने लगी थी। कहीं-कहीं छोटे स्टीमर अपने भोंपू की आवाज़ दे-देकर इस-उस ओर आ-जा रहे थे। नदी के किनारे के पास ही जो कपड़े के कारखाने थे, उनकी मशीनों की गड़गड़ाहट के स्वर अब सुनाई देने लगे थे।

तभी भैया ने अजय और रोहिणी की ओर देखकर पूछा—"किस जगह उतरना है अजय, यहीं क्या ?"

अजय ने कहा—"बस, यहीं। पास ही सड़क से ताँगा लेना है।"

रोहिणी ने भैया की ओर देखकर पूछा—"आप इसी समय लौट जायंगे क्या उसी झोंपड़ी में ?"

भैया ने कहा—"अभी कुछ समय और इस नाव पर रहूँगा। शायद इसी पर सो भी जाऊँगा।"

अजय ने कहा—"घर चले चलिए, भैया !"

भैया ने कहा—"घर तो मैने बहुत दिन हुए तभी छोड़ दिया है। वैसे कल आऊँगा आपके घर।"

रोहिणी ने कहा—"भैया जरूर ! खाना भी वहीं खाना।"

भैया ने हँसते-हँसते कहा—"अच्छा, अच्छा !"

अजय और रोहिणी किनारे पर नाव से उतर गए। उन्होंने भैया से विदा ली। उनके देखते-देखते भैया ने उसी तरह हँसते हुए उन्हें विदा दी और अपनी नाव फिर नदी के गहरे जल की ओर बढ़ा दी।

सड़क पर पहुँचकर अजय ने ताँगा लिया और रोहिणी के साथ बैठकर घर की ओर चल दिया।

लगभग आध घण्टे बाद वे घर आ गए। देखा, रामू की माँ सो गई थी। तभी रोहिणी ने अजय की ओर देखकर पूछा—"और खाना ? क्यों, भूख लगी है क्या ?"

सुनते ही अजय ने कहा—"भला भूख क्यों नहीं होगी। अब भी नहीं होगी ? परन्तु पकाने का समय नहीं रहा।"

रोहिणी ने पूछा—"बाजार में पूरियाँ मिल जायंगी ?"

अजय ने कहा—"शायद मिल जायं।"

"तो ले आओ। दूध भी साथ ही लेते आना।"

अजय के बाजार जाते ही रामू की माँ ने जागकर पूछा—"कौन ? बहू, तुम आ गईं। लक्ष्मी जीजी आई थीं, सुरेशबाबू भी उनके साथ थे।"

"कुछ कहती थीं क्या जीजी ?"

"पूछती थीं, कहाँ चली गई रोहिणी ? सो मैंने कह दिया, अजय बाबू के साथ कहीं किसी से मिलने गई हैं।"

रोहिणी अपनी और अजय की चारपाई बिछाने में लग गई।

रामू की माँ ने फिर कहा—"पर तुम बहुत देर करके आईं बहू ?"

"हाँ, रामू की माँ, तुम अपनी बात कहो, कुछ खाया भी है या यों ही पड़ी हो ? अजयबाबू बाजार गए हैं, शायद मिल जायं पूरियाँ।"

रामू की माँ ने कहा—"मैं तो खा-पी चुकी हूँ। दिन का जो रखा था, वही खा लिया मैंने।"

रोहिणी ने कहा—"मैं शहर से बाहर गई थी, इसीलिए देर हो गई।"

उसी समय अजय लौट आया। उसके एक हाथ में दूध का लोटा था और दूसरे में पूरियाँ। उसने दोनों चीजें रोहिणी के सामने रख दीं। तभी रोहिणी रामू की माँ से बोली—"उठो रामू की माँ, कुछ और खा लो।"

रामू की माँ ने कहा—"ना बहू, अब कुछ नहीं।"

रोहिणी और अजय बैठकर खाने लगे।

खाते-खाते अजय ने कहा—"तुम्हें एक रहस्य की बात बताऊँ भाभी ! वह रास्ते का सार्जेंट असली नहीं था, वह भैया था। जिसका मुझे भी पता नहीं था।"

यह सुनकर रोहिणी ने आश्चर्य से अजय की ओर देखा और उसी भाव से उसने पूछा—"इसमें भैया का क्या अभिप्राय था ?"

"सो, मैं नहीं जानता। भैया के अपने विचार हैं, उनका अपना ही अलग पथ है।"

"आश्चर्य है, भैया तो हमें झोंपड़ी में मिले।" रोहिणी ने कहा।

"उन्हें हर हालत में हमसे पहले पहुँचना था। हम रास्ते में न रुकते, तो भी भैया को वहीं पाना था।

उसी समय पानी पीकर उठते हुए रोहिणी ने कहा—"जाने कैसा है तुम्हारा भैया ? जिसे देखते भी डर लगता है। पर जितनी भयानक और डरावनी आँखें हैं भैया की, लगता है, वैसा नहीं है भैया ! उसका हृदय निर्मल है।"

अजय ने कहा—"भैया देवता है, हमारा पथ-वाहक है।"

"आओ, तुम्हें दूध दूँ।" रोहिणी ने कहा।

अजय ने फिर अपनी ही बात बढ़ाते हुए कहा—"क्यों भाभी, तो तुम्हें अच्छा नहीं लगा क्या भैया का ऊपरी जीवन ? पुलिस सदा भैया की तलाश में रहती है। उसकी निगाह में भैया खूनी है, भैया शत्रु है उसका।"

"भैया विवाहित हैं या एकाकी ? इनकी माँ है क्या ?"

"नहीं। भैया विवाहित नहीं। एक बहन है, भैया उसी को प्यार करता है।"

"और कोई नहीं भैया का !" जाने कैसे दयार्द्र हृदय से रोहिणी ने फिर कहा, "सच, ऐसा है तुम्हारा भैया ! जीवन में निपट वैरागी और एकाकी !"

अजय ने कहा—"भैया ने अपने घर की सीमा को तोड़ दिया है। उसका कुटुम्ब बड़ा है। समस्त देश ही उसका अपना है। अब भैया का अपना कुछ नहीं है। उसने दरिद्र नारायण की झोली में अपने को भी डाल दिया है।"

उसी समय रोहिणी ने एक गहरी साँस ली और अपने-आप बोली—"कैसा है यह जीवन ?" और तब उसने अजय की ओर देखकर कहा, "अपनी बहन को भी क्या प्यार करता होगा यह भैया ! उसने जीवन में देखा ही क्या है ? उसने ममता और मोह को समझा ही क्या है ?"

"ऐसा नहीं भाभी !" तुरन्त ही अजय ने कहा, "भैया के हृदय में जो प्रगाढ़ ममता का स्रोत है, वह ऊपरी नहीं है। वह गहरा है। वह अविरल होकर नित्य बहता है, वह मैंने देखा है।"

तब झटके के साथ रोहिणी ने पूछा—"तुम कैसे मिल गए भैया को ? उसे कहाँ पा गए ?"

उसने कहा—"कमलकुमार की पत्नी की बीमारी और मृत्यु के समय मुझे भैया मिला, तभी परस्पर परिचय हुआ। कमलकुमार की पत्नी की सेवा में भैया का अधिक हाथ था। भैया रात के दो-दो बजे तक वहाँ रहता था और रोगी की सेवा-शुश्रूषा करता था। वहीं भैया ने मुझे सेवा करने का पाठ पढ़ाया था। भैया उस रोगी के पेशाब और

पाखाना तक उठाता था। दवा आदि का प्रबन्ध भी भैया द्वारा ही होता था।"

"तो तुम्हें खूब मिला, भैया! यह आज ही समझा मैंने कि तुम कहाँ आते-जाते हो और क्या करना चाहते हो?"

यह सुनकर अजय ने रोहिणी की ओर देखा। वह समझने लगा कि जैसे भाभो के अन्दर कोई बात है जो वह कहना चाहती है।

और सचमुच ही, उसी समय रोहिणी ने कहा—"मैं पूछती हूँ, क्या तुम्हारी पिस्तौल से देश स्वतन्त्र हो जायगा?"

"ओह यह बात लिये हो तुम! तुम यह जानना चाहती हो?" कहते हुए अजय हँसा।

उसी क्षण रोहिणी ने कहा—"मैं कहती हूँ, यह सब व्यर्थ है! हत्या पाप है।"

तब अजय हँस रहा था, वह और भी हँस दिया। उसने उसी प्रकार रोहिणी की ओर देखकर कहा—"तुम बहुत कोमल और भावुक हो भाभो!"

"शायद यह सही हो।"

"तुम दुर्बल भी हो!" अजय ने अपनी बात की और अधिक पुष्टि करने के लिए कहा।

रोहिणी ने फिर भी उसी शान्त मुद्रा में कहा—"मैं इसे भो मानती हूँ। मैं पुरुष की तरह कठोर नहीं हूँ।"

"पर पुरुष की माँ तो हो तुम, उसको बनाने वाली जननी! तुम माँ बनकर पुरुष को बल देती हो!"

यह सुनकर एकाएक रोहिणी ने कुछ नहीं कहा। उसने तब तारों-भरे आसमान की ओर देखा।

उसी समय अजय ने फिर कहा—"हमारी माँ और बहनें इस देश में पुरुषों की कमर से तलवार बाँधती थीं, तिलक करती थीं और अशीष देकर उन्हें रण-स्थल में भेजती थीं। वह भी नारी थीं, वह भी कोमल थीं। परन्तु वह अपना आदर्श देखती और समझती थीं।"

तब रोहिणी ने आसमान की ओर देखते हुए ही कहा—"यह

प्रेरणा भी उन्हें पुरुषों ने दी थी, उन्हीं की सिखाई थी," यह कहते हुए उसने अजय की ओर देखा, "लेकिन यह भी जिस युग की बात थी, उस युग के साथ ही समाप्त हो गई, मैं कहूँ कि उसी संघर्ष ने इस मानव को शान्ति पर सदा के लिए मुहर लगा दी। तभी तो एक भेड़िये के सदृश यह भूखा है और मानव के खून का प्यासा है यह मानव ! यह आज भी जंगली है और निरा पशु है।"

अजय ने क्षणेक खिन्न होकर कहा—"संघर्ष करना ही मानव का स्वभाव है, भाभी ! यह प्रतिगामी है !"

रोहिणी ने इसका कोई उत्तर नहीं दिया। वह तब उजड़े-से और खोए-से मन के साथ अपने-आप ही जाने किस विचार में डूब गई। स्पष्ट था कि वह अजयबाबू की हिंसा और उसकी तार्किक गति से सहमत नहीं थी, और न हो सकी थी।

प्रातः होते ही भैया रोहिणी के घर आया। भैया की जिन डरावनी आँखों की भाव-भंगी को रोहिणी ने रात देखा था, प्रातः ही उसे लगा वह नहीं हैं भैया की रात की आँखें ! जब भैया आया तो उस समय अजय घर पर नहीं था। शायद वह लक्ष्मी जीजी के घर गया हुआ था। तभी कुछ देर बैठने के बाद भैया ने कहा—"मुझे अभी कहीं जाना है। भूखा हूँ, इसलिए कुछ खाना दो। है कुछ ?"

रोहिणी ने कहा—"मैं आपको अभी नहीं जाने दूँगी भैया ! आप स्नान कर लें, मैं भोजन बनाती हूँ। लगता है आप कहीं दूर से आ रहे हैं। पैरों में धूल भी बहुत भरी है।"

यह सुनकर भैया ने जाने कैसे भाव से रोहिणी की ओर देखा।

रोहिणी ने फिर हँसते हुए कहा—"रात मैं आपको देखकर डर गई थी। पर अब देखती हूँ, तो सचमुच आपको मैं अपना भाई पाती हूँ।"

भैया यह सुनकर मुसकराया। उसने कहा—"बहन, इस भैया से सभी कोई डरते हैं, पर ऐसा है नहीं भैया। वैसे देखता हूँ, इस दुनिया की हाट में रूखे और जंगली व्यक्ति का कोई स्थान नहीं है। कदाचित् यही है इस भैया से डरने की बात! यह ऊपर से रूखा भी है और जंगली भी।"

"तुम यह कुछ नहीं हो भैया!" रोहिणी ने एकाएक कहा, "मुझे भरोसा नहीं कि तुम्हारे हृदय में ममता और स्नेह नाम का पदार्थ कुछ भी नहीं है।"

"शायद ऐसा हो! वैसे मैं अपनी रूक्षता और अभद्रता के लिए कुछ कारण भी देखता हूँ। तुम जिस भैया को देखती हो, हर किसी की तरह तुम भी इस हाड़-मांस के पिंजर में व्याप्त हुए चीत्कार को नहीं सुन सकतीं! यह भैया जिस धरातल पर टिका है, इसके जीवन की लहरों ने जिन पथरीली चट्टानों से टकरा-टकराकर अपने-आपको कठोर और भीषण बना लिया है, उसी का तो यह-सब इस भैया को प्रसाद मिला है। माँ, बाप, भाई इन सभी को मैंने अपनी आँखों आहें भरते देखा है। उनकी तड़पन, उनके जीवन का करुण रोदन, नित्य मेरे सामने रहता है। जिस भैया को तुम देखती हो, वह उन्हीं की प्रेरणा से बना है।"

इसी बीच रोहिणी ने रामू की माँ से चूल्हा जलाने, उस पर दाल रखने और साग छीलने के लिए कह दिया था। तभी भैया की बात सुनकर उसने देर की रुकी हुई साँस को छोड़कर अपने मुँह को हाथ की हथेली पर रख लिया और आकुलता-भरी दृष्टि से सामने की ओर अपना मुँह कर लिया।

तभी भैया ने फिर कहा—"इस देश में प्रति वर्ष लाखों बहनें आत्म-घात करती हैं। असमय ही अगणित बच्चों की आत्माएं अपने कोमल शरीरों को छोड़ जाती हैं। उन्हें कोई नहीं देखता! किसी का हृदय भी उन्हें स्वीकार नहीं करता। जो अनाज पैदा करते हैं, वही भूखे हैं। जो कपड़ा बुनते हैं, वही नंगे हैं!"

रोहिणी ने गिरे हुए मन से कहा—"इस रोग का उपचार ही क्या

है, भैया ! यह तो मनुष्य के स्वार्थ की बात है ! जो सुगमता से तो मिटती नहीं दीखती।"

भैया ने कहा—"जो देश सदियों से गुलामी में रहता आया है, वह आज निश्चय ही आत्म-हीन बन गया है; यह देश पतित बन गया है। यह देश के युवक और युवतियों का काम है कि वे इस महत्त्व को समझें, किन्तु देखता हूँ उनके हृदय में ऐसी आग नहीं है। उनकी आत्मा की तड़पन भी मर चुकी है। उनका हृदय गुलामी में रँग गया है।" कहते-कहते भैया का मुँह लाल हो गया।

"जो सेवा है, उसके लिए मैं अपने को समर्पित करती हूँ, भैया !"

भैया ने कहा—"बहन, देश का जो प्रांगण है, वह तो जाने कब से हमारा आह्वान कर रहा है। वह पुकार-पुकारकर हमें बुला रहा है। चाहो तो, तुम भी इस सेवा-पथ पर बढ़ जाओ। निश्चय ही तुम्हारा यही सुहाग है। वैसे यही अमर लक्ष्य है सभी के जीवन का !"

उसी समय अजय आ गया। भैया को देखकर वह बरबस मुसकरा दिया। भैया ने कहा—"चलो आ गए, तुम ! मैं अभी जाने ही वाला था।"

तभी रोहिणी ने चौंकते हुए भाव से कहा—"भैया लो, मैं बातों में ऐसी लगी कि तुम्हारे खाने की बात ही भूल गई।" और वह उठ खड़ी हुई।

भैया ने कहा—"मेरी चिन्ता मत करो रोहिणी, मैं कहीं भी खा लूँगा। अब नहीं तो कुछ देर में खा लूँगा।"

"वाह, यह भी कोई बात हुई !" रोहिणी ने वहाँ से जाते-जाते कहा, "ऐसा नहीं होगा। अब बना भोजन ! आज तो भैया को बहन के हाथ का भोजन खाना ही होगा।"

रोहिणी के जाने पर अजय ने कहा—"भाभी से अभी परिचित नहीं हुए हो, भैया ! यह बिना खिलाये नहीं जाने देंगी।"

उस समय जो रोहिणी ने रसोई में जाकर साग छौंका तो उसकी 'छन्' से आई आवाज को सुनकर अजय ने भैया को बताया कि रात भाभी ने हिंसा को मनुष्यता का कर्म नहीं, पशुता का कहा है।

भैया ने कहा—"तुम्हारी भाभी ने यह ठीक कहा है। वह नारी है। नारी का यही आदर्श है।"

"परन्तु यह सार्थक कहाँ है, भैया! यह नारी की दुर्बलता और अकर्मण्यता है।"

यह सुनकर भैया और अधिक गम्भीर हो गया। उसकी भौंहें ऊपर को चढ़ गईं और वह बाहर की ओर देखने लगा।

उसी समय अजय ने और कहा—"अपनी रक्षा के लिए नारी ने भी तलवार उठाई है। इसने भी युद्ध किया है। मेरा तो मत है कि नारी ने पुरुष को युद्ध के लिए प्रेरित किया है। परन्तु वह शिक्षा आज नहीं है, वह अब लुप्तप्राय हो गई है।"

यह सुनकर भैया ने अजय की ओर देखा। जिस कुर्सी पर वह बैठा था, वह अब पीछे को झुक गया और बोला, "अजयबाबू, आदर्श और है और यथार्थ और है। आदर्श व्यावहारिक नहीं है। तुम नारी में जिस नये आदर्श की कल्पना करते हो, वही तो इस नारी की मात्र देन नहीं है। युद्ध करना भी नारी का कर्म नहीं है। वह घर की रानी है। वैसे, वह समय पर सभी-कुछ कर दिखाती है। उसकी शक्तियाँ असीमित हैं। वह झाँसी वाली रानी, जो वीर थी और लड़ाकू भी, एक पुत्र की माँ और पति की पत्नी भी थी। जीवन का सुहाग, उमंगें और चाँदनी-जैसी निर्मल आभा भी उसके जीवन में दिखाई देती थी। मेरी तुम्हारी भाभी के लिए भी ऐसी ही धारणा है। पर नारी हिंसा करे, मैं इस पक्ष में नहीं हूँ। मैं ऐसा नहीं बन सका हूँ। मैं ऐसी ही भावना लिये तुम्हारी भाभी को पाता हूँ।"

अजय ने कुर्सी के दोनों हत्थों को जोर से पकड़कर कहा—"नारी की यही हीनता है। आधुनिक नारी में जो यह प्रभाव आया है, उसने इस नारी को झुका दिया है और दुर्बल बना दिया है।"

यह सुनकर भैया हँस दिया।

उसी समय रोहिणी वहाँ आई। उसे देखकर भैया ने कहा—"तुम पसीने में नहा रही हो। क्या कोई विशेष भोजन बना रही हो?"

रोहिणी ने कहा—"विशेष कुछ नहीं। दाल और साग बन गया, खीर बाकी है। चूल्हे पर वही रखी है।"

भैया ने कहा—"मैं तो चने खाने वाला आदमी हूँ रोहिणी, कभी-कभी भूखा भी रह जाता हूँ, मैं जन्म से ही ऐसा रहा हूँ।"

अजय ने हँसते हुए रोहिणी की ओर देखकर कहा—"सुना भाभी! यह तो चनों की बात है। अगर कहीं दो-चार महीने खीर-पूरी के भोग लगे, तो जाने हमारे इन भीमकाय भैया की देह के अंग-प्रत्यंग कहाँ जाकर समायं?"

यह सुनकर रोहिणी हँस दी। किन्तु भैया ने उसी प्रकार गम्भीर मुद्रा बनाए हुए कहा—"बहन का अन्न खाना भी कठिन है। देखता हूँ, यह अच्छा भी नहीं है।"

"हाँ, अच्छा भी नहीं है। और भैया बहन के काबू में भी नहीं है।' रोहिणी ने हँसते हुए कहा।

तब भैया ने मुस्कराकर कहा—"काबू में तो आ गया है भैया, जान-बूझकर आ गया है। और अब खीर खाकर मूछों पर ताव देता हुआ चला भी जायगा।"

"ना भैया, तुम्हारी इस बहन के पास क्या है? यह बहन निर्धन है।" विनीत स्वर में रोहिणी ने कहा।

यह सुनते ही सदय भाव से भैया बोला, "यही तो बात है, तुम्हारे इस भैया की कि यह इसी को धन मानता है। भैया इसी को जीवन मानता है, रोहिणी!"

रोहिणी मौन थी। भैया फिर कहने लगा, "रोहिणी बहन, तुम्हारा यह भैया बड़े निर्धन घर में पैदा हुआ था। बताऊँ तुम्हें, जब यह भैया छोटा था, स्कूल में पढ़ता था, तो घर पर इसे इतना पेट-भर खाने को नहीं मिलता था जो जिये और जीता रहे। लेकिन फिर भी यह जीता रहा, मरा नहीं। यह स्कूल में बच्चों की रोटियाँ चुराकर खाता था। जिस स्कूल में था, उसमें जो अमीर घर के लड़के थे वह घर से पूरियाँ और चूरमा बाँधकर लाते थे। वह सबको दिखा-दिखाकर खाते थे। जो साधारण रोटियाँ लाते, वह छिपाकर खाते। उन्हीं सब

में यह भैया था, जिसने जाना ही नहीं, जिसने समझा ही नहीं कि किस प्रकार वह उन सबके साथ मिलकर बैठे और अपनी रोटी खाये। इसे सदा ही छिपाकर, अकेले में बैठकर अपनी उन दो-दो दिन की रूखी रोटियों को खाना पड़ता था। जब ऐसी भी रोटियाँ यह पर्याप्त न पाता, तो यह भूखी और अतृप्त आँखों से उन लड़कों को खाते देखता और अवसर पाकर उनकी पूरियाँ, परौंठे और चूरमा चुरा लेता और सब खा जाता।"

उस समय रोहिणी सब ओर से हटकर जैसे भैया की बात सुनने में ही लग गई थी। अजय भी चुपचाप बैठा उनकी गाथा सुन रहा था। किन्तु रोहिणी थी जो उन बातों में डूबी-सी, अपनी आँखों में एक दर्द लिये भैया की ओर देख रही थी।

और भैया था, जो तब नितान्त भावुक और निश्चल बना हुआ अपने अतीत पर पहुँच गया था और उसी के एक पृष्ठ को ले, उन्हें सुनाने बैठा था। वह कह रहा था, "रोहिणी बहन, मैंने बचपन में नहीं समझा कि कैसा होता है मिठाई का स्वाद ? मुझे गुड़ तक भी नहीं मिल पाता था उन दिनों। देखता हूँ मैं आज जो-कुछ हूँ, जो अपने को पाता हूँ, उसी अतीत—अपने उसी जीवन की इच्छा का एक फलता हुआ फूल पाता हूँ। अपनी स्थिति को देखकर ही मैंने दूसरों की स्थिति को समझा और पाया। इसीलिए मैं आज सेवा और दया-भाव की भावना से प्रेरित हुआ हूँ। मैं अपने जीवन को इसी के अर्पण कर चुका हूँ।"

"भैया···!" एकाएक रोहिणी बोली।

भैया ने फिर जैसे कठिनाई से मुसकराकर कहा—"बहन, मुझे एक घटना याद आ गई। एक बार मैं अपने गाँव के पास के कस्बे में चला गया था। बाजार में पहुँचा तो एक हलवाई की दुकान पर देखा कि कुछ लड़के मिठाई लेकर खा रहे थे। दुकान में इमरतियाँ बन रही थीं और वे थाल में रखी जा रही थीं। मैं भूखा था। वहीं ठिठक गया। दुकान में रखे अनेक मिठाइयों के थालों की ओर तृष्णा-भरी आँखों से देखने लगा। कैसी दीन और ललचाई आँखें थीं वे मेरी ! मेरी नीयत

में कितनी व्याकुलता भरी थी उस समय। तभी मेरे पैर कुछ आगे बढ़े और मेरा हाथ मिठाई के एक थाल पर जा पड़ा। मैंने लड्डू उठा लिया। उसे मुँह में भी रख लिया। एक, दो, तीन, इस प्रकार मैं कई लड्डू खा गया। तभी दुकानदार ने मेरी ओर देखा। वह चिल्लाया—'चोर! पकड़ो बदमाश को!' यह सुनते ही मैं तपाक से एक ओर को भाग खड़ा हुआ और भागता ही चला गया।"

रोहिणी ने सहमे हुए भाव में कहा—"पकड़े जाते, तो निश्चय ही जेल जाते, भैया!"

भैया ने अपनी कमर को कुर्सी से लगाकर कहा—"हाँ, जेल ही जाता और सजा पाता। सो सोचता हूँ आज, यदि तब मैं जेल चला जाता तो आपने लिए आज अच्छा ही पाता। मैं आज से अधिक अपने में वेदना और टीस का आभास पाता। तुम्हारा भैया और अधिक घिस-मँज जाता। यह और अधिक प्रगतिशील बन जाता।"

तब रोहिणी यह सुनकर बरबस मुसकरा दी।

उसी समय अजय ने कहा—"भाभी, अब तुम रसोईघर में जाओ। भूख लगी है, तुम जाकर खीर देखो।"

यह सुनकर रोहिणी ने चौंककर कहा—"ओह. मैं भूल ही गई थी। अच्छा, भैया स्नान करो तुम! अजय तुम भी।" कहते हुए रोहिणी रसोई की ओर चली गई।

उसी समय भैया ने अजय की ओर देखकर कहा—"जीवन स्वयं एक कहानी है।"

अजय ने लम्बी साँस खींचकर कहा—"तुम भाग्यवान् हो भैया, जो इतनी कहानियाँ साथ लिये फिरते हो और उन्हें अपने दिल में उतार चुके हो!"

भैया खड़ा हो गया। वह अँगड़ाई लेकर अपने सिर के लम्बे बालों में हाथों की उँगलियाँ फेरते हुए बोला, "हाँ अजयबाबू, जीवन का अनुभव तो है, पर कितना कड़वा और तीखा है यह! सच, मैं जब अपने उस अतीत को देखता हूँ, तो देखता ही रह जाता हूँ।"

अजय तब बाहर नीले आकाश की ओर देखने लगा था। वह

उसी में, मानो जीवन देखता था, जो पीछे छूट गया था।

एकाएक ही अजय को बड़े भाई का पत्र मिला। जिसमें शीघ्र ही घर लौटने को लिखा था। उसकी भाभी बीमार थी। यह भाई का तीसरा पत्र था, जो उसे बुलाने के लिए लिखा गया था। अजय ने पत्र पढ़कर रोहिणी को दे दिया। उसे जब रोहिणी पढ़ चुकी, तो उसने जाने कैसी जिज्ञासा के साथ अजय की ओर देखा।

अजय ने कहा—"क्यों भाभी, मुझे अब जाना ही चाहिए? भाभी बीमार है। भाभी के स्वस्थ होते ही मैं तुरन्त लौट आऊँगा।"

"और तुम्हारा काम?···भैया?"

"जो काम है, वहाँ भी कर सकूँगा। मैं भैया को वहीं से पत्र भी लिख दूँगा।"

"तो जाओ।" कहते हुए रोहिणी अपने कमरे में चली गई। वहाँ जाकर यह निरुद्देश्य ही उठा-धरी करने लगी।

पीछे-पीछे अजय भी कमरे में आया। उसने देखा, जैसे भाभी किसी बात में उलझी है। जरूर उसके मन में कुछ-न-कुछ हलचल मची है। वह एक अलमारी खोलकर उसमें लगी चीजों को उठा-धर रही थी। पास जाकर अजय बोला, "भाभी!"

भाभी ने अलमारी की चीजों को देखते हुए ही कहा—"हूँ।"

"कहो तो जाऊँ? मुझे जाना चाहिए, भाभी! तुम भी चलो।"

यह सुनकर रोहिणी ने मुड़कर अजय की ओर देखा। उसकी आँखें भीगी हुई थीं।

देखते ही अजय ने कहा—"तुम रो रही हो भाभी?"

"नहीं, अजयबाबू, यह आँसू हैं, जो निकल आए हैं। सच कहती हूँ कि तुम जाओ।" कहते हुए रोहिणी ने अपनी आँसुओं से भरी आँखों को पोंछ लिया और अपने दूध से दाँतों को खोलकर सूखा-सा मुसकरा दिया।

तब अजय और अधिक उसके समीप हो गया। उसने रोहिणी की आँखों में अपनी आँखें डालकर कहा—"शायद सोचती हो तुम, जो अजय जायगा फिर नहीं आयगा।"

सुनते ही रोहिणी ने आतुर-से मन से कहा—"यह नहीं, यह नहीं अजयबाबू!"

"तो फिर क्यों रोई हो? तुम क्यों खिन्न बनी हो? तब जानूँ, हँस पड़ो तुम!"

यह सुनकर बरबस रोहिणी हँस पड़ी अथवा हँसने की चेष्टा करने लगी।

अजय ने कहा—"मैं आज शाम की गाड़ी से चला जाऊँगा। प्रातः पहुँच जाऊँगा घर।"

तभी रोहिणी को बाहर जाते देखकर अजय ने पूछा—"तुम कहाँ चलीं भाभी?"

"तुम्हारा सामान बाँधूगी। तुम्हारी जो-जो चीजें हैं, उन्हें बक्स में रख दूँगी।"

यह सुनकर अजय वहीं बैठ गया। उसे यह अच्छा नहीं लग रहा था कि भाभी उदास है। पर क्या कहे वह—वह बँधा है। अब उसे घर जाना है। भाभी बीमार है, यह सुनकर तो जरूर जाना है। ऐसे क्या कहते होंगे भाई और भाभी कि अजय बुलाने पर भी नहीं आया है, जहाँ गया है वहीं-भर का हो गया है।

और यह भाभी है, जो निरी भावुक और कलात्मक हुई ऐसी अधीर बनी है और खिन्न हुई है, आखिर वह क्यों? किसलिए? अजय अपना-पराया है। यह दूर का है। इसे आज नहीं तो कल, कभी भी अपने घर जाना ही है। इसे वहीं रहना है। लेकिन यह भाभी है, जिसने सब ओर से छूटकर, लगता है मुझी को अपना समझ लिया है। इसने व्यर्थ ही अपने-आपको इस सार-हीन और अर्थ-हीन अजय की सीमा में बाँध लिया दीखता है। इस भाभी की यही भावना है। इसमें जो गतिवान आत्मा है, उसने इस एकाकी और जीवन में शून्य हुई भाभी को, दीखता है, अब यही सिखाया है और बताया है···।

···लेकिन मैं बँधा हूँ। मैं स्वतन्त्र नहीं हूँ। मैं इस दुनिया के हाट में अब घर-गृहस्थी का आदमी नहीं रहा हूँ। वैसे भाभी, भाभी हैं, मैं इनके लिए अपने जीवन की समस्त अनुभूति और शुभेच्छा को भेंट कर सकता हूँ। मैं इन्हें सब-कुछ दे सकता हूँ···।

उसी समय बाहर लक्ष्मी जीजी और महेशबाबू का बोल सुनाई दिया। अजय अपनी उन्हीं भावनाओं में भरा हुआ कमरे से निकलकर उनके पास गया। उसने दोनों को 'नमस्ते' किया। तभी रोहिणी ने लक्ष्मी को बताया—"अजयबाबू घर जा रहे हैं आज ही। इनकी भाभी बीमार हैं।"

यह सुनकर महेशबाबू ने अजय की ओर देखकर कहा—"तब तो हम यहाँ चले आए, यह अच्छा ही हुआ।"

अजय ने कहा—"मैं शीघ्र ही फिर लौट आऊँगा।"

"किस गाड़ी से जायंगे आप ?" महेशबाबू ने पूछा।

"शाम के सात बजे की।"

"तो अभी समय है। सुरेशबाबू को पता है क्या इनके जाने का ?"

रोहिणी ने कहा—"अभी तो पत्र आया है। जाने का भी अभी निश्चय किया है।"

तब महेशबाबू ने अजय की ओर देखा। उन्होंने मुसकराकर कहा—"आखिर आप चल दिए, अजयबाबू! लौटें तो ठीक, आपकी याद रहेगी।"

लक्ष्मी ने कहा—"रोहिणी को एक साथी मिला था। सो वह भी चला।"

अजय बोला—"मैंने तो भाभी से कहा है कि वे भी चली चलें।"

यह सुनकर रोहिणी ने अपने सूखे होठों पर जीभ फेरकर सूखी-सी हँसी के साथ ऊपर को मुँह किया और कहा—"बुलाया इनको है, और मैं साथ लग लूँ। कहें तो, आकर ले जाना। लिखोगे तो मैं स्वयं चली आऊँगी।"

लक्ष्मी ने कहा—"ठीक तो है अजयबाबू, इस बहाने आप आ भी जायंगे। उड़ता पंछी और बहता पानी, किधर जाय, किधर बहे—

इसका कुछ पता भी तो नहीं। यही आदमी की बात है। और फिर आप—ब्रह्मा भी हार जाय ···!"

यह सुनकर अजय थोड़ा-सा, कुछ मन्द-सा हँस दिया।

लक्ष्मी ने फिर उसी परिहास के भाव में कहा—"तुम्हारी भाभीजी सोचती होंगी, देवर लाला जाने क्या करने-धरने लगे हैं। अब यह बीमारी का तीर है, जो खाली थोड़े ही जायगा। जाइये, आपकी भाभी जी व्याकुल हैं अपने देवरजी के लिए ···!"

तब अजय ने हँसते हुए महेशबाबू की ओर देखा।

महेशबाबू ने कहा—"तुम तो पीछे पड़ गई हो अजयबाबू के! घर जाना भी तो आखिर काम है। रहना तो वहीं है। यहाँ तो मेहमान हैं—कल आये, आज चले।"

"जी, ऐसे हैं यह मेहमान!" तभी लक्ष्मी ने आलोड़न-भरी आँखों से अजय की ओर देखकर कहा, "राम बचाये ऐसे मेहमानों से। मेहमान ऐसे होते हैं। कभी तो शऊर से घर बैठे नहीं, कभी आपस की बात नहीं की। रोहिणी सदा ही झीकती रही," उसने कहा, "यह सीधी-सी रोहिणी मिल गई अजयबाबू, जो तुम्हें छूट देती रहीं। कहते तो हैं लोग, आये थे मेहमान बनकर और मालिक बन गए। सो हाल तुम्हारा है," कहते-कहते वह उन सबकी ओर देखकर हँस पड़ी।

अजय ने कहा—"आज ही सब गुस्सा उतार लोगी क्या भाभीजी?"

"और नहीं तो क्या?" लक्ष्मी ने कहा, "तुम भी तो कभी से जाऊँ-जाऊँ की रट लगा रहे थे, सो चल दिए आज!"

"नहीं भाभीजी, मैं आऊँगा फिर अवश्य।"

तब महेशबाबू ने लक्ष्मी की ओर देखकर कहा—"अच्छा हम चलें, सुरेशबाबू को भी इनके जाने की सूचना दे दें," जाते हुए उसने अजय की ओर देखकर कहा, "हम आपके जाने के समय तक आ जायंगे।"

लक्ष्मी भी खड़ी हो गई। उसने रोहिणी की ओर देखा, तो खिन्न-सी उदास दीखती थी। वह बरबस ही रोहिणी की ओर देखकर मुसकरा दी। लक्ष्मी ने उसके कन्धे पर हाथ रखा और जाने कैसी भावमयी दृष्टि से उसे देखकर क्षणेक हँस दिया।

उसे जाते हुए देखकर रोहिणी ने पीछे से पूछा—"तो आओगी, जीजी ?"

"हाँ, हाँ, क्यों नहीं आऊँगी। भला अजयबाबू के लिए न आयं जीजी !"

तब रोहिणी ने उन दोनों के जाने पर अजय की ओर देखा और उससे पूछा—"तुम्हारा क्या-क्या सामान है ? लाओ दो, तुम्हारे बक्स में रख दूँ। बिस्तर भी बाँध दूँ ?"

अजय ने बात को सुन लिया, परन्तु उत्तर नहीं दिया। वह कुर्सी से कमर लगाकर जिधर देख रहा था, उधर ही देखता रहा।

रोहिणी ने फिर कहा—"बताओ न, फिर करोगे जल्दी-जल्दी।"

यह सुनकर अजय ने रोहिणी को देखा, उसकी भरी हुई आँखों को भी देखा।

यह देखकर अजय ने कहा—"भाभी रोती हो ? अब भी रोती हो, तुम !"

यह सुनकर भाभी ने दूसरी ओर मुँह फेर लिया। उसने तब फफक-फफककर रोना आरम्भ कर दिया था।

"भाभी !" कहते हुए अजय खड़ा हो गया। और वह ठीक रोहिणी के सामने खड़ा होकर बोला, "जाने कैसा मन है, तुम्हारा ! जो यों ही रोता है, बात-बात पर रोता है ?"

इतना सुनकर रोहिणी ने अपनी आँसुओं से भीगी हुई लाल आँखें ऊपर उठाईं और उन्हें अजय की आँखों में डालकर उसे इस प्रकार देखती रह गई, जैसे बड़ी दीन है वह। जिसमें एकाएक ही, एक बच्चे की नाईं भोली-सी, सुकुमार ममता साकार मूर्तिमान होकर खड़ी हो गई।

अजय ने कहा—"तुम समझती हो, अजय निरा शून्य है और जड़ है; जो नहीं समझता ममता का मर्म। पर यह भी इसी विश्व का और हाड़-मांस का जीव है भाभी ! इसके पास भी आकांक्षाएं हैं। मानव के प्रेम और त्याग के मध्य में यह भी खड़ा है। बताओ तो, कैसे समझ लिया है तुमने कि यह अजय बिलकुल ही अबोध है, त्यागी है और एकाकी रहना चाहता है। ना भाभी, इस अजय को तुम्हीं ने ममता

और स्नेह का पाठ पढ़ाया है। जीवन के उत्थान और पतन की जो रेखा है, उसे यह तुम्हारे पास रहकर अधिक समझ पाया है। और तुम रोती हो। जिस अजय को तुम अब तक सँजोकर रख सकी हो, उसी को, अपने इन आँसुओं में बहा देना चाहती हो क्या भाभी? इसे यों मिटाना है क्या··· ?"

रोहिणी ने आँख मूँदकर, जैसे अजय द्वारा कहे गए एक-एक शब्द को गले के नीचे उतार लिया। उसने कुछ नहीं कहा। उसने धीरे-धीरे अजय के सामान को सँभालकर रखना आरम्भ कर दिया।

लेकिन इसके विपरीत अजय जहाँ खड़ा था, कुछ क्षण तक वहीं खड़ा रहा। लगता था, वह तब भाभी के प्रति अपने कर्तव्य को समझने और देखने की चेष्टा में लगा था। उस दिन जंगल में रात के समय, जैसे रोहिणी ने अपने को भूलकर अपने कोमल और मधुर अधरों को उसके होठों पर रख दिया था और सिर भी उसकी गोद में रख लिया था, वह सभी, उस एक क्षण में, अजय के सामने रोहिणी की भावनाओं का मूर्त रूप होकर सामने खड़ा हो गया। वैसे इतने बीच में, उसने एक दिन भी, न उस पर विचार किया, न ध्यान दिया था। लेकिन आज जो वह भाभी से पृथक् होने वाला है तो उसके आँसुओं को देखकर वह मानो अपने धरातल से खिसककर रोहिणी के समीप हो गया था और उसके जीवन में मिल गया था। अपनी उसी मनोदशा में वह रोहिणी के पीछे जाकर खड़ा हो गया और बोला, "भाभी, बताओगी नहीं! कुछ कहोगी नहीं! तुम में जो दर्द है, उसे व्यक्त नहीं करोगी क्या?"

रोहिणी ने अपने काम में लगे हुए ही उत्तर दिया, "अजयबाबू, तुम समझो, मुझमें दर्द नहीं है। वह मोह है, जिसे व्यक्त करना मेरा स्वभाव बन गया है," और उसने एक कोट की ओर इंगित करते हुए पूछा, "इसे रखना है, या पहनना है।"

परन्तु अजय तब भी जैसे कोट की बात नहीं सुन पाया। वह वहीं पास पड़ी हुई कुर्सी पर बैठ गया और अपनी ही बात लेकर बोला, "जो हो, अजय तुम्हारा है। वह अपने-आप ही यहाँ आकर तुमसे बँध गया है भाभी··· !"

रोहिणी बक्स में कपड़े रख चुकी थी। वह खड़ी होकर अजय की ओर देखती हुई बोली, "मैं कहती हूँ, तुम मेरे असन्तोष और सन्तोष में मत उलझो। तुम अपनी ओर देखो। अपनी दिशा देखो। मेरा क्या, जीवन पड़ा है, लम्बा-सा और ऊजड़-सा, जो मुझको बिताना है। इसका भार मुझे स्वयं ही अपने कन्धों पर रखना है। मुझे अन्य किसी को अपना साझी नहीं बनाना है, हाँ नहीं··· ।"

"तो कल सुरेशबाबू आए थे ?"

"आए थे।"

"तब, क्या कहा तुमने ?"

"कहा कुछ नहीं।"

"पर जो मैंने कहा है, उसे तुम एक बार और सोच लो भाभी ! भैया की भी यही बात है। उनका तो कहना है, आदमी बढ़ तो जाता है, पर लौट नहीं पाता। सुरेशबाबू के पिता का जिस मिल में साझा है, उसी के मजदूरों में तुम्हें काम करना है। निश्चय ही, यह देखकर तब शायद रुष्ट हों सुरेशबाबू। यह उनका स्वार्थ है। इसमें तुम्हारे-उनके सम्बन्ध बिगड़ने का भी अन्देशा है। वह भी तुम्हारे एक आत्मीय हैं। तुम उनकी ऋणी हो। इसी से चाहता हूँ, तुम्हारी राह से मैं दूर हो जाऊँ। सो, आज चला हूँ, तुम जो कुछ करोगी, भैया का उसमें पूरा साहाय्य पा सकोगी।"

अजय ने फिर कहा—"मैं किसी के पथ का रोड़ा बनना पसन्द नहीं करूँगा भाभी ! मेरी दिशा और है। ईर्ष्या और द्वेष मुझमें नहीं हैं। यह अजय कितनी भी दूर रहे, किसी भी अवस्था में रहे, वह सदा-सर्वदा तुम्हारा ही होकर रहेगा। यही इसकी कामना और इच्छा है। घर जाकर मुझे अपनी निर्धनता की ओर भी देखना है। यह कैसी अवस्था है मेरी। जेब में किराये-भर के पैसे हैं, वह भी तुम्हारे हैं। यह कहते-कहते अजय जैसे दीन बन गया। वह भावुक बन गया और अपने उस अनमने मन को लेकर जैसे निरुद्दिष्ट और निरभिमानी-सा हो, रोहिणी की ओर देखकर बोला, "वैसे, मैं तुमसे क्षमा माँगूगा भाभी ! जो अपराध किये हैं, उन्हें भूल जाने के लिए कहूँगा।"

सुनते ही रोहिणी ने आर्द्र होकर कहा—"अरे, मैं किस-किस बात को क्षमा करूँगी, अजयबाबू! बताओ कैसे करूँगी? दुनिया की तरह तुम भी हो; वैसे ही एक आदमी, जिनका कहना ही काम है। पर मैं कहती हूँ, जो कहते हैं वह सुनते क्यों नहीं।"

अजय ने बात को जैसे बदलने के अभिप्राय से कहा—"सामान तो बँध गया। समय भी कम है।"

किन्तु रोहिणी ने अपनी बात पर जोर देते हुए कहा—"इस समय मैं केवल इतना कहूँगी कि मैं एकाकी हूँ। तुम जिस भाभी को ऊपर से हरी-भरी देखते हो, अन्दर से उतनी ही उजाड़ है वह। इसे सहारा चाहिए—यही मैंने तुमसे माँगा है। मुझे पति नहीं पाना है। मुझे तो···।"

"आ गए आप लोग। आइए।" लक्ष्मी और महेशबाबू के साथ सुरेश को देखकर अजय ने कहा।

सुरेश ने कहा—"आखिर आप चल दिए। यों, एकाएक चल दिए।"

"हाँ, सुरेशबाबू, जाना था, सो अब जाना पड़ा।" अजय ने कहा।

महेशबाबू ने कहा—"समय कम है। बाहर ताँगा खड़ा है जल्दी कीजिये।"

"हाँ, हाँ, हम चलें," कहते हुए अजय ने रोहिणी की ओर देखकर कहा, "तो सामान रखें, भाभी!"

भाभी ने अन्दर जाते-जाते कहा—हाँ, रखो।"

ताँगे में सामान रख दिया। कपड़े बदलकर रोहिणी ने अपना कमरा भी बन्द कर दिया। तब अजय ने चलने को उद्यत होकर पास बैठी हुई रामू की माँ की ओर देखकर कहा—"अच्छा रामू की माँ, आज्ञा दो। राम-राम।"

रामू की माँ ने कहा—"अच्छा बेटा, जाओ, जीते रहो, तुम्हारी बड़ी उम्र हो। चन्दा-सी बहू आए। जल्दी लौटना।"

अजय ने कहा—"अच्छा, अच्छा।"

सब ताँगे में बैठ लिए और स्टेशन को चल दिए। वहाँ पहुँचकर टिकट ले लिया गया और गाड़ी में सामान रख दिया गया। तब उन

सभी मित्रों की ओर देखकर अजय ने कहा—"सच, बड़ा कष्ट अनुभव हो रहा है मुझे आपको छोड़ते और आपके बीच से जाते हुए। लक्ष्मी जीजी तो सदा याद आयंगी।"

लक्ष्मी ने तपाक से हँसकर कहा—"देखना चाहिए! वैसे पुरुषों का भरोसा तो नहीं है। यह ममता-मानता तो हम स्त्रियों के ही हिस्से में आई है सारी।"

यह सुनकर अजय ने रोहिणी की ओर देखा, जिसने अपना मुँह दूसरी ओर घुमा रखा था।

उसी समय गाड़ी ने सीटी दी। अजय ने रोहिणी की ओर देखते हुए कहा—"भाभी, मैं जाते ही पत्र लिखूँगा," और उन सब को लक्ष्य करके वह बोला, "मेरे पत्र का उत्तर दीजियेगा जरूर। लक्ष्मी भाभी तुम भी।"

लक्ष्मी ने कहा—"जरूर।"

गाड़ी ने फिर सीटी दी। वह चलने लगी।

अजय सबको 'नमस्ते' करके गाड़ी पर चढ़ लिया और रोहिणी की ओर देखकर बोला—"मैं जल्दी आऊँगा भाभी, जल्दी।"

तब उत्तर में रोहिणी ने अपना हाथ हिला दिया। और बरबस ही मुसकरा दी।

इधर रोहिणी और सुरेश में, पहले-जैसी आत्मीयतापूर्ण बातें नहीं हुईं। सुरेश देखता है, जैसे रोहिणी ने अपनी दिशा चुन ली है—कोई लक्ष्य बना लिया है। परन्तु उस लक्ष्य का रूप क्या है, यह सुरेश एक दिन भी नहीं समझ पाया। यही बात एक दिन लक्ष्मी जीजी की ओर से कही गई थी। किन्तु उस समय सुरेश ने अपना कोई भी मत नहीं दिया था। महेशबाबू ने कहा—"अजयबाबू के विचारों का, उनके सम्पर्क का रोहिणी पर काफी प्रभाव पड़ा है। रोहिणी किसी अपनी निर्धारित दिशा की खोज में है, जो अभी उसे नहीं मिली है।"

निदान, जब अजय चला गया तो उसके दूसरे दिन सुरेश रोहिणी से मिलने आया। रोहिणी ने पहले की तरह उसका स्वागत किया, उसे बैठाया।

बैठने के बाद ही सुरेश ने पूछा—"अब क्या अजयबाबू नहीं आयंगे, भाभी ?"

"जाने, आयंगे कि नहीं।" रोहिणी ने उत्तर दिया।

"किन्तु तुम आजकल कैसी बनती जा रही हो। लगता है जैसे बिलकुल ही बदल गई हो।"

रोहिणी यह सुनकर मुसकरा दी।

सुरेश ने फिर कहा—"तुम दुर्बल भी हो गई हो। सुना है तुमने बैंक से एक पैसा भी नहीं मँगाया। कैसे काम चलाती हो आजकल ?"

रोहिणी ने कहा—"हाँ सुरेशबाबू, मैंने बैंक से पैसा नहीं मँगाया। मँगाना ही नहीं चाहा। सोचा, मुझे अपने पैरों पर खड़े होना है। जीवन तो लम्बा है, इसे यहीं तो समाप्त नहीं करना है।"

"हूँ ! तो यों कहो, तुमने समझ लिया है कि सुरेश पराया है। इसका पैसा भी पराया है।"

"नहीं सुरेशबाबू, मैंने ऐसा कभी नहीं सोचा। और क्या तुम्हें मुझ पर ऐसा भरोसा है ?"

यह सुनकर सुरेश ने रोहिणी की आँखों की ओर देखा। उसी ओर देखते हुए उसने कहा—"भाभीजी, जानता तो हूँ कि आदमी स्वभाव का दुर्बल है। लेकिन इतना सब होने पर भी, जो मेरे सामने लक्ष्य है, वह यह है कि भैया रमा के बाद तुम्हारी आर्थिक कठिनाई को दूर करना मेरा परम धर्म है।"

रोहिणी ने व्यग्र होकर कहा—"तो इसमें अपवाद क्या है, सुरेश-बाबू ! आपत्ति ही क्या है ?"

सुरेश ने रूखी हँसी हँसकर कहा—"नहीं, आपत्ति इसमें क्या होगी। और इसके लिए मुझ-जैसे व्यक्ति का प्रश्न ही क्या ?"

"सुरेशबाबू, तुम भाभी को अपने पैरों पर चलने दो। इसे अपने ही भरोसे पर जीने दो।"

"तो कुछ सोचा भी है ? ऐसा कोई अवलम्ब खोजा भी है ?" सुरेश ने जैसे रोहिणी को समझने के अभिप्राय से पूछा।

किन्तु रोहिणी ने फिर सीधा-सा उत्तर दिया—"कुछ भी कर लूँगी। यह जानती हूँ, जैसे-तैसे जीवन बिता ही लूँगी। तुम बैंक से ये उठा लो। तुम्हारी भाभी पर जब कभी कोई कठिनाई आयगी, तो निश्चय ही वह तुमसे माँग लेगी। और अब मेरा खर्च ही क्या है। अब मैं कुछ काम भी करना चाहती हूँ। सोचा है कि मैं मिलों में काम करने वाले मजदूरों के बच्चों को पढ़ाऊँ। कुछ मिला तो इसी परिश्रम से अपनी जीविका चला लूँगी। दो रोटी खानी हैं, कहीं भी खा लूँगी। चाहो तो इस काम में लग जाओ मेरे साथ। सच, मिल के मजदूर कुछ नहीं जानते, वह नहीं समझते कि उनके पास भी जीवन है, जिसका कोई अर्थ है !"

सुरेश ने मानो उस बात की गहराई पकड़ ली और गहरी साँस लेकर कहा—"तो तुम यह करोगी ! मजदूरों और उनके बच्चों में तुम जाकर मिलोगी और बैठोगी !"

"हाँ सुरेशबाबू, यह तुम्हारी भाभी जिस स्तर पर खड़ी है, उस पर भला यह कैसे टिकी रह सकती है। ऐसे, न यह जीवित रह सकती है, न शान्ति ही पा सकती है।"

उसी समय रोहिणी ने जैसे अपने प्रसंग को छोड़ने के अभिप्राय से दूसरी बात लेकर कहा—"तुम मेरी ही सुनोगे या अपनी भी कहोगे कुछ ? पिताजी ने कहीं किया विवाह ठीक ?

सुरेश ने ऊपरी मन से कहा—"अभी कुछ नहीं ! वैसे चर्चा सुनता हूँ। लेकिन अभी विवाह तो मैं स्वयं भी करने के पक्ष में नहीं हूँ।"

"ऐसा क्यों सुरेशबाबू ! जीवन ऐसे नहीं चलता। दुनिया का कोई काम भी ऐसे नहीं होता।"

यह सुनकर सुरेश हँसा। लगा कि वह बरबस हँसा हो। उसके मन में जीवन और दुनिया की उपादेयता की क्षण-भर के लिए जो सन्देह-पूर्ण व्यवस्था उत्पन्न हुई थी उसी को लिये उसमें यह इच्छा आई कि कहे—भाभी, जीवन तो तुममें भी है। दुनिया तुम्हारे लिए भी है। फिर

मेरा क्या ? मेरे इस जीवन का क्या ? लेकिन उसने यह कहा नहीं। अपने इस भाव के साथ उसने रोहिणी की ओर देखा भी नहीं। वह तब निरा विक्षिप्त और उदासीन-सा जिस प्रकार कमरे के एक चित्र को देख रहा था, उसी प्रकार देखता रह गया। उसमें जो नई सृष्टि की भावनाओं का एक समूह एकत्र हो गया था, वह तब उस सृष्टि की निर्मात्री रोहिणी द्वारा ही, जैसे उसकी दृष्टि में लिप-पुतकर एकाकार बन गया था। लगा, जो उसके अरमानों की दुनिया थी, पानी की एक लहर आई और उस पर से निकल गई। तब कितना दीन-सा लगता था वह। कितना अयाचित और प्रताड़ित-सा···!

और तब बरबस उसने अपने मनोभावों को रोककर कहा—"अच्छा, आज सोचा मैंने कि चलूँ भाभी के पास। कोई काम तो नहीं। मेरी आवश्यकता तो नहीं। पर देखता हूँ, मेरा काम नहीं है। आगे भी नहीं होगा। तब क्या कहूँ मैं। किस मुँह से कहूँ मैं!"

यह देख सुनकर रोहिणी ने अचरज-भरे स्वर में कहा—"ऐसा क्यों कहते हो सुरेशबाबू! यह रोहिणी तुम्हारी अपनी है। जैसी पहले थी वैसी ही अब भी है। देखते हो, यह भाभी तुम्हारी आभारी है। तुम्हारी ऋणी है···।"

किन्तु दीखता था, सुरेश को यह भी नहीं रुचा था। जैसे रोहिणी गैर है आज, अपरिचित है। जिसकी वाणी में उसे जरा भी अपनत्व का आभास नहीं मिला था। यही उसे असह्य हो गया। उसे वहाँ बैठे-बैठे भी जैसे भार हो गया। वह खड़ा हुआ और रूखी हँसी के साथ रोहिणी की ओर देखता हुआ बोला—"इस व्यावहारिकता के लिए तो दुनिया पड़ी है भाभी! सुरेश ही इसके लिए नहीं बना है।" यह कहते हुए सुरेश चला गया। उस कमरे में तब अकेली रह गई रोहिणी। उसे जैसे अकारण ही अपने में अधीरता और अशान्ति का आभास होने लगा था। उसने जो-कुछ भी सुरेश से सुना और अकस्मात् ही उसके नये रूप को देखा तो वह मानो उसे अच्छा नहीं लगा था। अपनी उसी अवस्था में उसने कमरे को छोड़ दिया और दूसरी ओर जाकर नितान्त खिन्न और उदास-से मन के साथ, निरे उद्वेलित हुए मन से चारपाई

पर पड़ते-पड़ते कहा—'आज यह भी सुनना किस्मत में बदा था। यह सब इसी जीवन में देखना था!'

यह कहने के साथ रोहिणी ने अपनी स्थिर हुई दृष्टि से सामने शून्य आकाश की ओर देखा। कदाचित् उसने चाहा कि उसे वहाँ कुछ मिले। उस नीले आकाश में, जो खोल-सा किसी शरीर के ऊपर ढकी चमड़ी-सा उसे दीख रहा था, उसी में उसने चाहा कि कुछ खोज ले—कुछ पा ले। जो कितना शीतल दीखता है, यह आकाश! कैसा हरा-भरा है! ऐसे, तब भले ही रोहिणी की दृष्टि को उससे कुछ मिला हो, उसके हृदय पर उसका कोई भी प्रभाव नहीं हुआ।

तभी उसने फिर कहा—'जाने क्या-क्या और सुनना, क्या-क्या और देखना रह गया है इस जीवन में! अच्छा है, देख रोहिणी! इसे भोग!'

निश्चय ही तब रोहिणी का मन गिर गया था। उसी दशा में उसकी आँख लग गई और वह सो गई।

कुछ देर बाद, रामू की माँ ने आवाज दी। रोहिणी उठी। उसके मस्तिष्क में जो अशान्ति थी, वह अब दब गई थी। वह पहले से स्वस्थ थी।

रामू की माँ ने कहा—"वह बाबू आये हैं बहू—भैया!"

"भैया आये हैं, अच्छा!" कहते रोहिणी खड़ी हुई। वह अपनी अलसाई आँखों को ले, बाहर के कमरे में गई और भैया को देखते ही वह बोली—"ऐसी दोपहरी में आये हो भैया, नमस्ते!"

भैया ने कहा—"मुझे तुमसे काम था। इसी समय आना था। कल ही सुना कि अजय चला गया। वैसे, आज पत्र भी उसका मिला है। इसी से, आज जो अजय का काम था, वह आज तुम्हारे सिर आ पड़ा है। वैसे करना तुम्हें ही था। यह तुम्हारा ही काम था।"

रोहिणी ने पूछा—"पानी लाऊँ? और भोजन?"

"भोजन कर लिया। पानी भी अभी-अभी बाहर प्याऊ पर पी लिया था," भैया ने कहा, "यह कहो, तुमने सुना न, मिल-एरिया में पढ़ाने का काम तुम्हें सौंपा गया है। वहीं पर आज सभा है। कल

से पाठशाला का काम आरम्भ कर देना है। उसकी तुम्हीं को अध्यक्षा चुना गया है।"

भैया ने फिर कहा—"और भी सहायक मिलेंगे तुम्हें। अजय भी आ जायगा कुछ दिन में।"

"तो आज मुझे क्या करना होगा? मुझे वहाँ जाना होगा क्या?"

"शाम को पाँच बजे सभा है। मजदूरों को बता दिया है। तुम पहुँच जाना। मैं वहाँ मिल जाऊँगा।"

उस समय रोहिणी के मन में डोल रहा था कि वह भैया को बताय कि अभी-अभी सुरेशबाबू आये थे और मिल के मजदूरों में काम करने की बात को मैंने उनसे कह दिया है। वे सम्भवतः प्रसन्न और सुखी नहीं हुए। तब यही तो है, उन सब मिल वालों की बात। इसीसे उसने भैया की बात सुनकर कहा—"लेकिन भैया, यदि मिल वालों की ओर से रुकावट हुई तो? और पुलिस आई तो?"

यह सुनकर भैया ने निर्लिप्त भाव से कहा—"यह सब तो होगा ही! आज नहीं तो कल होगा! पूँजीपति नहीं चाहेंगे कि उनके स्वार्थ मारे जायं। मजदूर अपने जीवन की कठिनाइयाँ न समझ पायं यही उनका, मिल-मालिकों का सबसे बड़ा स्वार्थ है। वह मजदूरों को अन्धकार में रखना चाहते हैं। उन्हें प्रसन्नता है कि मजदूर शराबी और जुआरी हैं। इसी से तो मजदूर भूखा और नंगा है। वह पूरा महीना उधार लेकर काटता है। जरूरत ने उसे झुकाया है और दीन बनाया है। वह सदा अपनी कठिनाइयों में, अपनी रोटी की चिन्ताओं में, धनिक की मशीनों के साथ मशीन बनता है और काम करता है।"

"भैया, मजदूर नहीं सोचता! वह अपने जीवन की ओर नहीं देखता!"

भैया ने कहा—"बहन, यह भी एक समस्या है। तुम सोचती हो, मजदूर ही कमजोर है, वह ही पापी है। मैं कहता हूँ, उसमें ऐसा कुछ नहीं है। जरा देखो तो, वह कैसे वातावरण में फँसा है। जिस आम को चूसकर धनिकों द्वारा फेंक दिया जाता है, उसी को खाने के लिए इन मजदूरों से कहा जाता है। यह बाजार के चकले, यह सरे-आम

शराब की खुली हुई दुकानें और यह सब ओर खुले हुए जुए खाने—बस, कुछ अन्तर पर ही इनका जो बड़ा रूप है, वह बहुत सुन्दर है, जिस पर चाँदी की चादर पड़ी है, वह इन अमीरों के लिए है। उसी का ही तो यह विकृत और कसैला रूप है, जो अमीरों की जूठन है और जिसे मजदूर को भोगने के लिए प्रचारित किया गया है। क्यों? यह किस लिए? यह इसलिए कि मजदूर इसमें उलझा रहे, और वह समाज में भ्रष्टता फैलाने का कारण बनता रहे। मजदूर सदा अन्धेरे में रहे और धनिक का आश्रित रहे, यही तो रूप है, इस नीयत का!"

रोहिणी ने फिर कहा—"नहीं भैया, मजदूर मूर्ख हैं। वह गतिशील नहीं है।"

"हाँ मेरी बहन, मजदूर मूर्ख तो है, अजान भी है! पर देखती नहीं हो कि उसकी आत्मा सोई हुई है। लेकिन तब, जब वह जागी है, वह समझदार बनी है, उसने शिव के तीसरे नेत्र की तरह ज्वाला उगल दी है और धनिकों की वैभव और विलासप्रियता को फूँककर राख का ढेर-मात्र बना दिया है।"

"यह क्रूरता है! मजदूर जागता है, तो इतना भयंकर बनता है, मेरी दृष्टि में तो यह भी उसकी मूर्खता है, भैया!"

यह सुनकर भैया मुसकराया। उसने रोहिणी की ओर देखकर फिर कहा—"रोहिणी बहन, मजदूर क्रूर बने तो, वह हिंसक तो दिखाई दे, मेरी दृष्टि में ऐसे में ही उसका भला है। यह जो प्रतिक्रिया है, और प्रतिहिंसा की भावना है, इसको पैसे ने जीवन दिया है। जहाँ पैसे का बाहुल्य है, वहीं पर तो इसने आदमी-से-आदमी को दूर कर दिया है। पुरुष यहीं पर भेड़िया बना है। इस धनिक ने और उसकी स्वार्थान्धता ने पुरुष के औचित्य को कम कर दिया है। बहन, उस मिल-एरिया में देखना कि उन लाखों व्यक्तियों में एक भी स्वस्थ और जवान नहीं मिलेगा। उन्होंने कभी भी जीवन का दर्शन नहीं किया। उनकी स्त्रियों ने एक दिन भी नहीं समझा कि यौवन का रूप क्या है! जीवन में जो मादकता है, वह क्या है! बस, उनमें तो रोदन भरा है। उनकी आत्मा

में बस एक ही पुकार है। वह एक ही स्वर में चीखती है कि मौत आय और हमारा अन्त कर जाय !"

यह सुनकर रोहिणी ने एक लम्बी साँस भरी और छोड़ दी। उसने अपनी दीन और नरम हुई आँखें भी भैया की ओर कीं।

भैया ने कहा—"अब तीन बज गए, हमें चलना चाहिए।"

रोहिणी ने कहा—"लक्ष्मी जीजी और महेशबाबू को भी साथ ले लिया जाय तो कैसा रहे ?"

"सूचना भेज दो, आ जायंगे वह !" भैया ने कहा।

"अच्छा, तो आई मैं।" कहते हुए रोहिणी उठी और भीतर जाकर खद्दर की साड़ी पहनकर बाहर आई। वह रामू की माँ को लक्ष्मी के यहाँ भेजकर बोली—"अच्छा, चलो भैया !"

भैया खड़ा हुआ और रोहिणी को साथ लेकर चल दिया।

ताँगे में जाते-जाते रास्ते में भैया ने पूछा—"तुम सभा में बोल सकोगी ?"

रोहिणी ने कहा—"ना, भैया ! महेशबाबू आयंगे, वे बोलेंगे।"

"कुछ तुम भी बोलना।" भैया ने फिर कहा।

उसी समय ताँगा मिल-एरिया में पहुँच गया। देखा, तख्त बिछ गए थे। कुछ आदमी भी आकर बैठ गए थे। रोहिणी तख्त पर जाकर बैठ गई। भैया भीड़ में बैठ गया।

तभी एक परिचित व्यक्ति ने रोहिणी के पास आकर कहा—"अभी कुछ आदमी आये हैं। पुलिस चक्कर लगा गई है। शायद फिर आयं।"

रोहिणी चुपचाप सुनती रही।

उस व्यक्ति ने फिर कहा—"भैया का कहना है, सभापति की कुर्सी पर आप बैठें।"

"भैया कहाँ है ?" रोहिणी ने पूछा।

"वह अब नहीं आयंगे।"

उसी समय महेशबाबू, लक्ष्मी और सुरेशबाबू आ गए। वे सब रोहिणी के पास आकर बैठ गए। रोहिणी ने लक्ष्मी की ओर देखकर कहा—"मैं जानती थी, आओगी तुम !"

लक्ष्मी ने कहा—"मुझे पता था कि आज यहाँ मीटिंग है। रामू की माँ जब गई, तो सुरेशबाबू भी वहाँ बैठे थे। जो शायद तुम्हारे यहाँ से ही गये थे। कहते हुए लक्ष्मी मुसकराई और आँखों-ही-आँखों में हँसी। उसी भाव में वह फिर रोहिणी के कान के पास मुँह ले जाकर बोली—"सुना है, आज तुमसे कुछ कहन-सुनन भी हो गई है। इसी से, कुछ उदासीन और खिन्न भी दिखाई दे रहे हैं। लगता है, बेचारे आज साफ टरका दिये गए।" कहते हुए लक्ष्मी फिर खिलखिलाकर हँस पड़ी।

तभी एक व्यक्ति ने तख्त पर खड़े होकर सभा के आरम्भ होने की सूचना दी। उसी समय रोहिणी ने उसे पास बुलाकर कहा—"सभापति के पद के लिए सुरेशबाबू का नाम पेश कीजिए।"

निदान उसने सुरेशबाबू का नाम पेश कर दिया। जिसे सुनते ही महेशबाबू ने उठकर इसका समर्थन किया और बताया कि इस नाम की उपयोगिता इसलिए भी है कि सुरेशबाबू स्वयं भी एक मिल के साझीदार हैं। जो अभी-अभी जेल से छूटकर आए हैं।

तब अपने नाम को सुनकर सुरेशबाबू ने चाहा कि कहे मुझे यह अस्वीकार है। किन्तु जब यह देखा कि यह सब रोहिणी की प्रेरणा से हो रहा है, तो वह उठा और सभापति की कुर्सी पर बैठ गया। उसके सामने बोलने वालों की सूची रख दी गई, रोहिणी, महेशबाबू और एक सरदारजी।

सुरेश ने पहले सरदारजी का नाम लिया। सरदारजी ने खड़े होकर कहा—"इस दुनिया में, जहाँ कि हम मनुष्यता और ईश्वरीयता का ढिंढोरा पीटते हैं वहीं पर आप देखेंगे कि ये हजारों सूखे और भूख से तड़पते बच्चे! जीवन और आत्मा इनके भी पास है। किन्तु ये पूँजी-पति लोग, स्वप्न में भी यह नहीं देखते, समझना भी नहीं चाहते कि जो मानवता है, और उनके धन की जो सार्थकता है, वह इसी में है कि वे अपने आदमियों को भाई समझें और उनकी आवश्यकताओं को अपनी आवश्यकता समझें। जिन व्यक्तियों के द्वारा वह समर्थ बने हैं,

 उन्हीं के जीवन के प्रति इस प्रकार उदासीन होना, निःसन्देह, आज

की दुनिया में सभी वर्ग इसे अच्छी दृष्टि से नहीं देखते। वे इसे अमानुषिक और मानवता के प्रति अन्याय समझते हैं।"

इसके बाद ही महेशबाबू का नाम लिया गया। उन्होंने खड़े होकर कहा—"सरदारजी ने जो-कुछ कहा, उसे सुनकर आपने अनुभव किया होगा कि धनिक सम्प्रदाय ने जीवन का एक रुख देखा है, दूसरा नहीं देखा। जो भयानक है और कुरूप है। जो निरन्तर ही, उनके प्रति जन-साधारण में भ्रान्ति और सन्दिग्धता पैदा करता है। एक धनिक, जो अपने जीवन में चारों ओर धन की सीमा देखता है, और अपने को सुरक्षित समझता है, निश्चय ही अपने को तो भ्रम में डालता ही है, साथ ही पैसा पाकर जो वह जन-साधारण का अगुआ बनता है, वह उस कर्तव्य के प्रति भी अपराधी होता है। वह जीवन-भर अंधकार में रहता है और दूसरों को उसी में रखना चाहता है। आज धनिक की यही परिभाषा है। वैसे, मैं नहीं कहूँगा कि आप धनिकों के प्रति ईर्ष्या करें। बल्कि मैं तो चाहूँगा कि आप समझें कि आप भी किस प्रकार धनिक बन सकते हैं। आप भी सभ्य समाज के प्रतिनिधि हैं। आप अपने मन में सोचिये कि जीवन के विकास के लिए कौन-सी दिशा ग्राह्य है। अपने जीवन का आप भी निर्माण कर सकते हैं। आप उसके मालिक हैं। आप जिस अंधकार में हैं, उससे बाहर जो प्रकाश है, उसे आप भी। भोग सकते हैं। आप और आपके बच्चे मनुष्य बनें और मनुष्यता पायं, हम सब इस बात की कामना करते हैं, और अभिलाषा रखते हैं।"

महेशबाबू के बैठने पर सुरेश ने रोहिणी का नाम लिया। सुनते ही रोहिणी ने उसकी ओर देखा। उसने सिर हिलाकर इन्कार कर दिया। महेशबाबू ने कहा—"कुछ कहो, रोहिणी!" सुरेश ने भी महेशबाबू का समर्थन किया।

तब रोहिणी खड़ी हुई। वह मजदूरों के उस विराट समूह को देख-कर क्षण-भर जैसे भूल-भुलैयों में पड़ गई। किन्तु आश्चर्य था कि वह संयत रही। वह बोली—"भाइयो, जो आपके हित की बात थी, वह आपने सुनी। लेकिन मैं आपकी बहन हूँ, जो केवल यह कहना चाहती

है कि आप जो अपने बीच में पैसे की हीनता अनुभव करते हैं और इसके कारण जीवन के घोरतम अंधकार में पड़े रहना चाहते हैं, तो निश्चय ही, ऐसा करके आप अपने साथ भी अन्याय करते हैं और मानव-समाज के साथ भी। आप जिन दुर्व्यसनों के शिकार बने हैं, उनमें लीन रहकर एक क्षण के लिए भी अपनी पत्नी और बच्चों की दुर्दशा को अनुभव नहीं करते, और न करना ही चाहते हैं। जिस पैसे को आप मेहनत करके कमाते हैं, उसी को आप इन बुरी आदतों पर खर्च करते हैं, यह आप नहीं समझते। कदाचित् आप नहीं समझते कि पूँजीवाद की जिस चक्की में आप रात-दिन पिसते हैं, वह किस धातु की है, वह किन स्वेच्छापूर्ण मनोवृत्तियों पर निर्मित हुई है? यदि आप यह समझ पाते तो निश्चय ही आप भी अपने धरातल से ऊपर उठने का प्रयत्न करते। मुझे यह कहने की आज्ञा दीजिए कि मजदूर जहाँ दीन हैं, मोहताज हैं और हृदय कँपा देने वाली दुःखान्त कहानी के पात्र बने हैं, वहाँ यह देखकर मुझे कहना है कि अपनी इस दशा के अपराधी वे स्वयं ही हैं। धनिक स्वार्थी हैं और दम्भी हैं यह कहने मात्र से ही आपका भला नहीं हो सकता। आप उनके स्वार्थों को कुचल दें और दम्भ को तोड़ दें, इसके लिए आपको अपना जीवन बदलना है। जिस स्तर पर आप खड़े हैं, उससे ऊपर उठना है।"

तभी एक ओर से आवाज आई—"इन मिलों को तोड़ दो! इन ऊँची चिमनियों को गिरा दो।"

यह सुनकर रोहिणी ने कहा—"इस नारे का लगाना आसान है लेकिन आपने कभी यह भी सोचा कि इसे कार्य रूप में परिणत करना कितना कठिन है—शायद सर्वथा असम्भव है। मैं कहती हूँ, आपकी यही ईर्ष्या है, यही हीनता है। यह जो आपकी उच्छृंखलता है, इसे छोड़िये और जीवन में आने वाले आँधी-तूफान का सामना करने के योग्य बनिये। तभी आपकी सार्थकता है और इस पाये हुए मनुष्य जीवन की उपयोगिता है।"

रोहिणी बैठ गई। लक्ष्मी ने कहा—"खूब बोलीं रोहिणी बहन! अच्छा बोलीं।"

उसी समय सुरेश ने खड़े होकर सभा के आयोजकों को धन्यवाद दिया और मजदूरों को अपना नैतिक जीवन सुधारने तथा अपना रहन-सहन ठीक करने की बात पर जोर दिया। उसने अपने भाषण का अन्त करते हुए अपनी सहायता देने का वचन दिया और सभा को समाप्त कर दिया।

तभी लक्ष्मी ने कहा—"उठो रोहिणी बहन, चलो घर चलें।"

जैसे अकस्मात् ही रोहिणी का मन किसी से टकरा गया और अस्थिर बन गया। उसी भाव में उसने उठते-उठते कहा—"चलो, चलें।"

लक्ष्मी मुसकराई और हँस पड़ी।

एकाएक ही, रोहिणी जिस नये जीवन में आ गई, दीखा कि वह उसमें पूर्ण रूप से बँध गई। प्रातःकाल दस बजते-बजते वह मिल-एरिया में पहुँच जाती और वहाँ मजदूरों के बच्चों, उनकी माताओं को पढ़ाने और गार्हस्थिक काम सिखाने में लग जाती। वह मजदूरों के घरों में जाती और उनके जीवन तथा रहन-सहन की व्यवस्था करती। उसका घर जैसे अब नाम-मात्र का घर रह गया था। उसके प्रति अब उसका पहले-जैसा ममत्व भी घट गया और संक्षेप में यही कहा जा सकता है कि अब रोहिणी का जीवन बिलकुल बदल गया था।

सप्ताह में एक दिन छुट्टी का रख लिया गया था। आज वही दिन है उसका। घर पर अपने कमरे में बैठी हुई रोहिणी, अकारण ही कुछ अनमनी-सी, कुछ खोई-खोई-सी, कभी किसी किताब को उठाकर देखती, कभी किसी दूसरी वस्तु को। वह यह भी सोचती कि अजय नहीं आया। इधर उसका पत्र भी नहीं आया। जब गया था, तो पत्र दिया कि सकुशल पहुँच गया। और उसी में लिखा था कि मैं जल्दी ही लौट आऊँगा। वह मन-ही-मन सोच रही थी, 'न वह आया है, न आता ही दीखता है।'

तभी एकाएक उसने द्वार पर देखा कि सुरेशबाबू और महेशबाबू के साथ लक्ष्मी जीजी आई हैं।

देखते ही रोहिणी ने कुर्सी से उठकर कहा—"आओ जीजी, आओ!"

उन सबके साथ जीजी ने पास आते-आते पूछा—"किस विचार में लीन थीं रोहिणी बहन! क्या सोच रही थीं तुम?"

रोहिणी ने हठात् मुसकराकर कहा—"कुछ भी नहीं, जीजी!"

सब बैठ गए। रोहिणी भी बैठ गई।

तभी लक्ष्मी ने कहा—"तुमने सुना रोहिणी, मिल-अधिकारी तुम्हारी प्रगति पसन्द नहीं करते। तुम वहाँ जाओ और मजदूरों के बच्चों तथा स्त्रियों को मनुष्यता का पाठ दो, यह उन्हें अच्छा नहीं लगता। इसीसे, उन्होंने पुलिस में तुम्हारा नाम दिया है।"

यह सुनते ही रोहिणी ने महेशबाबू की ओर देखा।

महेशबाबू ने कहा—"यही होना था। वहाँ जिसे भी काम करना था, उसे ऐसा ही पुरस्कार मिलना था। उनके स्वार्थों पर कोई ठेस पहुँचे, यह उन्हें फूटी आँखों भी सहन नहीं हो सकता। यह उनके स्वार्थों के सर्वथा विरुद्ध है।"

यह सुनते ही रोहिणी ने जाने कैसे वेदनापूर्ण स्वर में कहा—"वह फिर क्यों आदर्श का ढोल पीटते हैं। वह क्यों ऐसा ढोंग रचते हैं…।"

महेशबाबू ने कहा—"रोहिणी, आदर्श और है, व्यवहार तथा यथार्थ और है। इस मानव का जो आदर्श है, उसी की पीठ पीछे खड़े होकर तो इस धनिक ने मानव की पीठ में छुरा भोंका है।"

"महेशबाबू," सुरेश ने कहा, "क्या यही सत्य है? मैं देखता हूँ, इसमें सत्य का तनिक भी अंश नहीं। धन की उपादेयता और सार्थकता तो आज सिद्ध हुई है, लेकिन जो आदर्श की परिपाटी है, वह तो न जाने कब से इस मानव ने स्वीकार की हुई है। लगता है कि वह आदि युग से ऐसे ही चली आई है।"

 महेशबाबू ने कहा—"भला यह मानने में किसे आपत्ति है, भाई!

किन्तु जब से इस पैसे की महत्ता बढ़ गई है तभी से तो हमने आदर्श को आहुति दे दी। दुनिया के अधिकांश जन-समूह पर, जिसमें निर्धन ही अधिक हैं, इस छोटे-से धनिक सम्प्रदाय ने अपनी मनमानी की है। इसने सदा अपनी इच्छा पूर्ण की है···।"

उसी समय लक्ष्मी ने रोहिणी की ओर देखकर पूछा—"अजयबाबू का पत्र आया क्या ?"

रोहिणी ने मानो किसी और बात में अटके हुए ही कह दिया—"नहीं।"

महेशबाबू ने कहा—"अच्छा, अब हमें चलना चाहिए।"

तब रोहिणी ने उनकी ओर देखकर कहा—"अभी बैठिए।"

सुबह के निकले हुए हैं। अब तो यों ही तुम्हें देखने और यह समाचार देने चले आए थे।" कहते हुए लक्ष्मी उठ खड़ी हुई। सुरेश और महेशबाबू भी साथ ही चल दिए।

तभी रोहिणी ने सुरेश की ओर देखकर पूछा—"और हाँ, तुमने नहीं बताया कि तुम किस दृष्टि से देखते हो मेरे इस काम को ? क्या तुम भी अच्छा नहीं समझते ?"

उसने कहा—"मैं अच्छा भी समझूँ, तो उससे क्या बनता-बिगड़ता है भाभी ! वैसे बता दूँ कि मैं तो इसे हितकर समझता हूँ कि मजदूर भी ऊपर उठें; मैं इसे हृदय से चाहता हूँ," और फिर उसने कहा, "लेकिन दुःख तो इस बात का है कि मजदूर स्वयं अपने-आप में अहम्मन्य और अकर्मण्य है। आज हमें जिस धनिक वर्ग के प्रति ईर्ष्या है और उसे नष्ट करने की उत्सुकता है तो धन जिस किसी के भी पास जायगा, उसकी नीयत का भी यही रूप होगा। हमारा मध्यवर्गीय समाज, किसान और मजदूरों को दाल बनाकर, आज की तरह आगे भी धनिकों से लड़ता रहेगा। लूट होगी, तो उसका माल अधिक शक्तिशालियों के हाथ जायगा। तब भी, मजदूर जहाँ है, वहीं रहेगा। यदि कुछ माल इसके हाथ लग गया, तो जो मध्यवर्ग है वह धनिक बन जायगा, धनिक मजदूर ! बस, इसी क्रम से तो यह संसार चलेगा। यह संघर्ष भी चलेगा। गाड़ी के जिस पहिये पर यह दुनिया टिकी है, उसका

चक्कर पैसे की दलदल में ऐसे ही फँसा है, भाभी···!

"तो तुम्हारा कहना है, यह व्यर्थ है, सब ?" रोहिणी ने पूछा।

"मैं ऐसा नहीं कहता ! नीयत की बात कहता हूँ। शायद तुमने नहीं सुना मार्क्स का नाम। वह धनिकों के ऐसे ही पीछे पड़ा। लोगों ने उसके सिद्धान्त को पसन्द भी किया। सम्पत्ति के लिए समान बँटवारे की बात को लोगों ने स्वीकार भी किया। किन्तु उसे व्यवहार में कोई भी नहीं लाया। इसीसे मेरा कहना है, कि पवित्र कोई नहीं है ! सभी कुछ चाहते हैं। जो लूट और ठगी चाहते हैं।"

यह सुनकर रोहिणी ने बरबस दूसरी ओर देखा। उसने लक्ष्मी की ओर भी देखा।

सुरेश ने चलते हुए कहा—"अच्छा भाभी, नमस्ते !"

रोहिणी ने उसी प्रकार देखते हुए कहा—"नमस्ते।"

लक्ष्मी ने कहा—"आना रोहिणी।"

रोहिणी ने कहा—"अच्छा।"

सबके चले जाने पर उसी क्षण रोहिणी ने अपनी मन की आँखों से देखा कि जैसे सुरेश उससे बहुत दूर हो गया है। उसकी बातों में अब पहले-जैसी ममता नहीं थी। वह प्रेरणा भी नहीं थी। लगता था कि जैसे वह रोहिणी के स्थान पर किसी और से बात कर रहा था। बरबस इसी समस्या में रोहिणी का मन डूब गया। उसे लगा कि जैसे उसे खड़े होने के लिए कहीं भी किनारा नहीं था। थल कहीं भी दिखाई नहीं देता था।

उसी समय उसने द्वार पर सुना—"नमस्ते, भाभीजी !"

उसने चौंककर कहा—"ओ, बसन्तसिंह, आओ भाई !"

बसन्तसिंह अन्दर आया। वह बैठ गया।

रोहिणी ने पूछा—"भैया कहाँ हैं ? वे दो दिन से नहीं आये हैं ?"

बसन्तसिंह ने कहा—"भैया यहाँ से दूर हैं। मैं वहीं जा रहा हूँ। वैसे आज भैया का मौन-दिवस भी है।"

"कहाँ होंगे अब ?"

"यहाँ से चार कोस की दूरी पर अपनी कुटिया में। चलिये, नाव पर जाना है?"

रोहिणी के मन में आया कि वह भैया के पास जाय। आज बेकार भी है, क्यों न जाकर उनसे मिल ही ले।

वह बसन्तसिंह से बोली—"सच, चलूँ क्या? देर हो जायगी। दूर भी तो बहुत है। अच्छा, चलती हूँ।" कहकर वह खड़ी हो गई। अपने कमरे का ताला बन्द करके वह बाहर निकल आई और बसन्तसिंह के साथ चल दी।

शहर पार करके जब वह नदी पर पहुँची, तो बसन्त ने नाव खोली और रोहिणी को चढ़ाकर गहरे पानी में बढ़ा दी।

उस दिन नदी चढ़ी थी। उसका पानी दूर-दूर तक दिखाई देता था। उस समय चारों ओर नावों के आने-जाने का ताँता लगा था। नाव शीघ्र ही दूसरे किनारे पर जा लगी। जहाँ पेड़ों का घना-सा झुरमुट किनारे पर था वहीं बसन्त ने नाव खड़ी की। नाव एक पेड़ से बाँध दी और रोहिणी को साथ लेकर उसने किनारे के ऊपर की एक सँकरी-सी पगडण्डी पकड़ ली। कुछ दूर जाकर रोहिणी ने देखा कि वह एक कुटिया के सामने खड़ी थी। वह बसन्त के साथ उसके अन्दर गई। देखा, भैया मृगछाला पर आँखें बन्द किये हुए बैठे थे। लगता था कि जैसे वह किसी योगिराज की कुटिया हो।

बसन्त ने कहा—"तुम बैठो भाभी, भैया अभी पूजा करने में लगे हैं। शायद देर लगे अभी। अब चार बजे होंगे। मैं इतने में जंगल में घूम आऊँ और कुछ खाने की वस्तु ले आऊँ।" कहते हुए उसने झोंपड़ी के कोने में से डण्डा उठाया और जंगल में चला गया।

लेकिन वह रोहिणी थी, जो तब भैया के उस नये रूप को देखकर जैसे और भी अधिक भैया के लिए ममतामयी बन गई थी। वह आज तक जिस व्यक्ति के पास हिंसक वृत्ति देखती आई थी, उसी के पास ईश्वर और अपने आध्यात्मिक जीवन के प्रति ऐसी निष्ठा और कर्मण्यता को देखकर लगता था कि वह अपनी समूची पवित्र भावनाओं को समेटे

उसके प्रति श्रद्धायुक्त बन गई थी और उसी की कल्पना में लीन हो गई थी।

तभी भैया ने आँख खोलकर कहा—"कहो रोहिणी!"

सुनते ही रोहिणी ने हाथ जोड़कर भैया को 'नमस्ते' की।

भैया ने कहा—"मैं आज स्वयं ही आता।" और वह खड़ा हो गया।

रोहिणी ने पूछा—"तुम ईश्वर को भी मानते हो भैया?"

यह सुनते ही भैया ने कौतुक-भरी निगाह से रोहिणी की ओर देखा और वह मुसकराया। रोहिणी के प्रश्न के मर्म को समझते हुए उसने कहा—"रोहिणी बहन, जो कसाई नित्य गऊओं को मारता है, बेचता है, वह भी मसजिद में जाकर नमाज पढ़ता है और अल्लाह से अपने लिए दुआ माँगता है। व्यवसाय और है, जीवन का लक्ष्य और है। वैसे भी मैं नास्तिक न होकर ईश्वरवादी हूँ।"

"लेकिन आप जिस ईश्वर को मानते और पूजते हैं उसे समझ भी पाते हैं?" रोहिणी ने फिर पूछा।

यह सुनकर भैया ने सामने के हरे वन की ओर देखा और उसी ओर देखते हुए वह बोला—"बहन, तुम जो-कुछ देखती हो, क्या ईश्वर को समझने के लिए इतना-भर पर्याप्त नहीं है। मैं इससे आगे कुछ नहीं देखता। मैं दुनिया से बाहर भी नहीं देखता।"

रोहिणी खड़ी हो गई। वह भैया के पीछे-पीछे ही झोंपड़ी के द्वार पर पहुँच गई। वहीं पर भैया ने फिर कहा—"इस विश्व के रोदन और नर्तन में ईश्वरीय लीला के अतिरिक्त मैं और कुछ नहीं देखता रोहिणी बहन!"

यह सुनकर एकाएक वेदना के साथ रोहिणी ने कहा—"जाने कैसा है आपका ईश्वर! यह पाप···! यह अनाचार···!"

भैया ने रोहिणी की उस वेदनापूर्ण उत्तेजना को लक्ष्य करके कहा—"आओ, रोहिणी, आगे चलें! उस ओर चलें।" कहते हुए भैया नदी की ओर बढ़ चला। तभी रास्ते में उसने कहा—"इस ईश्वर की सृष्टि में तुम समान सत्ता नहीं पाओगी, रोहिणी! यहाँ सब ओर भेद-उपभेद ही पाओगी।"

"तब क्यों मजदूरों और दलितों के उद्धार के राग अलापते हो। उन पर जो हो रहा है और होता है, उसे निर्बाध रूप से क्यों नहीं होने देते ?"

यह सुनकर भैया हँसा। उसने सामने देखते हुए कहा—"लगता है, तुम चित्र का एक ही पहलू देखना पसन्द करती हो, जो चित्र का दूसरा पहलू है उसे नहीं देखना चाहतीं। तुम जिन मजदूरों और दलितों की बात कहती हो, बताओ वह मान्य कहाँ हैं। जब यह संघर्ष नहीं होगा तो जीवन नहीं होगा। हमारे शरीर में जो नित-नित की व्याधियों का दूषित रक्त एकत्र होगा, जो सड़न से परिपूर्ण होगा, उसको काटकर और शरीर से दूर करके ही हमें सुख और चैन मिलेगा और वह भी स्थायी नहीं होगा। मानव-देह का स्वभाव ही यह है कि व्याधि उत्पन्न करे। जो हमारी कमियों के कारण ही यह स्थिति पैदा करे। किन्तु जब देह है और व्याधि है, तो उपचार भी है। ऐसे ही तो इस समाज की व्यवस्था चलती है। जो विकृति पैदा होती है, वह दूर की जाती है, दबाई जाती है।"

"भैया···!" मानो किसी एक बात पर रुकते हुए रोहिणी ने कहा, "मैंने कई बार चाहा कि अपने मन की शान्ति के लिए मैं अपने से जितनी लड़ी हूँ उससे भी अधिक लड़ूँ। पर मैं उसी तरह अशान्त हूँ। मैं वैसे ही अब अव्यवस्थित हूँ।"

तभी भैया ने हाथ से संकेत करते हुए कहा—"अच्छा देखो वह, दीखा।"

हठात्, रोहिणी ने उसी ओर देखा। देखते ही उसने एक पैर पीछे हटकर कहा—"भैया, साँप !"

"हाँ, साँप ! डरी क्यों ? मेरे हाथ में डण्डा है।"

"भैया, काला साँप है। अरे, इतना बड़ा है। और यह क्या, इसके मुँह में क्या है ? वह चीख रहा है। कोई चीज पकड़ ली है इसने।"

तब भैया निर्विरोध और निःशंक भाव से साँप से कुछ ही फासले पर खड़ा हो गया। साँप गर्दन उठाये उन दोनों की ओर देख रहा था।

वह अपनी दृष्टि तीव्र किये हुए था। उधर निर्निमेष दृष्टि से देखते हुए भैया ने कहा—"यह मेंढक खा रहा है।"

"और चीख रहा है मेंढक तो!"

"हाँ, अब चीखेगा ही! मर जो रहा है! वह अब काल के गाल में जो जा पड़ा है। बस, कुछ ही शेष रह गया है, जो अभी अवशेष हुआ जाता है। देखती हो, साँप ने आधा चूस लिया है उसे!"

रोहिणी ने नितान्त भयभीत मुद्रा में भैया का कन्धा पकड़ लिया। उसने तब अपना एक पैर और पीछे को रख लिया था।

भैया ने कहा—"डरो मत रोहिणी, साँप अपने शिकार को खाने में लगा है। अब इसका पेट भी भर गया है," यह कहते हुए उसने फिर रोहिणी की ओर देखकर कहा, "समझीं न तुम, यही हमारे धनिकों की परिभाषा है। उनकी ठीक ऐसी ही रूपरेखा है। वे मजदूरों को ऐसे ही चूसते हैं।"

इतने में मेंढक का चीखना बन्द हो गया। वहाँ फिर सन्नाटा छा गया। साँप भी एक ओर को चल दिया। तब भैया नदी के किनारे गया। वहीं एक जगह पानी भरा था। वहाँ हज़ारों छोटी-छोटी मछलियों का जमघट था। उनको एक-दूसरे के ऊपर कूदते देखकर भैया ने कहा—"यह भी एक-दूसरे को खाकर अपना पेट भरती हैं। दुनिया के जितने जीव-जन्तु हैं मनुष्य-सहित, पेट भरने के लिए सभी की यही एक प्रणाली है। एक-दूसरे को खाना और अपना पेट भरना ही सब की लगी-बँधी कहानी है। निर्बल सदा से ही, बलवान की खुराक बना रहा है। वही पेट भरने का साधन रहा है, रोहिणी!"

कदाचित् और समय होता तो निश्चय ही रोहिणी को यह स्थान रोचक और सुहावना लगता। किन्तु उस समय तो भैया की बातों में लग जाने और जो देखा था उसी के चिन्तन में डूब जाने के कारण प्रकृति का वह विराट् दर्शन और नदी की चंचल तरंगों का वह अपूर्व नर्तन उसे एक क्षण को भी नहीं रुचा।

तभी उसे चुपचाप देखकर भैया ने पूछा—"क्या सोच रही हो, रोहिणी? क्या देख रही हो तुम?"

तब रोहिणी ने जैसे कहीं से गिरकर कहा—"कुछ नहीं! कुछ नहीं!"

"नहीं कुछ तो होगा ही? शायद सोचती हो कि भैया भी खूब है जो इस दुनिया की रीति भी नहीं जानता, क्यों?"

"न भैया! ऐसा कहाँ सोच सकती हूँ! अपने को तो मैं अब आपकी शिष्या मानती हूँ।"

"पर मैं कहता हूँ, तुममें जो आग है, जो टीस है, दीखता है तुम स्वयं उसमें फँस गई हो। वह उपादेय कहाँ है? हमारा यह काम नहीं है। सेवक को इतना समझना भी नहीं है। जो हमें करना है, करें।"

"भैया, तुम दूसरी बात लिये हो। मैं कहती हूँ, क्या तुम्हारा मध्य-वर्गीय समाज इन मजदूरों का भला करेगा। स्वार्थ यह भी रखता है अपने। मैं आज इसी में उलझी हूँ। कल जब क्रान्ति होगी, धन की लूट होगी और उसकी हिस्सा-बाँट होगी, तब इन बेचारे मजदूरों की क्या स्थिति होगी? बताओ, यह क्या सराहनीय होगी। मैं कहती हूँ, इनकी तब भी यही दशा होगी।"

यह सुनकर भैया को लगा कि कोई गुत्थी है रोहिणी में। जिसे यह अभी तक नहीं सुलझा सकी है। गहरी दृष्टि से नदी की ओर देखते हुए उसने कहा—"रोहिणी बहन, शायद तुमने समझा है कि हम स्वार्थी हैं, दग़ाबाज़ हैं। पर तुम कैसे यह समझती हो कि मजदूर लड़ना नहीं जानता। उसे समझाओ तो, उसमें जो शक्ति है, उसे उसका ज्ञान कराओ तो। तुम जिन मध्य वित्तों की बात कहती हो, निःसन्देह, भूख इनकी भी है कुछ; उन्हें भी कुछ पाने की इच्छा है। जो आज धनिक हैं, कल वही मध्यवर्गी थे। यही तो क्रान्ति है। समाज जब अधिक स्वार्थी बनता है, जब वह अधिक पैसे की ओर दौड़ता है, तब ही आती है क्रान्ति। यह प्रकृति की ही प्रेरणा है।"

रोहिणी ने जैसे तब भी अपनी बात पर टिके हुए ही कहा—"इन निर्धनों को, इन भूखों को और इन कंगालों को आज तो क्या कल भी कुछ न मिल पायगा भैया!"

तब भैया ने बड़े निर्मल स्वर में कहा—"निरन्तर की जाने वाली

पुकार ईश्वर को भी जगा देती है बहन ! यदि मजदूर अपनी माँगों पर केन्द्रित हो जायं तो निश्चय ही, उनकी आवाज़ धनिकों की शांति को भंग कर देगी।"

"वे खून करने पर उतारू हो जायंगे भैया! वे मजदूरों को कुचल देंगे।"

भैया हँसा—"नियति का यही तो नियम है, रोहिणी ! दोनों ही मरेंगे, दोनों ही कुचले जायंगे। तुम जिस जीवन-मरण की बात में उलझी हो, वे तब ही तो जीवन समझेंगे।"

"भैया···!"

"बहन जीवन पाने के लिए मरना पहले पड़ता है, कदाचित् तुम इस अमर सिद्धान्त को नहीं समझतीं।"

"लेकिन यह कितना भयानक है भैया ! मैं इस सिद्धान्त को नहीं स्वीकार करती।"

भैया ने हँसकर कहा—"जो जाति इस सिद्धान्त को नहीं मानती, वह इस दुनिया में कभी भी जीवित नहीं रह सकती। वह आगे भी नहीं बढ़ सकती।"

रोहिणी ने उत्तेजित होकर कहा—"ओह, तुम रहस्यमय हो भैया ! देखते तो हो कि इस निरन्तर के खून-खच्चर ने, हमारी इस भेड़िया-धसान-वृत्ति ने क्या कभी मानव को चैन लेने दिया है। सब मानव सदा से एक-दूसरे के दुश्मन रहे हैं। एक ने सदा ही दूसरे का गला घोटा है। हमने सदा ही खून में अपने हाथ रँगे हैं। बताओ, क्या यही हमारी मनुष्यता है। क्या इसी का नाम है जीवन !" कहते-कहते रोहिणी बर-बस रुक गई। उसका गला भर आया।

यह देखकर भैया चुप हो गया, यह नहीं चाहता था कि और कुछ कहकर रोहिणी के मन को क्षुभित करे। उसने रोहिणी के सिर पर हाथ रखा और मधुर कण्ठ से कहा—"बहन, मानव की इस प्रवृत्ति ने इसे कितना विकसित और प्रोत्साहित किया है शायद यह नहीं समझा तुमने ! शान्तिमय आदमी जीवित नहीं रहता। यही कारण है कि व्यक्ति निरन्तर जीवन से लड़ा है। यही इसकी महत्ता है। इसी आधार पर तो इसने देवत्व तक प्राप्त किया है। तुम जिस रक्त-मांस से डरती

हो, आदमी इसी से खेलता आया है सदा से रोहिणी !"

तब रोहिणी ने इसका उत्तर नहीं दिया। लगता था कि वह अब भी अपनी बात पर थी। अन्धेरा बढ़ता जा रहा था। उसी किनारे पर चलते-चलते नाव के पास पहुँचकर रोहिणी को उसमें चढ़ाकर भैया स्वयं भी उसमें बैठ गया और पतवार चलाने लगा। हवा का झोंका खाकर रोहिणी की साड़ी का पल्ला सिर से खिसक गया। उसके जूड़े में से कुछ बालों ने निकलकर हवा से खेलना भी आरम्भ कर दिया। रोहिणी का मन कुछ प्रसन्न हुआ। उसने भैया की ओर देखकर कहा—"तुम ऐसी ही किसी सन्ध्या में एक दिन मुझे श्मशान भी पहुँचा दोगे भैया !"

भैया यह सुनकर जोर का ठहाका मारकर हँस पड़ा।

तभी रोहिणी ने बड़े मधुर कण्ठ से गाना आरम्भ किया: :

'जीवन है, संग्राम बन्दे जीवन है, संग्राम।'

उसी समय भैया ने टोककर पूछा—"तुमने अब अनुभव किया जीवन कुछ ?

यह सुनकर रोहिणी ने नदी की ओर मुँह करते हुए कहा—"सच भैया, मैं नहीं समझती इस जीवन का मर्म।"

भैया ने कहा—"यह समझना आसान नहीं है।"

रोहिणी जाने कैसी निराश और जिज्ञासा-भरी दृष्टि के साथ नदी की उठती और बैठती हुई लहरों को देखने लगी थी, जिनमें वह अपने-आप भी लीन हो गई थी।

रोहिणी जानती थी कि अजय आयगा, सो आ गया वह। जब आया तो उसने आते ही रोहिणी से कहा—"अब से मैं तुम्हारा मेहमान नहीं हूँ भाभी ! मैं यहाँ काम करूँगा।"

भाभी ने मीठी और उल्लास-भरी हँसी के साथ कहा—"भला तुम

रह सकोगे मेहमान। बताओ तो क्या काम करोगे ?"

"नौकरी जो मुझे यहाँ मिल गई है," अजय ने बताया, "उधर त मेरे पास होने का समाचार मिला और इधर एक दिन अकस्मात् ही अखबार में देखा, यहाँ एक बैंक की ब्रांच खुली है। उसी के लिए मैने-जर की आवश्यकता है। बैंक की कार्य-प्रणाली का अध्ययन मैंने किया ही है। बस अर्जी भेज दी। भाग्य की बात मेरी वह अर्जी स्वीकार भ हो गई और मैं चुन लिया गया। दो सौ रुपये मासिक मिलेगा।" कहते हुए वह हँस दिया।

रोहिणी ने कहा—"ओह, तो यों कहो कि अब आप मैनेजर बनकर आ गए हैं इस घर पर।" कहते हुए उसने दूसरी ओर मुँह करके पुकारा, "अरी रामू की माँ, चौखट पर पानी तो डाल ! देख अजयबाबू आये हैं, जो अब बड़े आदमी बन गए हैं।"

यह सुनकर अजय ने मुँह बनाकर कहा—"तो तुम हँसी करने चली हो भाभी ! लगता है तुम्हें विश्वास नहीं है। लो, देख लो यह है मेरा नियुक्ति-पत्र।" और उसने कोट की जेब में से पत्र निकालकर रोहिणी के आँचल में डाल दिया।

रोहिणी ने कहा—"मैं इतनी अंग्रेजी नहीं पढ़ी, रखो अपना पत्र। जब तुम कहते हो तो ठीक ही होगा ? चलो तुम आ गए। यह अच्छा ही हुआ। पानी में आग लँगा गए थे वैसे तो। जो आज दिखाई दिये यह क्या कम है। नौकरी की बात न होती तो क्या आ पाते तुम ? ना, तुम नहीं आते। पत्र दिया था एक, जैसे रस्म पूरी की थी, कि आ गया हूँ—ठीक आ गया हूँ," कहते हुए रोहिणी ने झटके से अजय की ओर देखकर फिर कहा, "वहाँ जाकर तुमने सोचा भी एक दिन कि मेरी एक और भी भाभी है, जो सर्वथा निराश्रित और एकाकी है, वह मेरी प्रतीक्षा करती होगी। पर तुम्हारी बला से कोई रोये या मरे !" कहते हुए रोहिणी का कण्ठ अवरुद्ध हो गया। आँखें भर आईं और उसने अजय की ओर से मुँह फेर लिया।

यह देख-सुनकर अजय ने अपने को नितान्त असहाय-सा अनुभव करते हुए कहा—"भाभी ! सच, तुम मेरी कठिनाई नहीं देखती हो।

बस, तुम अपनी ओर ही देखती हो। तुम्हें अजय ही ऐसा मिला है जिसे जब चाहे डाट-फटकार लो। अभी आये देर नहीं हुई कि मुझे वही आँसू, वही डाट-फटकार देखने और सुनने को मिले। आदत जो ठहरी, उससे क्या आसानी से छूट जाओगी, तुम ?" कहते हुए वह हँसा और ठीक रोहिणी के सामने खड़ा होकर बोला, "अच्छा, अब हँस पड़ो। कुछ खाने-पीने को दो।"

रोहिणी बरबस हँसती हुई बोली—"सच, तुम पर गुस्सा आता है, अजयबाबू ! तुम इसी योग्य हो···!"

यह सुनते ही अजय ठहाका मारकर हँस पड़ा। वह बोला—"बस, यही सब सुनना तो इस अजय के भाग्य में लिखा है। वहाँ भी क्या चैन से रहा है यह ! खन्दक से निकला तो खाई में ! देखता हूँ, मुझे दो भाभी मिली हैं, जिन्होंने बरबस ही, पुत्र से अधिक मुझे अपनाया है, प्यार किया है और अपनी झिड़कियों का साया मेरे सिर पर रखा है। सच, मुझे इन दोनों भाभियों ने दबा दिया है।"

रोहिणी उसका बिस्तर खोलने में लगी थी। बात सुनकर वह आँखें तरेरकर बोली—"यह दुनिया है, जिसकी सीमा भी है कुछ अजयबाबू ?"

"सो देखता तो हूँ मैं।"

"जी हाँ, देख लिया तुमने।" उसने बिस्तर खोल दिया। सब चीजों को अलग-अलग रख दिया।

अजय ने चाबी फेंकते हुए कहा—"भाभी, बक्स खोलकर उसमें से अपनी चीजें निकाल लो।"

रोहिणी ने ताली उठा ली और बक्स खोलती हुई बोली—"क्या-क्या है मेरी चीज ?" और उसने ऊपर ही कागज में लिपटी रखी साड़ी उठा ली।

अजय ने कहा—"यह तुम्हारे लिए भाभी ने भेजी है।"

रोहिणी ने साड़ी देखकर कहा—"भला इतनी कीमती साड़ी मैं कब पहनती हूँ। तुम्हीं स्वयं लाये हो और कहते हो कि भाभी ने दी है। यह जरूर सौ रुपये से ऊपर की होगी।"

"अच्छा, अब थैला देख लो। उसमें खजला और सोहन हलवा है, जो तुम्हें बहुत पसन्द है।"

इतने में छत पर से रामू की माँ उतर आई। वह छत साफ कर रही थी। उसने आते ही अजय को देखकर कहा—"आ गए अजय भैया!"

अजय ने कहा—"हाँ, आ गया। राम-राम रामू की माँ।"

"जीते रहो, बड़ी उम्र हो," रामू की माँ ने कहा।

"अरी तूने देखा भी रामू की माँ, देख! यह साड़ी ले आए हैं अजयबाबू! जाने डेढ़ सौ की है, जाने दो सौ की। और अब यहाँ नौकर हो गए हैं। जा, कह तो आ लच्मी जीजी से कि आ गए हैं तुम्हारे अजयबाबू। जो नित ही पूछती थी कि अभी नहीं आये क्या? क्यों नहीं आये? पत्र भी नहीं दे पाए। वह कहती तो थी—आदमी की क्या बात, बात करे तो मीठी-मीठी, जैसे मिश्री भी मात! और जो आँखें फेर लीं तो क्या मजाल जो नाम भी ले। रंग बदलने में गिरगिट का तो नाम है ही, असली में आदमी उससे भी बढ़ गया है। तो कभी कुछ और कभी कुछ! जिसकी कोई थाह नहीं है।"

रामू की माँ चली गई। अजय कपड़े उतारने में लग गया। तभी उसने पूछा—"भैया आते हैं क्या इन दिनों?"

रोहिणी ने कहा—"आते तो हैं।"

"सुना है तुम भी मिल-एरिया में पढ़ाने लगी हो और पुलिस भी तुम्हारे पीछे लगी है।"

रोहिणी चुप रही।

अजय ने फिर पूछा—"सुरेशबाबू आते हैं या नहीं?"

"हाँ, कभी-कभी आते तो हैं" कहती हुई रोहिणी दूसरी ओर जाती-जाती रुक गई और बोली, "मैंने सुरेशबाबू से कह दिया है कि वह बैंक से अपने रुपये उठा लें। मैं उन्हें नहीं लूँगी।"

"हाँ, तो यह हुई नई बात। और महेशबाबू का क्या हाल है? उन्होंने और कोई काम किया है क्या इन दिनों, या वही लेख और किताबें लिखने में ही लगे हैं।"

रोहिणी ने कहा—"वही।"

"महेशबाबू को पत्नी भी अच्छी मिली हैं। वह योग्य और समझदार हैं।"

रोहिणी ने कहा—"स्नान कर लो। दाल बन गई है, अब रोटी बनानी बाकी है।"

"हाँ, पहले स्नान करूँगा और फिर खा-पीकर सो जाऊँगा। रातभर का जगा हूँ।"

रोहिणी ने कहा—"आजकल मेरा भी कोई ठीक ठिकाना नहीं है। रामू की माँ से कह दिया है कि अपना खाना बना लिया कर। कभी मैं भी बैठ गई और खाने लगी उसकी रोटियाँ। इस समय तक मैं यहाँ नहीं रहती, कभी की चली जाती। दस बजे जाती हूँ और शाम के चार-पाँच बजे आती हूँ। आज नहीं जाऊँगी। एक अध्यापिका और रख ली है। वही आज मेरा भी काम कर लेगी।"

अजय ने कहा—"तुम दुर्बल-सी दीखती हो भाभी!"

"अच्छा, स्नान करो तुम। मैं रसोई में जाती हूँ।" रोहिणी वहाँ से चली गई।

तभी अजय को याद आया और तुरन्त ही बक्स से एक छोटी-सी पिटारी निकालकर, वह रसोईघर के द्वार पर जाकर बोला—"और तुमने यह चूड़ियाँ भी देखीं भाभी? वहाँ की मशहूर हैं ये चूड़ियाँ।"

रोहिणी ने अपने नंगे हाथों की ओर देखकर कहा—"बस, तुम्हारे हाथ में तो पैसा हो, फिर क्या सही-सलामत रह जायगा वह।"

"और यह सिन्दूर की डिबिया। सच, बड़ी सुन्दर है यह।"

तब रोहिणी ने डिबिया देखने के साथ, अजय की ओर भी देखा, जो सचमुच बच्चे-सा भोला और कोमल बना खड़ा था। यह देखकर रोहिणी के होठों पर मुसकराहट दौड़ गई और वह अजय की ओर देखकर बोली—"दीखता है, तुम तो कुछ भी नहीं जानते, अजयबाबू! क्या तुम्हारे समाज की रीति है, हम सब किस व्यवस्था पर चलते आए हैं, तुम उसे नहीं समझते। जानते हो, मैं विधवा हूँ। यह सिन्दूर मेरे लिए नहीं, सुहागिन के लिए है।"

यह सुनते-सुनते भी अजय ने सिन्दूरदानी का ढक्कन खोल लिया। उसमें से कुछ सिन्दूर अपनी उँगली पर लेकर वह रोहिणी के निकट आकर जाने किस सहृदयता और भावुकता से भरकर बोला—"ऊँह ! मैं समाज को नहीं मानता। मैं उसकी स्थिति को भी स्वीकार नहीं करता। भला, यह भी कोई बात है। तुम यह सिन्दूर देखो—इसकी सुन्दरता देखो भाभी ! सच, देखो। और लाओ इधर करो न सिर, अपनी माँग उसमें कैसा सुहायगा यह सिन्दूर !"

भाभी ने जाने कैसे भाव से अजय की ओर देखा। लगा, तब उससे कुछ कहते भी नहीं बना। और अजय सचमुच ही अबोध बच्चे के समान अपनी भाभी की माँग में सिन्दूर भरने के लिए उत्सुक और अधीर हो गया था। इससे पूर्व कि रोहिणी कुछ कहे उसने अपनी उँगली पर लगा सिन्दूर अपनी भाभी की माँग में भर दिया। जाने कैसे मन से, जाने कैसे चाव से। भाभी की माँग में सिन्दूर को पूरकर उसने नितान्त दीन और याचक की तरह भाभी की उन गहरी हो आई आँखों की ओर देखकर कहा—"सच भाभी, मैं यह बड़े मन से लाया था। मैं जाने अपने हृदय की किस प्रेरणावश इसे खरीद लाया था। मैं जब अपनी बड़ी भाभी की माँग में सिन्दूर देखता, तभी मैं तुम्हारी इस सूनी माँग की बात मन-ही-मन सोचता था। देखती तो हो, मैं जैसा उस भाभी का हूँ वैसा तुम्हारा भी हूँ। वैसा ही सेवक और दास।"

तब रोहिणी ने चाहा कि वह सिन्दूर पोंछ दे और अजय से कह दे, 'क्या बच्चों-जैसा काम किया है, तुमने !' लेकिन उस समय रोहिणी ने इतना भी नहीं कहा। अजय जिस विनीत भाव से उसके सामने खड़ा था, और अपना अपराध भी स्वीकार कर चुका था, उसी के प्रति वह नितान्त ममता और सदय भाव लेकर आँखों से हँसकर बोली—"अच्छा, अच्छा, तुम खुश रहो, मुझे इसी में खुशी है। कोई कहेगा, तो कह दूँगी यह अजयबाबू की कार-गुज़ारी है बस ! पर ऐसा निभता थोड़े ही है। ऐसी भावुकता सुनी जाती है, देखी नहीं जाती। जिस

 रोहिणी का सुहाग-दीप बुझ गया, माँग का सिन्दूर पुछ गया, उसी के

लिए अब ऐसी भरी माँग अच्छी थोड़े ही लगती है। हमारे समाज की ऐसी ही नीति है अजयबाबू! अशुभ और उपेक्षणीय नहीं है।"

अजय ने फिर भी अपनी बात को आगे बढ़ाते हुए कहा—"यह बहुत सुन्दर चूड़ियाँ हैं भाभी, इन्हें भी पहन लो।"

भाभी ने हँसकर कहा—"पहन लूँगी।"

"तो अभी पहन लो न!"

यह सुनकर भाभी ने ऊपर सिर उठाकर कहा—"कहती तो हूँ, पहन लूँगी।"

अजय वहाँ से हटता हुआ बोला—"और साड़ी भी पहनना।"

भाभी ने वहीं चौके में बैठे-बैठे पूछा—"और तब?"

"तब कहीं घूमने चलेंगे भाभी! भैया के पास चलेंगे।" कहते हुए अजय कमरे में चला गया। उसे स्नान करना था, किन्तु उसे भूलकर वह यों ही बैठ गया और अपने-आप बोला—'यह है नारी का जीवन—कितना हीन और अपंग! जो पुरुष की इच्छा और आकांक्षा पर ही फलता-फूलता है। भला, बात है कुछ। पति मर गया है, तो स्त्री चूड़ियाँ नहीं पहनेगी, माँग में सिन्दूर नहीं भरेगी। भला क्यों? इसलिए कि वह विधवा है—पति-विहीना है वह नारी। हाय! यह कैसी विडम्बना है। जाने किस तर्क की कसौटी पर और किस विवेक-बुद्धि पर निर्धारित की गई है यह व्यवस्था। समाज ने नारी में जो पाप देखा है, जो सन्देह देखा है, वह तो यह है। वह समाज का है। उसका हृदय सदा की तरह आज भी इस नारी के प्रति सन्देह से भरा है। इसी कारण तो नारी उसकी प्रतिक्रिया है। पाप क्या है, अनैतिकता क्या है, इसका पाठ तो पुरुष ने ही इस नारी को पढ़ाया है। अन्यथा नारी तो माँ है। इसने माँ बनना ही चाहा है।'

तभी रोहिणी कमरे में आई। वह अजय को बैठे देखकर बोली—"अभी बैठे ही हो। स्नान क्यों नहीं करते?"

लेकिन उस समय अजय के मन में जो बात थी, जो टीस थी, जो तड़पन थी वह अब विद्रोह करना चाह रही थी। उसने रोहिणी को देखकर पूछा—"तो आज चलोगी न, भाभी!"

इतने में भाभी समझ गई कि यह किसी बात में अटका हुआ है। वह कदाचित् चूड़ियों और सिन्दूर की बात में ही उलझा बैठा है। इसीसे उसने कहा—"कहा तो है, चलूँगी।"

"माँग में सिन्दूर भरकर, चूड़ियाँ और साड़ी पहनकर ?"

तब रोहिणी मुसकराई और हँसी।

यह देखकर अजय ने कहा—"यह सब मैंने पहले नहीं खरीदा था भाभी ! अभी-अभी खरीदा है। जो सचमुच बड़े मन से और चाव से खरीदा है।" उसने कहा, "किन्तु, दीखता यही है कि तुम्हें यह सब नहीं रुचा। तुम्हें यह भला नहीं लगा। पर मैं तो कहता हूँ, सत्य यह नहीं है, वह और है। वह तो तुम्हारे हृदय में छिपा है, जो अजर और अमर है; भला, तुम उसे क्यों नहीं देखती हो। तुम पग-पग पर दुनिया की बताई लीक पर चलती हो। उसी पर बढ़ी जाती हो। लेकिन मुझे तो याद है, बचपन में जिस भाभी का दूध पीता था, वैसी ही जो तुम्हारी छाती है, मुझे अपने लिए उनमें भी दूध दिखाई देता है। तुम्हारे हृदय के अन्दर जो अमृत का घड़ा भरा हुआ है, वह तुम्हें विधि ने पुरस्कार में दिया है। इसी से तो तुम्हें नारी का पद मिला है।" कहते हुए अजय का स्वर भारी हो गया और वह चुप हो गया।

यह देख-सुनकर तब नितान्त प्रताड़ित और द्रवित-सी होकर रोहिणी ने अजय के सिर को अपनी छाती से लगाते हुए कहा—"अच्छा, अच्छा, अधीर मत बनो अजयबाबू ! मैं चलूँगी, चूड़ियाँ पहनकर और माँग में सिन्दूर भरकर। बस, अब उठो तुम; स्नान करो तुम।"

यह सुनकर अजय उठ ही रहा था कि तभी महेशबाबू आ गए। देखते ही अजय ने कहा—"नमस्कार महेशबाबू, आइये !"

महेशबाबू आये और बैठ गए।

रोहिणी ने पूछा—"जीजी नहीं आईं ?"

"वह खाना बना रही हैं," और उन्होंने अजय की ओर देखकर कहा, "आप आ गए, खूब ! यही चाह थी मेरी।"

रोहिणी ने कहा—"अब तो यहाँ रहेंगे ही। एक काम मिला है,

"हाँ अभी सुना तो है रामू की माँ से। कहाँ मिला है ?"

"एक नये बैंक की ब्रांच खुली है, उसकी मैनेजरी।"

"चलो चाहिए कुछ। फिर तो और भी काम मिलेंगे।"

अजय ने कहा—"हाँ रोटी खाने के लिए तो आधार चाहिए ही कुछ।"

"हाँ भाई, रोटियों का प्रश्न कठिन है। इसकी चिन्ता बड़ी है। पत्र भी नहीं लिखा।"

अजय ने कहा—"सोचा था, लौटना तो है ही। पत्र क्या लिखूँ ?"

यह सुनकर महेशबाबू हँस पड़े। उन्होंने कहा—"अच्छा अब आप स्नान करें, भोजन करें। हम फिर आयंगे और कहीं घूमने चलेंगे।"

अजय ने पूछा—"सुरेशबाबू प्रसन्न हैं ? मिलते हैं क्या ?"

महेशबाबू ने चलने के लिए उठते हुए कहा—"हाँ, वह प्रसन्न हैं, मिलते भी हैं," उन्होंने फिर कहा, "परन्तु सुरेशबाबू और हम पास-पास होकर भी बहुत दूर-दूर खड़े हैं। वह धनिक हैं, हम निर्धन; भला इसमें वह कहाँ समानता देखते हैं। वैसे भले हैं, मिलनसार हैं। अभी तो जैसे खींच-तान करके पुरानी रीति को ही निभाये जाते हैं।"

"आएं या मिलें तो कहियेगा : अजय आ गया है।" अजय ने कहा।

"हाँ हाँ, शायद आज ही आ जायं। कल शाम मिले थे, तो कह गए थे। अब वह अपना काम देखते हैं और उसी में अपना अधिकांश समय देते हैं। अच्छा, नमस्ते।"

अजय ने कहा—"नमस्ते।"

महेशबाबू गये तो अजय स्नान करने चला गया। इतने में रोहिणी ने खाना बनाकर अजय के लिए परोस दिया। स्नान करके जब अजय ने खाना खा लिया तो वह चारपाई पर जा पड़ा। जब स्वयं खाकर और रामू की माँ को खिलाकर रोहिणी कमरे में गई तो अजय को देखकर बोली—"सोओगे नहीं क्या ?"

"हाँ भाभी ! एक घण्टा सोना चाहता हूँ। तुम जगा देना।"

रोहिणी दूसरी तरफ चली गई। वह भी खाट पर पड़ गई। ऐसा

लगता था कि अन्य दिनों की अपेक्षा वह प्रसन्न थी और सुखी थी।

अजयबाबू को सोये कदाचित् दो घण्टे के लगभग समय हो गया था। इस बीच रोहिणी कुछ पढ़ चुकी थी और सो भी चुकी थी। वह अब जाग रही थी कि लक्ष्मी जीजी घर के आँगन में आकर खड़ी हो गईं। उनके पीछे महेशबाबू और सुरेशबाबू भी थे। लक्ष्मी उसी समय रोहिणी के पास आ गई। यह आते ही बोली—"कहाँ हैं अजयबाबू?"

रोहिणी उठ खड़ी हुई और सबको साथ लेकर अजय के कमरे में चली गई। अजय खुर्राटे भर रहा था। रोहिणी ने पुकारा—"अजय-बाबू···!"

अजय ने आँखें खोलीं, सबको वहाँ खड़े देखकर उसने अँगड़ाई ली और बैठकर लक्ष्मी को नमस्ते की।

सुरेश ने कहा—"आ गए आप! नमस्ते।"

"ओह, सुरेशबाबू नमस्ते।" कहते हुए उसने सुरेश से हाथ मिलाया।

महेशबाबू ने कहा—"अब बैठेंगे नहीं। शाम हो गई है, कहीं घूमने चलेंगे।"

"पर कुछ खाओ तो," अजय ने रोहिणी की ओर देखकर कहा, "भाभी, इन्हें कुछ खिलाओ। और तुम भी कपड़े पहन आओ।"

लक्ष्मी ने कहा—"अभी तो सोकर उठे हो, पहले मुँह-हाथ धो आओ। और क्या लाये हो तुम हमारे लिए? यही क्या कम है कि तुम्हीं आ गए। देखती हूँ, जाने कैसे आ गए हो?"

उठते हुए अजय ने कहा—"तुम तो लगे हाथ झाड़ती भी जाती हो भाभी! पड़े हुए देर नहीं हुई कि अपनी आदत पर उतर आई हो।" कहते हुए अजय मुँह-हाथ धोने चला गया। उसी के पीछे रोहिणी ने अजय द्वारा लाई हुई मिठाई को उन लोगों के सामने रखा।

लक्ष्मी ने रोहिणी की ओर देखकर कहा—"अरी, तू भी तो खा यह मिठाई।"

रोहिणी ने कहा—"तुम खाओ।" इतने में मैं अजयबाबू की लाई हुई साड़ी पहन आऊँ।"

यह सुनकर लक्ष्मी ने उसी समय अजय की ओर देखा। उसने पूछा—"रोहिणी के लिए क्या-क्या लाये हो अजयबाबू! बताओ तो!"

अजय ने कुछ उत्तर नहीं दिया। वह मुसकरा-भर दिया।

साड़ी पहनकर, हाथों में चूड़ियाँ डालकर और माँग से सिन्दूर भरकर रोहिणी ने शीशे की ओर देखा। जिस मन से और जिस भाव से उसने अपना मुँह देखा, सच उस प्रकार उसने बहुत दिन से नहीं देखा था। रमाकान्त के बाद ऐसा भाव उसमें एक दिन भी नहीं आया था। अपने गालों की लाली की ओर उसका ध्यान एक दिन भी नहीं गया था। आज उसी ओर देखा। जो रोहिणी अपने में निरन्तर की क्षीणता को अनुभव कर चली थी, जो अपने को बुढ़ापे और बुजुर्गी की ओर जाते देखती थी, अब देखा उसने वह बुढ़िया कहाँ है, वह अभी तरुणी है। तरुणाई की दहलीज पर खड़ी है। उसकी जो पहली आँखें थीं, वही अब भी दीखती हैं। उनमें जो आकुलता और मादकता थी, वह अब भी ज्यों-की-त्यों बनी है। यह देखकर रोहिणी लजा गई। एक क्षण पूर्व उसमें जो उत्साह और प्रेरणा दिखाई देती थी, वह मिट गई और उदासी छा गई। उसने चाहा कि वह साड़ी खोल दे, माँग का सिन्दूर पोंछ दे और उतार दे हाथ की चूड़ियाँ....।

तभी लक्ष्मी ने बाहर से पुकारा—"अरी, रोहिणी!"

तब रोहिणी ने जैसे चौंककर कहा—"हाँ, जीजी!"

लेकिन लक्ष्मी वहीं आ गई। रोहिणी को उस रूप में देख वह हर्षित होकर पूछ बैठी, "यह साड़ी लाये हैं अजयबाबू? चूड़ियाँ भी?" और उसने क्षणिक मुस्कराकर कहा, "भला, सबको सिन्दूर कहाँ फबता है। जैसे मूर्ति है, एक सुन्दर सुहागिन की।"

सुनते ही रोहिणी ने खिसियानी-सी होकर कहा—"मैं अब इसको उतार दूंगी जीजी! सिन्दूर पोंछ दूंगी। अजयबाबू तो निरे बच्चे हैं

जैसे, जो कुछ जानते-समझते नहीं, इस रोहिणी को अब यह नहीं सुहायगा, इसे शोभा नहीं देगा।"

"दुत, पगली कहीं की! कौन कहता है कि तुझे नहीं सुहायगा! मैं कहती हूँ, यह सब तुझी को शोभा देगा। चल उठ।"

"नहीं जीजी, नहीं! मेरे लिए यह सब नहीं है।"

"रोहिणी," लक्ष्मी ने उसका हाथ पकड़कर कहा, "अजयबाबू तो बच्चे हैं ही, पर तू भी उनके साथ बच्ची बनी है। तू नहीं समझती, यह पाप नहीं है। ईश्वर ने जिस शरीर का सौन्दर्य तुझे दिया है, बता तो क्या उसे सुरक्षित रखने और सजाकर रखने में तूने पाप और व्यभिचार क्या देखा है? यह कुछ नहीं!" कहते हुए उसने हठात् रोहिणी को उठा लिया। उसने और रोहिणी ने जैसे ही बाहर के कमरे में पैर रखा तो देखा, उसी क्षण भैया भी वहाँ आकर खड़ा हो गया। आते ही उसने सबकी ओर देखा। सभी ने उसे 'नमस्ते' की। किन्तु रोहिणी थी, जो तब सचमुच ही लजाई और खोई-खोई-सी भैया की ओर देखकर उसकी ओर झुक गई थी और प्रणाम करने के लिए उसके चरणों में नत हो गई थी।

यह देखकर भैया ने गद्‌गद् होकर कहा—"जियो, जीती रहो, बहन," और उसने रोहिणी को ऊपर उठा लिया। तब उसने अजय की ओर देखकर कहा, "आज ही मिला था तुम्हारा पत्र।"

"और आप कहिये, प्रसन्न तो हैं?" भैया ने तब लक्ष्मी जीजी की ओर देखकर पूछा, "सुना है कि आप भी रोहिणी के काम में हाथ बटायेंगी। महेशबाबू तो अपनी अलग ही दुनिया बसाये हैं। वही सीमा है इनकी तो। साहित्यिक जीव जो ठहरे।" कहते हुए भैया हँस पड़ा।

सुरेशबाबू की ओर देखकर अजय ने पूछा—"आप इनसे परिचित हैं भैया?"

भैया ने कहा—"हाँ, क्यों नहीं। दूर से तो जानता हूँ कि सुरेशबाबू भावुक और मिलनसार धनिक-पुत्र हैं।"

"और आप भैया परिचित हैं क्या ?" तुरन्त अजय ने सुरेशबाबू की ओर देखकर पूछा।

"बस, ऐसे ही जैसे आपके भैया हैं। भैया सभी के परिचित हैं।" सुरेश ने कहा।

भैया ने कहा—"कुछ दिन हुए, एक सभा में मिले थे, हम और आप। चलो, आज फिर भेंट हो गई।"

इसी बीच रोहिणी भीतर गई। जब लौटकर आई तो मिठाई की तश्तरी उसके हाथ में थी। वही उसने भैया के सामने रख दी।

भैया ने पूछा—"दीखता है, अजयबाबू इस मिठाई को लाये हैं ?"

लक्ष्मी ने कहा—"जी हाँ।"

"पर तुम आज कैसी-कुछ लजा रही हो रोहिणी !" उसकी ओर देखकर एकाएक भैया ने पूछा।

लक्ष्मी ने कहा—"आपने देखा नहीं, यह सिन्दूर है माँग में, हाथों में चूड़ियाँ और पहनी हुई यह रेशमी साड़ी ! जो रोहिणी सोचती है वह मेरे लिए नहीं है। यह किसी और के लिए हैं। इसीसे दोषी बन गई है यह।"

यह सुनकर भैया हँसा। उसने ममता-भरी निगाह से रोहिणी की ओर देखकर कहा—"रोहिणी बहन, तो लजाने की क्या बात है इसमें ! यह सब तुम्हीं को शोभता है।"

उसी समय सुरेशबाबू ने अजय की ओर देखकर कहा—"अब आज्ञा दीजिए, फिर मिलूँगा।"

"क्यों, आप नहीं चलेंगे घूमने ?"

"आज नहीं।"

यह सुनकर महेशबाबू ने भी सुरेश की ओर देखा। सुरेश ने उनकी ओर देखकर कहा—"मुझे काम है, नहीं तो अवश्य ही चलता," और उसने उठते हुए भैया से कहा, "आज आपके दर्शन अनायास ही हो गए। अच्छा, अब फिर मिलेंगे।"

भैया ने मिठाई खाते-खाते कहा—"हाँ, हाँ।"

सुरेश चला गया।

उसी समय भैया ने महेशबाबू की ओर देखकर पूछा—"आप लोग कहाँ जा रहे हैं ?"

"यों ही कहीं घूमने ।"

"तो आज मेरे साथ चलिये नदी-पार ।"

लक्ष्मी ने कहा—"हाँ, हाँ, चलिये न ! भला आपके साथ जाना कौन पसन्द न करेगा ।"

भैया ने पानी पीते हुए अजय की ओर देखकर पूछा—"तो चलें अब ?"

अजय ने कहा—"हाँ, चलिये ।"

सब उठ लिए और चल दिए । सड़क पर आकर लक्ष्मी ने रोहिणी से कहा—"क्यों रोहिणी, भला आज कैसे चल दिए सुरेशबाबू ?"

महेशबाबू साथ थे । लक्ष्मी की बात सुनकर रोहिणी चुप रह गई किन्तु महेशबाबू ने कहा—"आश्चर्य मुझे भी हुआ । भले आदमी ने स्वयं कहा था मुझसे, कि चलेंगे घूमने । और फिर नहीं चला । जाने क्या सोचकर नहीं चला ।"

लक्ष्मी ने कहा—"आदमी ईर्ष्यालु भी है ।"

"यह आज समझा तुमने ?" महेशबाबू ने कहा, "यह बात सदा से आदमी के साथ रही है । वह इसी में बँधा है । यह न होता तो देवता होता आदमी ?"

उस समय भैया और अजय बातें करते-करते आगे चल रहे थे । महेशबाबू की बात सुनकर अजय ने उनकी ओर देखा ।

महेशबाबू ने अजय से कहा—"भई, यह कहती हैं कि क्यों चल दिए सुरेशबाबू ! और सोचती हैं कि आदमी ईर्ष्यालु भी है । मैंने कहा है, आदमी ऐसा कब नहीं था !"

तब अजय यह सुनकर मन्द-सा मुसकरा दिया ।

लक्ष्मी ने कहा—"पर ईर्ष्या की बात क्या थी ! बुरी बात है, पढ़े-लिखे भी रखते हैं ऐसा मन ।"

अजय ने कहा—"दीखता है कि तुम पढ़े-लिखे आदमियों को अच्छा समझती हो ।"

"हाँ अजयबाबू, फिर वह पढ़ा क्यों है! हम उससे ऐसी ही आशा करते हैं कि वह आदमी हो, आदमियत लिये हुए हो!"

"तुम भ्रम में हो भाभीजी," अजय बोला, "आज जो अशान्ति और झंझट हम अपने में देखते हैं, वह इस समझदारी के प्रमाण हैं। जो आदमी की बात है, उसे बे-पढ़ा भी समझता है। किताबों ने आदमी को शैतान बनाया है।"

उस क्षण भैया अपने किसी और विचार में डूबा हुआ था। तभी उसने रोहिणी की ओर देखा और उससे पूछा—"क्या बात है रोहिणी, कैसे चले गए सुरेशबाबू?"

हठात् रोहिणी बोली—"क्या जाने भैया!"

"सुरेशबाबू क्यों गये, इसका कारण तो तुम ही अच्छी तरह जानती हो।"

यह सुनते ही रोहिणी ने एकाएक क्षुब्ध होकर कहा—"जो जानती हूँ, वह क्या कहकर निकाल देने की बात है भैया, सुरेशबाबू पागल हो गए हैं। मैं उनकी ऋणी हूँ।" और उसने कहा, "तब कहाँ लगते थे ऐसे, तब सुरेशबाबू सभ्य और कुलीनता के उपासक दीखते थे।"

लक्ष्मी ने कहा—"तुम सर्वथा निर्दोष हो रोहिणी!"

"तभी तो जीवित है रोहिणी! नहीं तो फिर क्या तुम देख पातीं इसको," रोहिणी ने गर्वित होकर कहा, "कहा तो है लोगों ने कि आदमी प्यासा है! यह मानुष नारी का प्यासा है! पर मैं तो कहती हूँ: लो आओ और इस रोहिणी को खा जाओ। कच-कच और कट-कट इसे चबा जाओ।"

"रोहिणी," उसी समय भैया ने उसकी उस अस्थिर और क्रोधित अवस्था को देखकर कहा, "क्या पागल हुई हो। तुम अपने में क्या देखती हो। कदाचित् तुम समझती हो कि तुम्हारे इस सौन्दर्य के पीछे जो देवि-रूपा एक महती प्रतिभा की प्रतिष्ठापना हुई है, तो निश्चय ही तुम ऐसे पुरुषों को दुतकार नहीं देतीं, उन्हे झिड़क नहीं देतीं, अपितु तुम सादर सस्नेह उनकी दावाग्नि और विषयाग्नि पर अपना निर्मल और शीतल अश्रु-जल छिड़क देती हो। तुम सोचती हो, ये नारियाँ, जो सधवा

हैं, जो अपने-अपने पति के साथ हैं, वे निश्चय ही पतियों को सुमार्ग बताती हैं। रोहिणी, ये सभी बेचारी एक कच्चे धरातल पर खड़ी हैं और डगमगा रही हैं। वे एक बड़े-से अग्नि के कुण्ड में जलती हैं और जलती जा रही हैं। उस कुण्ड में जाने कितने पुरुषों और स्त्रियों की नित-नित ही आहुति दी जाती रही हैं! उनकी यही माया है, उनकी यही जीवन-लीला है। फिर हम कौन, तुम कौन; कुत्ते-बिल्ली का तो नाम लिया जाता है, जो कर्म है, वह तो इस पुरुष और नारी द्वारा ही सम्पादित किया जाता है।"

उसी समय अजय अपने मन में आई जाने किस बात पर हँस पड़ा और रोहिणी की ओर देखने लगा।

तभी रोहिणी ने कहा—"हँसते हो! तुमने हँसना ही सीखा है।"

"लो भैया," अजय ने भैया की ओर देखकर कहा, "घोड़े की बला तबेले के सिर। भला पूछो तो इनसे; सुरेशबाबू से तो कुछ कहते बना नहीं, एक मैं पा लिया गरीब-सा, सीधा-सा।"

लक्ष्मी ने मुसकराते हुए कहा—"जी, बड़े सीधे हो तुम! आग तो तुम्हारी लगाई हुई है।"

"क्यों, कैसे भाभी?" अजय ने पूछा।

रोहिणी ने नहीं बताया?—सुरेशबाबू चाहते थे कि रोहिणी सदा उनकी ओर देखे, उनका उपकार माने। सो, अब यह सब कहाँ किया इसने। पल्ला झाड़कर अलग खड़ी हो गई। उनका सब रुपया लौटा दिया। उनकी उदारता, बिना फले ही, जहाँ-की-तहाँ रह गई।

भैया ने कहा—"यही धनिकों की मनोवृत्ति है, जिसने देश को चूस लिया है। इन्होंने सदा आड़ में ही शिकार खेला है।"

इतने में नदी का किनारा आ गया। सब नाव पर चढ़ लिए। भैया ने नाव को पानी में धक्का दिया और स्वयं भी उस पर चढ़ गया। उसने पतवार उठा ली और नाव खेने लगा।

जब नाव नदी के बीच में पहुँची, तो उस गहरे पानी की लहरों को देखते हुए लक्ष्मी ने रोहिणी से कहा—"सुरेशबाबू ने जो चाहा वह

 मिट गया, सब! जिस रोहिणी को वह अपने निकट देख पाया, उसी को

इतनी दूर अनुभव करके और पराई देखकर उनका सारा उत्साह मन्द पड़ गया।"

"जीजी!" रोहिणी ने तभी लक्ष्मी की ओर देखकर कहा, "क्या मुझ पर तुम्हें भी भरोसा नहीं है? आदमी सदा ही धोखा खाता है।"

लक्ष्मी ने कहा—"भले ही तू न सोचती हो, पर मैंने तो चाहा और सुरेशबाबू से भी कहा कि तुम उनसे विवाह कर लो। लेकिन होना कुछ और ही था। शायद वही तो आज सुरेशबाबू ने देखा कि यह माँग का सिन्दूर, हाथों की चूड़ी और यह पहनी हुई साड़ी आगे की सूचना है। जो हो, मैं तो कहती हूँ, तूने आज ही तो की है मेरे मन की बात! मैं यही चाहती हूँ। मैं तुझे ऐसी ही शोभा में देखना चाहती हूँ रोहिणी!"

रोहिणी ने अपना सिर झुका लिया।

नदी की आती हुई लहरों को ओर देखते हुए लक्ष्मी ने फिर कहा—"रोहिणी, इन लहरों को देख, इनकी इसी में शोभा है कि ये एक-दूसरे से मिल रही हैं। नदी भी साथी चाहती है। इसकी यही दिशा है। यह अकेली कैसे अच्छी लगेगी?"

रोहिणी ने लम्बी साँस छोड़कर नदी की ओर देखते हुए कहा—"जीजी, रोहिणी भी एक लहर है, जो अब अकेली रह गई है और यों ही बह रही है। लहर का स्वभाव बहना और पानी के साथ-साथ चलना है, सो यह भी उसे पूरा कर रही है।

यह सुनकर, लक्ष्मी ने ममताभरे स्वर में कहा—"लहर का स्वभाव कोरा बहना ही तो नहीं है मेरी रानी! सागर की शोभा बढ़ाना और उसे दुनिया की दृष्टि में और अधिक गौरवान्वित करने का काम भी तो उसका है। यही नारी का कर्म है। नारी ही शोभा है दुनिया की। अब मैं यही अजयबाबू से कहूँगी।"

रोहिणी ने चकित होकर कहा—"ना जीजी! ऐसा कुछ नहीं! कुछ भी नहीं ···।"

यह सुनकर जीजी धीमा-सा हँस पड़ी।

इतनी देर में नाव शहर से दूर निकल आई थी और अब जंगल के

किनारे की ओर बढ़ गई थी। किनारे के मेहराबदार पेड़ नदी के पानी पर झुके हुए थे। उन्हीं के बीच में एक स्थान पर भैया ने नाव लगाई। एक-एक करके सब किनारे पर उतर लिए।

वहीं पर लक्ष्मी ने एक ओर देखकर भैया से पूछा—"वह क्या है; आग की उठती हुई लपटें हैं क्या?"

भैया ने कहा—"वही है जो नित्य होता है। कोई मरा है, जो अब जल रहा है।"

"अच्छा, यह श्मशान-घाट है।" लक्ष्मी ने कहा।

तब उस जलती हुई चिता की ओर देखते हुए भैया ने फिर कहा—"कहो तो चलें उधर। तुम लोगों ने कहाँ देखा होगा कभी किसी को फुँकते हुए, किसी को जलते हुए। आओ, चलें।"

लक्ष्मी ने कहा—"चलिए न, घूमना तो है ही, उधर ही सही।"

तब सब उधर ही बढ़ चले। उन पेड़ों के पार ही था, श्मशान। वे सब वहाँ पहुँच गए। देखा, कि एक चिता जल रही थी, एक चिनी जा रही थी और एक की जलती-जलती राख अभी कुछ ठण्डी पड़ गई थी।

भैया ने सब की ओर देखकर कहा—"यही है मनुष्य का अन्त! मुट्ठी-भर राख का ढेर···!"

उस समय महेशबाबू उस सुलगती चिता की ओर देखने लगे थे, जिसके पास ही एक ढलती आयु का व्यक्ति और लड़का बैठा था। लड़का रो रहा था। जो पुरुष था, वह जाने किस दर्द के साथ चिता की ओर देखता हुआ एक मन से बैठा था। वह घुटनों पर सिर झुकाए हुए था। कभी चिता की ओर देखता था, कभी नीले आकाश की ओर।

रोहिणी ने कहा—"दिखता है, लड़के की माँ मरी है।"

लक्ष्मी ने कहा—"ये ऐसे बैठे हैं दोनों, जैसे लुट गए हों! कितने दुखी हैं ये बेचारे।"

यह सुनते ही भैया ने कहा—"बहन, यहाँ सभी कोई लुटते हैं। सभी चुराये और छीने जाते हैं एक दिन। वह देखो—उस ओर, वह कैसी बैठी है बेचारी। दिखता है, उसकी आँखों में और आँसू भी नहीं हैं। उसे दीन-दुनिया की भी खबर नहीं है। जो जल रहा है, निश्चय ही

पति है उसका। वह उस चिता की ओर कितनी शून्यता और तन्मयता से देख रही है, ठंडी चिता की तरह जैसे वह भी ठण्डी पड़ गई है, अथवा जड़ हो गई है। सोचती होगी और देखती होगी : यही है उसकी निधि और कामना—राख और जली हुई हड्डियों का ढेर।"

रोहिणी ने गहरी साँस खींचकर कहा—"भैया, यही है जीवन की राह, – इसका अन्त ! ओह···· !"

भैया कुछ नहीं बोला। वह कुछ नहीं कह सका। वह तब स्वयं भावुक बन गया था।

तभी अजय श्मशान के चारों ओर की परिक्रमा करके लौट आया। दिखता था कि वह अपने में मग्न था। पास आते-आते उसने रोहिणी की बात को सुन लिया था। तब उसी से कहा—"हाँ भाभीजी, इस सोने-सी काया का ऐसे ही ढेर होता है। पर मैं मरकर नहीं जलूँगा। लोगों से कह दूँगा कि मुझे जंगल में फेंक दिया जाय। एक दिन तो बेचारे चील-कौओं का पेट भरे।"

"तो यों कहो, मरकर भी उपकार करेंगे अजयबाबू !" हँसते हुए भैया ने कहा।

अजय ने पूछा—"हँसे कैसे, भैया ?"

"तुम्हारी बात पर ! भले आदमी, चील-कौओं का तुमसे गुजारा नहीं है। और मैं कहता हूँ, इस आदमी के लिए तुमने क्या दिया है। कुछ इसका भी तो हिस्सा है। वैसे जो तुमने कहा, मैंने सभी को ऐसे ही कहते सुना है। उन सबकी यही आकांक्षा है। और-तो-और, हमारा समाज ही इस दुर्बल नींव पर खड़ा है। वह ऐसे ही विचारों पर आश्रित है।"

महेशबाबू ने कहा—"आइये, चलें। यह तो नित्य का ही काम है। क्या कभी इसका अन्त होगा। लोग आयंगे भी, जायंगे भी।"

सब वहाँ से लौट चले।

तभी भैया ने कहा—"जो मरते हैं उन सबका ही कहाँ पता चलता है। दुनिया के अधिकांश मनुष्य चील-कौओं के पेट में जाते हैं। उनकी कोई खोज-खबर नहीं लेता।"

उसी समय पीछे से आती हुई लक्ष्मी ने अजयबाबू को रोककर कहा—"जरा देखिए, अजयबाबू···!"

अजय ने देखा, वह दूर पर जंगली सियार है, जो कुछ खा रहा है — कुछ उचेड़-उचेड़कर वह फाड़ रहा है। यह देखकर अजय उधर बढ़ गया।

रोहिणी ने रोकने के अभिप्राय से कहा—"कहाँ जाते हो ! आओ, आओ।

"अभी आया भाभी !" कहते हुए अजय उधर बढ़ गया।

"तो ठहरो, हम भी आये।" लक्ष्मी का हाथ पकड़कर रोहिणी ने उसी ओर बढ़ते हुए कहा। जाकर देखा, वह आदमी का अधजला शरीर था, जिसे सियार खा रहा था। उन लोगों को आते देखकर सियार दूर जा खड़ा हुआ था। वह अपनी लाल-लाल और जलती हुई आँखों से कभी अपने शिकार को देखता था और कभी उन लोगों को घूरता था। देखते-देखते भैया और महेशबाबू भी पहुँच गए।

भैया ने कहा—"यह नई बात नहीं है। ऐसी घटनाएं तो मुझे नित्य ही देखने को मिलती हैं। भला सभी को कहाँ मिलती हैं लकड़ियाँ। अजी, आप लोग क्यों भावुक बने हैं। लोग उधर गाड़कर गये नहीं कि इधर जानवरों ने निकाला नहीं। कभी रात में यहाँ का दृश्य देखो तो समझो कि कैसे होता है इस आदमी की देह का अन्त ! मैं यहाँ रात में पचासों बार आया हूँ और जाने कितनी माताओं के लालों को इन खूनी जानवरों के पंजों से खिचड़ता देख चुका हूँ। जाने कितनी बार इन जानवरों को उछलते-कूदते और आदमी की हड्डियाँ चबाते और कट-कट करते मैं देखता रहा हूँ और चुपचाप बैठा रहा हूँ।"

तब लगता था कि सभी विस्मय में थे, जो कदाचित् कोई नई और अनहोनी बात देख चुके थे और सुन चुके थे। तब वह सब नदी की ओर बढ़ लिए थे।

नदी के किनारे पर आकर भैया ने कहा—"यह कितनी सुन्दर हैं नदी के जल की लहरें, पर विष इनके भी पास है। आदमी का अन्त इनके द्वारा भी होता है।"

अजय ने कहा—"यह बात तो सभी के लिए है भैया! आदमी के लिए भी।"

"परन्तु सब ऐसा सोचते कहाँ हैं। सब अपना वर्तमान देखते हैं।" भैया ने कहा।

"भैया!" एकाएक अजय ने फिर कहा, "हमने यही देखना सीखा है। हमें यही महत्त्वपूर्ण लगा है।"

महेशबाबू ने कहा—"जो आगे का अन्धेरा है, जो अदृश्य पथ है, इसी से वह सदा अस्पष्ट रहा है। वह हमारी दृष्टि से दूर रहा है भाई!"

अजय ने कहा—"आगे क्या है—अन्धेरा या उजाला, यह समझना हमारा काम नहीं है। जिनका वर्तमान ही बिगड़ा है, उन्हें भविष्य की चिन्ता करना मेरी दृष्टि से कभी भी अभीष्ट नहीं है।"

"यह सब तुम्हारा ही काम है अजयबाबू!" भैया ने कहा, "तुम अपने पथ के निर्माता हो। मकान के किवाड़ खोलकर तुम जैसे प्रकाश लेते हो, उसी प्रकार तो अपने वर्तमान के अन्धकार से झाँककर भविष्य की ओर देख सकते हो।"

"तुम तो ईश्वर को मानते हो भैया! क्या उस पर भरोसा नहीं रखते हो?" अजय ने पूछा।

भैया ने कहा—"लेकिन मैं तो तुम्हीं को देखता हूँ भाई! मैं इस दुनिया में बसा हूँ। मैं आदमी की पूजा पसन्द करता हूँ।"

सब नदी के किनारे पर बैठ गए। उस सन्ध्या के होते आए अन्धेरे में जंगल के सियारबो लने लगे थे। उनके झुण्ड-के-झुण्ड नदी के किनारे पर आकर पानी पीते दिखाई दे रहे थे। उन्हीं को लक्ष्य करके भैया ने कहा—"यह भी दुनिया है, इनके पास भी प्राण हैं। वह देखो, वह आये जंगली सूअर! वह उधर भेड़िया पानी पी रहा है! वह डरती-सी, और चौंकती-सी लोमड़ी! और वह किनारे से भाग गया खरगोश!"

रोहिणी ने जिज्ञासु भाव से पूछा—"यह भी आदमी से डरते हैं भैया? इन्हें दिन में पानी नहीं मिलता क्या? और वह कौन आया?"

भैया ने कहा—"डरो मत ! यह भी सूअर-सा है एक जानवर ! वैसा ही खूँखार !"

इतने में वह जानवर कुछ और निकट आ गया था। अन्धेरे में उसकी आँखों से जो प्रकाश दीखता था, सचमुच वह जलती हुई मशाल के सदृश ही भयानक लग रहा था। जिसे देखकर बरबस रोहिणी ने अजय का हाथ पकड़ लिया था। उसने तब सहमी हुई आकृति से भैया की ओर भी देखा था।

तभी भैया ने जेब से पिस्तौल निकाल लिया। उसने उसका घोड़ा भी खड़ा कर लिया। वह उसे रोहिणी की ओर बढ़ाता हुआ बोला—"जानवर आये तो इससे काम लो। लगता है, तुम डर रही हो।"

रोहिणी ने पिस्तौल की ओर देखकर कहा—"दीखता है, तुम्हें इसी पर नाज़ है भैया ! समय पर यह भी पड़ा रह जाता है। मैं इसे नहीं लेती। इसमें कोई शक्ति है, मैं ऐसा विश्वास भी नहीं करती।"

यह सुनकर भैया हँस पड़ा। जब सब हँसे, तो वह भी जोर का ठहाका मारकर हँस पड़ा।

यह देखकर तब रोहिणी ने अप्रतिभ होकर कहा—"इस पिस्तौल ने मनुष्य को सदा धोखा दिया है। जैसे अजेय है यह, महान् है यह।"

"तब तुम किस पर भरोसा करती हो ? बताओ तो, तुम क्या मानती हो ?" हँसी रोककर भैया ने पूछा।

"जो खाना चाहता है, मेरा भक्षण करना पसन्द करता है, मैं अपने को उसके सामने अर्पित कर दूँगी। कब तक खायगा वह ! ऐसे कब तक जियेगा वह ! उसकी भी सीमा है। हमीं ने उसे खाना सिखा दिया है, हमीं ने उससे डर-डरकर उसे उत्साहित किया है। हमीं ने सिखाया है कि हम हैं उसके शत्रु !"

लक्ष्मी वहीं घास पर लेट गई थी। महेशबाबू नदी की ओर देख रहे थे। और अजय उन दूर पर पानी पीते जानवरों के ऊपर निगाह जमाए था। तभी रोहिणी की बात सुनने के साथ जैसे उसे लग रहा था—हम क्यों हैं इन जानवरों से दूर ! और यह हिंसक और कठोर ही क्यों ?

उसी समय भैया ने रोहिणी की बात सुनकर नितान्त गम्भीर होकर कहा—"रोहिणी बहन, दीखता है कि तुम यह भूल गईं कि आदमी भी एक जानवर है। जो इन जानवरों से भी अधिक खूँखार है। देखती हो वह चमक रही हैं लाल-लाल आँखें। वह बघेरा है। वह आया है तो सब जानवरों ने किनारा छोड़ दिया है। अब वह खड़ा हुआ इस ओर देख रहा है, जो कदाचित् सोच रहा है: कई हैं ये लोग—उसके शिकार। हममें से होता एक-आध, तो क्या यह छोड़ता उसे; वह जरूर इस बघेरे के पेट में चला जाता। और जो तुम कहती हो, हिंसा पाप है, तो बहन, जो तुम्हारी अहिंसा का सिद्धान्त है, उस पर चलकर तो इस बघेरे को बिना प्रयत्न के ही शिकार मिल जाना चाहिए था। कदाचित् यह कहते समय तुम यह भूल जाती हो कि भूख इस बघेरे के भी पास है। तुम्हारी तरह इसकी आत्मा में भी पीड़ा है।" यह-कहते-कहते भैया रुक गया, और दूर उस काले होते आए अन्तरिक्ष की ओर देखते हुए उसने फिर कहा—"इस सृष्टि में कभी भी ऐसा नहीं निभा। सदा ही एक ने दूसरे की ओर देखा। और तुम नत होना चाहती हो, जो खूँखार भेड़िया है उसी के सामने तुम समर्पित होना चाहती हो! क्या कहूँ कि ऐसा करके तो तुम उसकी भूख को—उसकी अन्तर्ज्वाला को और भी अधिक भड़काना चाहती हो। हिंसक पशु की जो आग है, वह तुम्हारी अकेली आहुति पर शान्त नहीं हो जायगी, वह और भड़केगी। तभी कहता हूँ कि जो जहरीले दाँत उगते हैं, वह टूटते हैं। यह जो दुनिया के संघर्ष हैं, वह कभी कम होते है, कभी बढ़ते हैं। मानव में ज्यों-ज्यों स्वेच्छापूर्ण भावना का विकास होगा, उस की प्रगति के साथ उसकी प्रतिक्रिया का रूप होगा। जो संघर्ष होगा उसमें तब सभी का बलि-दान होगा। पुरुष, स्त्री, बच्चे और वृद्ध, सबकी जिह्वा पर बस एक ही नारा होगा—'हमें जीने के लिए मरना है, और मरने के लिए जीना है।' रोहिणी बहन, इन्हीं विचारों पर टिका है यह बड़ा-सा संसार! जो नित्य ही प्रलय-सरीखी आँधियों को आती और जाती देखता है। और तुम करती हो शान्ति, प्रेम, श्रद्धा और भक्ति की बात! यह तो एक साधन है जो आदमी ने जरा टिककर साँस लेने के लिए बना लिया है।

अन्यथा वह जैसे लड़ता, मारता और भागता आया है वैसे ही उसे फिर आगे जाना है। उसका तभी निस्तार है। इस निरन्तर की सुलगती और दहकती अग्नि को आज तो क्या कभी भी शान्त नहीं होना है। इसने जाने कितनी सृष्टियों को अपने उदरस्थ कर लिया है। इस पुरुष में जो प्रतिहिंसा और स्वेच्छा है, उसने बरबस ही इस आदमी को भेड़िया बना दिया है। जिसका एक ही लक्ष्य रहा है—लड़ो और मर जाओ।"

"तुम क्रोध में हो भैया," रोहिणी ने मुसकराते हुए कहा।

भैया हँसा। उसने कहा—"आज तुम सबके बीच बैठकर मुझे क्रोध नहीं आयगा। परन्तु मैंने जो-कुछ कहा, तुम्हें नहीं भाया। अच्छा आओ, चलें अब!" कहते हुए वह खड़ा हुआ और लक्ष्मी की ओर देखकर बोला, "आप चुप-ही-चुप हैं, सुनी न रोहिणी की बात?"

तब लक्ष्मी ने स्वीकृतिसूचक मुद्रा में भैया की ओर देखकर मुसकरा दिया।

सब नाव पर चढ़ लिए। लक्ष्मी ने महेशबाबू की ओर देखकर कहा—"भैया भी खूब हैं, तुमने सुनीं आज भैया की बातें?"

महेशबाबू ने कहा—"हाँ, मैंने सुनीं, सभी निराली बातें हैं।"

लेकिन इससे पूर्व ही वह लक्ष्मी जीजी ममता और अपूर्व स्नेह के साथ उस भैया को ओर देखती रह गई थी, जिसने कि उन सबको पार ले जाने के लिए पतवारें उठा ली थीं और नाव नदी के गहरे जल की ओर बढ़ा दी थी उस पार जाने के लिए··· !

नित्य की तरह जब रोहिणी सुबह को सोकर उठी तो उसे रात में देखे हुए स्वप्न की याद आई। इसीसे श्मशान का दृश्य फिर उसके सामने आ गया। तभी उसने मन-ही-मन कहा—'जो कौतुक और भय की बात थी, भैया उसी के पास है! उसी भयावने और बीभत्स

खण्ड पर वह नित्य बैठता है, सोता है और अपने जीवन की रूप-रेखा बनाता है।'

तभी उसे लगा कि जैसे वह श्मशान की राख का एक ढेर है जो क्षण-मात्र में हवा के झोंकों के साथ उड़ जायगा। उसने फिर मन-ही-मन कहा—'कहा तो था भैया ने कि जीवन भी एक खेल है जिससे अरुचि, अतृप्ति का किसी क्षण भी मेल नहीं होता।'

उसी समय अजय अपने कमरे से निकलकर आया। रोहिणी को हाथ की हथेली पर मुँह रखे देखकर वह पास आकर बोला—"तुम अभी बैठी हो भाभी! मुझे दस बजे जाना है।"

यह सुनकर रोहिणी की विचार-धारा टूट गई। उसने चकित होकर अजय की ओर देखा।

अजय ने फिर कहा—"रात घूमने क्या गये बला ले आये। तुम तभी से चुप और उदास-सी दीखती हो।"

यह सुनते हुए रोहिणी ने अपने खुले बालों का जूड़ा बाँध लिया। धोती को सिर पर कर लिया और चारपाई से उठते-उठते अजय की ओर देखकर कहा—"जीवन असार है, यह कल ही तो समझा मैंने। कल जो देखा वह रात-भर मेरे मस्तिष्क में घूमता रहा। इसी से अब सोचती हूँ इतने जो जीवन के झगड़े हैं, ईर्ष्या और द्वेष हैं; आशा और निराशाओं का द्वन्द्व है; आखिर यह सब क्यों? क्या इसी का नाम जीवन है?"

"तुम भावुक बहुत हो भाभी, जो दुनिया की रीति है दीखता है वह तुमने अभी नहीं समझी है।"

रोहिणी ने तब अजय की ओर देखकर कहा—"मैं इसे मानती हूँ। जीवन का जो खेल है, जो स्वर है और जो मधुर गत है, मैं अब भी उसे कहाँ पहचानती हूँ।"

"अजी इतना सब देखकर तुम अपने को और अधिक उलझन में डालती हो भाभी! देखती तो हो, तुम्हारा पति तो मर गया और जीवित हो तुम! जो अभाव है वह कभी पूरा नहीं हुआ; कुछ मिटा है, कुछ बना है। बस इसी का तो नाम है जीवन। तुम व्यावहारिक और यथार्थ

बनो। इस जीवन की विशालता को देखो। विरक्ति और विराग पदार्थ भले ही हों, किन्तु वह दुनिया के जीवन में कभी भी एकमत और सार्थक सिद्ध नहीं होते। सुना तो, बहुतों ने कहा तो कि वह शान्ति और स्थिरता चाहते हैं, लेकिन भला कभी पाया है उन्होंने इन बातों का छोर। सच तो यह है कि दुनिया और है, आदर्श और। जो सुन्दर भावनाएं हैं, वे तो जंगलों और पहाड़ों में बैठकर मानने की वस्तु हैं। पुरुष-समाज में तो निरन्तर लड़ते रहना, बढ़ते रहना ही जीवन है। आज इसी से तो की है तुम्हारे इस अजय ने नौकरी। इसने यही देखा कि एक अभाव है, जो निरन्तर इसके अन्दर खटकता है। जो अकारण और अप्रासंगिक भी नहीं है। आखिर मैं जो तुम लोगों से बँधा हूँ, पाला-पोसा गया हूँ, उसके प्रतिरूप में निश्चय ही, मैं नौकरी करने के लिए बाध्य हुआ हूँ। देखता हूँ, मैं अपनी आत्मा के विरुद्ध चला हूँ।"

रोहिणी ने आकुलता से कहा—"तुम मत जाओ!···मत करो नौकरी।"

यह सुनकर अजय हँस दिया। वह अपने कमरे की ओर जाता हुआ बोला—"जीवन में बस दो-चार अवसर मिलते हैं भाभी, आर्थिक विकास और नैतिक विकास के," यह कहते हुए वह अपने कमरे के द्वार पर खड़ा हो गया और रोहिणी की ओर देखकर बोला, "अब कौन सुरेशबाबू का धन लिये हो तुम, जो इस अजय को निकालकर देती रहोगी और स्वयं भी अपना पेट भरती रहोगी।"

"तुम अपनी सोच लो, मुझे अपनी चिन्ता नहीं है। वैसे जो दो रोटियों की बात है, वह तो रोहिणी तुम्हें सदा खिला सकती है।"

तब अजय ने हँसकर कमरे में जाते-जाते कहा—"अच्छा, अच्छा!"

उसी समय रामू की माँ बाजार से साग ले आई थी। यह देखकर रोहिणी जल्दी-जल्दी अपने दैनिक कर्मों से निबटी और खाना बनाने में लग गई।

अजय अपने कमरे में सूटकेश से नया सूट निकाल रहा था और मन में कह रहा था—'यह भाभी भी खूब है, जो कहती है कि छोड़

दो नौकरी ! जो कदाचित् नहीं जानती कि इस पैसे के बगैर आदमी कितना हीन और दीन दिखाई देता है। और इसी के लिए मैं यह नया सूट डाटकर और हैट लगाकर जाऊँगा दो सौ रुपये पाने के लिए।'

यह सोचते-सोचते अजय जाने कितने ईर्ष्यालु भाव से हँस दिया। मानो जो-कुछ वह मन में छिपाये था और जिसे अपनी इस भाभी से भी नहीं कह सका था, उसी को लेकर वह अपने अन्दर-ही-अन्दर नितान्त क्षीण और आतुर बन गया था।

उसी अवस्था में उसने फिर कहा—'अरे अजय, तुमने क्या लड़ना सीख लिया है ! जो नहीं जानते कि यह दुनिया ऐसा अखाड़ा है, जहाँ सभी-कोई पिटा है। और तुम लड़ने चले हो। तुम नौकरी के खन-खनाते रुपयों से भी यह जीवन जलाने की इच्छा रखते हो ! और इसी के साथ देश-भक्ति की भी बात सोचते हो। तुम दरिद्रनारायण की सेवा करना चाहते हो। तुम !···तुम···!'

अजय ने सूट निकाल लिया था। उसे सामने मेज पर रखकर वह बैठ गया। दिखता था कि पहले की अपेक्षा अब वह और अधिक अस्थिर बन गया था। तभी मन-ही-मन बोला—'अजय, आखिर तुम हो तो एक आदमी, जिसकी कोई सीमा है। ऐसे तो इन दो नावों पर सवार होकर तो, तुम न पैसा ही पाओगे और न देश की कोई सेवा ही कर सकोगे। और यह भाभी है, जो ममता और मोह की साकार मूर्ति बन-कर ऐसे देखती है कि जैसे जन्म-जन्म की यह परिचित रही है। और आज जो मेरे प्रति करती और सोचती है, मानो वह आदि युग से इस अजय के लिए इसी प्रकार की चिन्ता और चिन्तन का बोझ उठाती आ रही है। और तुम कहते हो कि जीवन का अर्थ यह है, क्षेत्र यह है—देश और दरिद्रनारायण की सेवा !'

इतनी देर में अजय कुरसी से उठ लिया था और उसने कमरे में घूमना आरम्भ कर दिया था। उसके हाथों की दोनों मुट्ठियाँ बँधी थीं। माथे में भी सलवटें पड़ गई थीं। उसकी पूरी खुली हुई आँखें कमरे की दीवारों को घूर-घूरकर देख रही थीं।

उसी समय रोहिणी कमरे में आई। अजय को उस अवस्था में

देखकर वह छूटते ही बोली—"तुम अभी घूम ही रहे हो। स्नान क्यों नहीं करते। मेरा साग हो गया, तवा भी रख दिया।"

यह सुनकर अजय ने जाने कितनी गहरी दृष्टि से रोहिणी की ओर देखा।

रोहिणी ने फिर कहा—"नौ बज गए हैं। मुझे भी पाठशाला जाना है।"

"भाभी," अजय तब दूसरी ओर देखता हुआ बोला, "सोचता हूँ, मैं नौकरी नहीं कर सकूँगा। मुझे नहीं करनी चाहिए। जो मैंने सोचा था, ऐसे वह नहीं फलेगा। नौकरी मुझे बाँध लेगी और मेरी आत्मा को झुका देगी।"

यह सुनते ही रोहिणी चकित हो गई। वह अचरज में डूब गई, और हँसी भी। वह तब अजय की ओर देखती हुई बोली—"जरा सुनूँ तो, तुमने क्या सोचा है जो नहीं फलेगा।" क्षण-भर बाद ही उसने कहा, "मुझे तो आज तक भरोसा नहीं कि तुमने भी अपना कोई पथ निर्मित किया है। देखती हूँ, जैसे लहरों पर तिनका तैरता है, सच वैसे ही तो हो तुम! तुम्हारा क्या भरोसा है। कोई है तुम्हारी बात का ठौर-ठिकाना! और कहते हो कि मैं हूँ देश-सेवक, मैं हूँ समाज-प्रेमी···।"

कहते हुए रोहिणी और भी अधिक अजय के समीप हो गई। वह उसकी ओर देखकर बोली—"तुम बताओ तो, क्या ऐसे ही होती है जीवन की पूर्ण राह? तुम तो मुझे कहते थे जिसकी न जड़ है, न साख! और तुम? तुम?"

"भाभी, यह कुछ नहीं। हाँ, ऐसा नहीं!"

भाभी मुसकराई। वह बोली—"अभी हवा की बात करते हो अजयबाबू! लगता है तुम जीवन की जटिलता को अभी तक नहीं समझे।"

यह सुनकर अजय ने जैसे बात को टालने के अभिप्राय से कहा—"अच्छा, अच्छा, मैं नौकरी करूँगा। पैसा लाऊँगा। बस, अब तो खुश हो। देखता हूँ, मैं सभी ओर से बँधा हूँ; मैं मुक्त नहीं हूँ।"

"और जो कल बहूरानी आयगी, वह?"

"हाँ, वह भी आये बहूरानी, पर दुनिया में एक तुम भी तो हो जो सभी की तरह वैसी ही निर्मम और पत्थर दिखाई देती हो। तुम भी नहीं जानतीं कि क्यों करे नौकरी ! आदमी कोल्हू की तरह पिसे और पेट पाले, जैसे यही हो जीवन का अर्थ। जन्म-भर कमाओ, पेट भरो, जो बचे उसे ठूँस-ठूँसकर घर में भरो। और जब थक जाओ, दम फूल जाय, तब चुपचाप ही कूच कर जाओ। सभी की यह राह है। और अचरज है कि लोग तब भी भूखे हैं। जिनमें बल है, जो चुस्त-चालाक हैं, वे लूटते हैं और अपना पेट भरते हैं। रात देखा कि खुली नदी थी, सब जानवर आये और अपनी प्यास बुझा गए। एक हम हैं आदमी, दुनिया-भर के अक्लमन्द, जो इसी में उलझे हैं, इसी पर लड़ते हैं और एक-दूसरे का खून करते हैं। मैंने तो चाहा था कि पेट को मुक्त कर दूँगा, मैं अपने हृदय को खोलकर दुनिया के समक्ष आऊँगा। किन्तु हवा का झोंका आया है, जिसने मुझे कहीं-का-कहीं फेंक दिया है।" यह कहते हुए उसने खूटी से धोती उतार ली और स्नान करने के लिए चल दिया।

तभी रोहिणी ने अपनी देर की रुकी हुई साँस छोड़ी और बोली—"तुम मत करो नौकरी। तुम···!"

"इतना कहना-भर तो काफी नहीं है भाभी, मेरे अन्दर क्या है, तुम्हें नहीं दिखा पाता—नहीं कह पाता।"

"कहती तो हूँ, तुम मत जाओ।"

"हाँ भाभी, लोग कहते हैं कर्म यह है, जीवन का कर्म यह है, सो अजय करेगा। यह भी आदमी है। यह भी हाड़-माँस का पिण्ड है, जिसका लुढ़कना ही स्वभाव है।" यह कहते हुए वह कमरे से बाहर निकल गया।

उसी समय रामू की माँ ने पुकारकर कहा—"यह तवा जल रहा है बहू !"

तब रोहिणी जाने कैसे भारी मन से रसोई की ओर बढ़ गई।

अजय स्नान करके आया। शीशे के सामने खड़े होकर बाल ठीक करके रसोई में पहुँचा। रोहिणी ने खाना परोस दिया और अजय ने थाल को अपनी ओर सरकाकर खाना आरम्भ कर दिया। उस समय न

रोहिणी ने कुछ कहा और न अजय ही कुछ बोला। कुछ ही देर में वह खाना खाकर उठ गया।

तब हठात् रोहिणी ने पूछा—"बस ?"

"भाभी बस !"

मुँह साफ करके वह कमरे में पहुँचा, कपड़े पहने और सिर पर हैट रखकर चलने को प्रस्तुत हुआ।

उसी समय रोहिणी कमरे में गई। अजय को तैयार देखकर वह बोली—"पैसे न हों, तो लेते जाओ। भूख लगेगी, कुछ मँगा लेना। लो, यह पाँच रुपये का नोट।"

अजय ने नोट ले लिया और रोहिणी को देखकर हँस दिया और चला गया।

तब उसके पीछे ही रोहिणी ने मन में कहा—'यह अजय जो सोचता है, उसे कहते क्या कभी रुका है। सच ही तो कहता है, नौकरी भी गुलामी है, जिसे मजबूरन करना पड़ता है। पेट भी एक आफत है, जो सदा आदमी को दोजख की ओर खींचता है···।'

रसोई में आकर उसने स्वयं भी खा लिया और फिर बचे हुए भोजन को रामू की माँ को सौंप दिया। उसने भी कपड़े बदल लिये और मिल-एरिया को जाने के लिए अपना झोला उठा लिया। लगभग एक घण्टे में वह पाठशाला पहुँच गई। दो दिन बाद वह वहाँ गई थी, इसलिए उसके पहुँचते ही बच्चों की भीड़ उसके आस-पास लग गई थी। उसे प्रश्नों पर प्रश्न के उत्तर देने की जो आफत आई थी वह बचना चाहकर भी उससे नहीं बच सकी थी। "तुम कल क्यों नहीं आईं ?···कैसे नहीं आईं ?" आदि प्रश्नों के उत्तर रोहिणी प्यार और मुसकान-भरी मुद्रा के साथ उनको दे रही थी और आगे इस प्रकार न रुकने के लिए उन्हें आश्वसित कर रही थी।

उसी समय सहायक अध्यापिका ने आकर कहा—"बड़े शैतान हैं ये बच्चे। समझाने पर भी इनके माँ-बाप इन्हें साफ नहीं रखते। मैं कल कई क्वार्टरों में गई थी। वहीं स्त्रियों को कुछ बातें बता आई थी। इन तीन बच्चों की माताओं से कहा कि इनके कपड़े साफ रखा करो। पर

बात जैसे एक कान से सुनी और दूसरे से निकाल दी। यह आज फिर वैसे ही चले आए—गन्दे और मैले···।"

रोहिणी ने कहा—"एकदम कैसे समझ पायंगे। वह देखो, सामने अलमारी में साबुन रखा है, उसे निकाल लो।"

यह कहते हुए उसने बच्चों की ओर देखकर कहा—"तुम्हें मैंने कितनी बार कहा है कि साफ रहा करो। और यहाँ आओ तुम, अरे वाह बुद्धू! सच, तू बुद्धू ही रहेगा। देख तो, कैसी नाक बह रही है।" उसके पास ही जो लड़का खड़ा था, वह होगा पाँच-छः साल का। जिसका मुँह पिचका था, पेट बड़ा था। उसी से रोहिणी ने कहा था। उसे पास बुलाया और उसकी नाक को साफ कर दिया।

सहायक अध्यापिका साबुन निकाल लाई। तभी रोहिणी ने कहा—"बुद्धू, उतारो कुरता। और तू भी उतार री सुन्दर! छिः-छिः भंगन कहीं की। जग्गू, लेखा और चमेली, लाओ, दो अपने-अपने कपड़े।"

किसी का कुरता, किसी का जाँघिया और किसी की धोती इस प्रकार कुछ कपड़े रोहिणी ने लिये और जाकर नल के नीचे डाल दिए। वह कपड़े धोने में लग गई और सहायिका पढ़ाने में।

कदाचित् अभी एक घण्टा ही हुआ होगा कि सहायिका ने रोहिणी को एक बाबू के आने की खबर दी। रोहिणी कपड़े धो चुकी थी और उन्हें सुखाने में लगी थी। साथ-साथ जो कई-एक बच्चे थे, उन्हें स्नान कराने का भी काम कर रही थी। जो बड़े थे और दस-बारह वर्ष की आयु के थे, उन्हें बस सांकेतिक ढंग से बता रही थी।

सहायिका की बात सुनकर वह जल्दी से अपने काम से छूटकर अपने कमरे में पहुँची। उसने सोचा था कि शायद महेशबाबू होंगे, पर देखा कि वह सुरेशबाबू थे। उसने जाते ही कहा—"ओह आप हैं?"

सुरेशबाबू ने रोहिणी की ओर देखा। उसी समय रोहिणी ने कहा—"यहाँ तो आप बस एक दिन ही आये थे, या आज आये हैं।"

"हाँ, मैं कुछ व्यस्त रहा, इधर भाभी!"

"और आये हो, ऐसी धूप में, ऐसी लू में?" रोहिणी ने अपने मुँह का पसीना पोंछते हुए कहा।

सुरेश ने कहा—"मुझे तुमसे कुछ कहना था। सोचा, शायद फिर न मिल पाओ तुम!"

रोहिणी ने उलाहना देते हुए कहा—"भला बिना काम के क्या आ पाते तुम! यही तो बात है, जो रोहिणी सोचती है," और उसने कहा, "ठीक ही तो है, सबको अपनी-अपनी राह है। अपने-अपने विचार हैं सबके। इसी से कल कहती तो थीं लक्ष्मी जीजी कि आदमी ईर्ष्यालु भी है।"

सुरेश ने कहा—"वह ठीक तो कहती थी आदमी ईर्ष्यालु भी है और दम्भी भी।"

"परन्तु क्यों है वह ऐसा, वह क्यों सोचता है ऐसा? बताओ तो, ऐसा क्या पा लिया है उसने?" कहते हुए रोहिणी ने सुरेश की ओर देखा।

तब सुरेश अचम्भित-सा जिस प्रकार रोहिणी की ओर देखता था, वैसे ही देखता रह गया।

रोहिणी ने फिर कहा—"आदमी का विज्ञान क्या है, मैंने एक दिन भी नहीं समझा। पर नारी की बात जानती हूँ। मैं नारी को तोड़-फोड़ करते नहीं पाती। वह ऐसा नहीं चाहती। उसमें कहाँ है भारीपन! जो है, सो ऊपर है उसके। और आदमी बोझ डालकर फिर भी दूर है। वह फिर भी किनारे पर खड़ा है। जो नारी उसी के द्वारा पानी में धकेल दी गई है, उसे डूबते देखना ही जैसे उसके स्वभाव का गुण रहा है। बताइये, यह अच्छा है क्या? यह किसी पुरुष के लिए शोभनीय है क्या?" और रोहिणी का मुँह लाल हो गया।

यह देखकर सुरेशबाबू ने नितान्त नम्र होकर कहा—"ऐसा नहीं भाभी! सच, ऐसा नहीं। पुरुष इतना क्रूर और पत्थर नहीं जितना तुम समझती हो।"

"कल क्यों चले गए थे तुम? हमारे साथ घूमने क्यों नहीं गए थे?"

"मैं यही तो कहने आया हूँ, वह कुछ नहीं था, सच कुछ नहीं।"

"भला कैसे कुछ नहीं था। वह इस रोहिणी को दिखाने के लिए था, अपमानित करने के लिए था?" कहते हुए एकबारगी रोहिणी का

गला भारी हो गया। उसने कुरसी छोड़ दी और द्वार की ओर मुँह करके फिर कहा, "तुम भी सोचते हो कि औरत की क्या जात, जैसे पानी का बबूला; जो कभी उठा और कभी बैठा।" तभी उसने सुरेश की ओर देखा और कहा, "आश्चर्य है कि तुम कैसे हो आदर्शवादी और समाजवादी ....!"

सुरेश ने खड़े होकर कहा—"तुम आवेश में आ गई हो भाभी! मेरी बात सुनो। जो कहने आया हूँ, उसे भी सुनो। अब तक जितना तुमने कहा वह तुम्हारी बात है; तुम्हारे ही मस्तिष्क की उपज है। मुझे उससे क्या? मेरा तो इतना ही कहना है कि तुम पाठशाला छोड़ दो। जो विपत्ति तुम्हारे सिर पर आती दीखती है, उसे समझकर अवश्य छोड़ दो।"

"यह क्यों? आखिर क्यों?" हठात् रोहिणी ने पूछा।

"पुलिस नहीं चाहती। मिल-मालिक भी नहीं चाहते।"

यह सुनकर रोहिणी ने नितान्त ईर्ष्यालु ढंग से कहा—"तो तुम इसीलिए आये हो? शायद मिल वालों की तरफ से आये हो।"

"मैं अपनी ओर से आया हूँ भाभी, अपनी बात लेकर आया हूँ?"

रोहिणी ने द्वार की ओर बढ़ते हुए कहा—"यह कुछ नहीं होगा, अब नहीं होगा।"

तब सुरेश ने रोहिणी की पीठ के पीछे खड़े होकर जैसे याचक के रूप में पूछा—"मेरे लिए भी नहीं होगा भाभी? भैया रमा के लिए भी नहीं होगा?"

यह सुनते ही रोहिणी ने सुरेश की ओर देखा। तभी उसने कहा—"इस प्रकार तो किसी के लिए भी नहीं होगा सुरेशबाबू! हाँ, अब नहीं होगा। रोहिणी सभी-कुछ बन सकती है, पर कायर और बुज़दिल कहलाकर जिन्दा रहना नहीं पसन्द करती, समझे!" यह कहते-कहते वह एकबारगी लाल हो गई और वहाँ से दूसरे कमरे की ओर तेजी से पैर बढ़ा दिए।

तभी सुरेश ने अपनी वाणी पर जोर देकर कहा—"तुम पकड़ी जाओगी भाभी! भाभी..."

पर यह सुनकर भी रोहिणी नहीं रुकी, वह नहीं रुकी।

निदान सुरेश वहाँ से आ गया। वह जैसे अपमानित और खोया-खोया-सा हो पाठशाला से नीचे उतर गया और कटे पेड़ की तरह अपनी मोटर में जाकर बैठ गया।

लेकिन इसके विपरीत वह रोहिणी थी, जो उसी समय दूसरे कमरे में जाकर बच्चों से हँसने लगी थी और बोलने लगी थी। उसमें जो आँधी उठी थी, और टीस थी, वह उन बच्चों की सलोनी और भोली दुनिया में बढ़ नहीं सकी थी, अपितु वह कम हुई थी, जहाँ कि कोई बच्चा हँस रहा था और कोई रो रहा था। तब रोहिणी मानो सभी-कुछ भूलकर उसी दुनिया में लीन हो गई थी।

रोहिणी के जिस व्यवहार से सुरेश को आघात पहुँचा, मानो उसके लिए वह कहीं से भी हल्का नहीं था। रोहिणी की उस उत्तेजना को देखकर सचमुच उसे आश्चर्य हुआ था। ऐसी अकल्पनीय और अप्रत्याशित रोहिणी को पाकर उसे एक क्षण के लिए भी वह दृश्य भुलाये नहीं भूला। तब उसने मन को समझाया, 'आखिर तुम कौन हो रोहिणी के! तुम पराये हो। और तुम ऐसे गये थे कि रोहिणी मान लेगी अपने जनार्दन-की बात। तुम उसे बताना चाहते थे कि मैं हूँ तुम्हारा अपना ही एक निकट का मित्र और आत्मीय!—'

सन्ध्या आ गई थी। सुरेश अपने मकान के जिस कमरे में बैठा था, अब उसकी बत्ती भी जल चुकी थी। किन्तु दिन में रोहिणी द्वारा जिस समस्या की चौड़ी-सी खाई खुद गई थी, उसे दीखा कि वह वैसी ही सपाट और निर्विकार हुई अपना मुँह बाए खड़ी थी। देर से सुरेश के मन में ऐसी अनेकानेक दुर्भावनाएं उठ रही थीं जो उसे अशान्त और अस्थिर बना रही थीं।

 सुरेश को अपना अतीत भी याद आता था, जिसमें वह रमाकान्त

और अपने सम्बन्धों को भी अभी जीवित देखता था। बाद की स्मृतियाँ भी आई गईं। उसे लगा, जैसे एकबारगी बदल गई दुनिया। किया कुछ, हुआ कुछ! कैसी विडम्बना है! कैसी अवहेलना है!···

इस प्रकार रात में देर तक सुरेश इसी एक समस्या में उलझा रहा और रोहिणी के प्रति जो-कुछ उसे नहीं भी कहना था, वह भी दुखी और खिन्न भाव से कहता रहा।

कई दिन हो गए कि सुरेश सदा की तरह अपने निजी कामों में व्यस्त है। लेकिन पहले के सदृश मित्रों में बैठना और कहीं आना-जाना अब बन्द हो गया है। वैसे जो पहले मित्र थे, उनसे तो अब प्रायः नाता टूट-सा गया है। अब मित्रों का क्षेत्र बदल गया है। जो कारबारी और एक बड़ी मिल का हिस्सेदार यह सुरेशबाबू है उसके लिए यह आवश्यक भी हो गया है। जो उसके जीवन का माप-दण्ड है, वह निश्चय ही पहले की अपेक्षा अब बदल गया है। इसलिए उसे मूर्ख विपन्न अपने बचपन के साथियों के सम्पर्क से आज भला क्या लेना है! अब तो उसे नगर के रईसों तथा अफसरों की बराबरी में बैठना है और उन्हीं से काम लेना है। लेकिन आजकल अपने मन की अस्वस्थता के कारण उसने कहीं भी आना-जाना बन्द कर रखा है। लगता है कि उसे घर में ही शान्ति और आत्म-सन्तोष मिलता है।

उन्हीं दिनों जब लक्ष्मी रोहिणी के घर आई, तो बातों-बातों में वह बोली—"जाने क्या बात है, उस दिन से नहीं आये हैं सुरेशबाबू, बुलाने पर भी नहीं आये हैं। दिखता है, वह अब हम लोगों में नहीं आना चाहते, वह दूर रहना ही पसन्द करते हैं।"

रोहिणी ने यह सुन लिया और जैसे अपने पेट के गहरे-से-गहरे अंश में उतार लिया। उसने अपना मत प्रकट नहीं किया।

लक्ष्मी ने फिर कहा—"और ठीक भी तो है भाई, हमारी उनकी समता ही क्या? वह बड़े हुए; अपने कारोबार के सम्भालने वाले हुए। वह अब हम लोगों में नहीं आयंगे। वह तो अब निपट उजाली और पैसों की दुनिया में बसेंगे और रहेंगे।" और उसने कहा, "चलो, रहें

वह ! वह खुश रहें। हमारा क्या, कट ही जायगा यह जीवन ! जो रोते कटे तो, हँसते कटे तो।"

लक्ष्मी चली गई। बस रोहिणी थी, जो बरबस लक्ष्मी द्वारा कही बात में उलझी, तो उलझी ही रही ? अजय अभी दफ़्तर से नहीं आया है। रामू की माँ भी कहीं गई है। तब अकेले में जो उस दिन की बात थी वह फिर रोहिणी के सामने आ गई। वह उसी बात पर टिक गई और जैसे प्रत्यक्ष ही उस बात में वह अपना ही दोष देखने लगी। इसी से वह अपने-आप बोली—'सुरेशबाबू की क्या जरा-सी बात थी कि जिस पर तू इतनी कुपित हुई थी। हाय ! हाय ! सचमुच, तब तू इतनी विवेक-हीन बन गई थी ! निश्चय ही उस क्षण तू जैसे यह भूल गई थी कि यह वह सुरेशबाबू थे, जो तेरे स्वर्गीय पति के मित्र और तेरे भी आत्मीय बन सके थे। पति की मृत्यु के बाद जो उदार और सहायक बनकर तेरे पास आये, वही तो यह सुरेशबाबू थे। जो अब यों दूर हुए, वह तेरी ही उपेक्षा के कारण तुझसे दूर हुए। और तभी उसने नितान्त दीन और खिन्न हुए स्वर में मन-ही-मन फिर कहा, 'यह अच्छा है क्या रोहिणी, यह तेरे लिए शोभनीय है क्या ! रुपया लौटा दिया, आगे उनकी सहायता लेने से भी इन्कार कर दिया, किन्तु इससे पूर्व सुरेशबाबू ने जो भी सद्भावना तेरे लिए अर्पित की, बता तो, क्या उससे भी तूने मुँह मोड़ लिया। दिखता है अब तूने नितान्त कृतघ्न होकर उनकी भावना को हृदय से भुला दिया।'

इस प्रकार रोहिणी ने सारा आरोप बरबस ही अपने सिर ले लिया। वैसे उसे उसी दिन से इस बात का ध्यान था कि सुरेशबाबू पाठशाला में आये, जो कुछ कहने और सुनने आए उसे नहीं सुन पाया। न उनसे अपनी स्थिति के विषय में ही कुछ कह पाया।

और अब आई लक्ष्मी जीजी, जो कह गई और उसे सुना गई कि सुरेशबाबू नहीं आते हैं, जो अब नहीं आना चाहते हैं। इसी से वह एकबारगी झल्लाकर बोली—'अरी, रोहिणी तू ! ऐसी तू !'

तब उसी समय रोहिणी में इच्छा जगी कि वह सुरेशबाबू के पास जाय, उनसे कहे और विनीत होकर उन्हें समझाये—'सुरेशबाबू बताओ

तो, क्या तुम भी अपनी इस भाभी से सन्तुष्ट नहीं हो। इस अभागी रोहिणी को क्या तुम भी इतनी हीन और याचक देखते हो। इसे अपने पैरों पर चलने दो। इसे अपनी जीविका के साथ जनता-जनार्दन की सेवा में भी योग देने दो भाई! अब इसे इसी प्रकार जीने दो। सबकी तरह इसे भी अपना जीवन सफल और कर्मण्य बनाने दो सुरेशबाबू!...'

अपने इन्हीं विचारों को लिये-लिये रोहिणी उठ खड़ी हुई। वह मकान बन्द करके सुरेशबाबू के घर की ओर चल पड़ी। रास्ते में ही वह सोचने लगी—'मैं सुरेशबाबू को समझा लूँगी। भला, मैं यह कैसे चाहूँगी कि जो मेरे पुराने आत्मीय हैं, वे छूट जायं और मुझसे दूर हो जायं! न, मैं ऐसा एक क्षण के लिए भी पसन्द नहीं करूँगी। ऐसी क्षुद्रता मैं अपने जीवन में नहीं लाऊँगी।'

सुरेशबाबू के मकान पर पहुँचने पर नौकर ने बता दिया कि उस कमरे में हैं छोटे बाबू! तब रोहिणी ने उसी कमरे के द्वार पर जाकर बाहर से पुकारा—"सुरेशबाबू!" और रोहिणी अन्दर चली गई। वह सुरेश के पास पड़ी हुई दूसरी कुरसी पर जाकर बैठ भी गई।

सुरेश कह रहा था—"ओह भाभी, तुम!"

रोहिणी ने स्वतः ही कहना आरम्भ किया—"सुना है कि तुम नाराज हो, मुझसे खिन्न हो! उस दिन जो तुम पाठशाला में गए और मेरी अकारण पैदा हुई उद्विग्नता को देखकर चले आए। उसके बाद से न आये हो, न मिले हो।" और उसने पूछा, "बताओ, क्या ऐसे ही तुम दूर रहना चाहते हो? देखती हूँ, अब तुम बड़े आदमी हो शायद इसी से हम छोटे आदमियों में नहीं बैठना चाहते हो, क्यों?" और उसने कहा, "सुरेशबाबू, पैसा तो कोई भी पा लेता है। कैसे भी पा लेता है। परन्तु जो उदारता है, जो हृदय की विशालता है, भला उसे हर कोई कहाँ पाता है। मैंने आज तक समझा कि तुमने वही पाया है। लेकिन दीखता है अब तुम्हारा यही मन-आत्मा चाँदी की चादर से ढक गया है। इसी से, मैंने आज पहले-पहल तुम्हारे इस द्वार पर आकर तुमसे यह कहना चाहा है कि तुम इस भाभी को भूल न जाना। इसे

जिस प्रकार देखते आये हो, उससे विमुख मत हो जाना।"

"तो बात क्या है भाभी जी!" हठात् सुरेश ने अपने हाथ में ली हुई किताब को बन्द करके मेज पर रखते हुए उसने अपनी बात इस प्रकार कही, "इस जीवन में आदमी को नित नये मित्र और परिचित मिलते हैं। जिनमें से जो पुराने हैं वह स्वभावतः पीछे छूट जाते हैं और जो नये हैं वह साथ रहते हैं। बस, यही तो बात है मेरी। मैं रमाकान्त का मित्र था, उसी नाते तुमसे भी परिचित हुआ था। वह बेचारा दूर हुआ तो समझो हमारा परिचय और मिलन भी अब अन्तिम हुआ। यह समाप्त भी हुआ भाभी जी!" यह कहते हुए सुरेश खड़ा हो गया और सामने खुली हुई खिड़की के पास पहुँच गया।

उसी के पीछे ही रोहिणी ने खड़े होकर कहा—"मैं क्षमा माँगने आई हूँ सुरेशबाबू!"

यह सुनकर सुरेश ने जैसे उस दिन के अपमान को सामने मूर्तिमान पा, नितान्त उपेक्षा की हँसी में रोहिणी को देखकर कहा, "चलो बात भी कुछ हो! जो आई और गई हुई," और उसने कहा, "मैं तुम्हारा भला लेकर गया था, जिसके बदले में तुम्हारे हाथों अपने ऊपर फेंका हुआ पत्थर लेकर लौट आया था। जो ठीक भी था। तुम्हें वही शोभता था। आखिर मेरे पास एक बड़ा-सा स्वार्थ जो था। और शायद तुमने सोचा कि मेरा दुश्मन है सुरेश। सो ठीक ही है। अच्छा भाभी जी, लो आज क्षमा कर जाओ। अब सुरेश भूलकर भी तुम्हारे द्वार पर नहीं जायगा। और तुम कहती हो, पैसा! हाँ, यह तो मेरे पास है। जाने कैसे है। कदाचित् इसी ने मुझे तुम सबकी दृष्टि में हीन बना दिया है। मैं हेय हूँ। लेकिन मैं पूछता हूँ, फिर क्यों इस पैसे के पीछे दौड़ते हैं तुम्हारे साथी। वे सब भी तो पैसे की चिन्ता में विकल रहते हैं। इसी के लिए अजयबाबू ने नौकरी की है। यही चाहता है तुम्हारा भैया! और महेशबाबू तो हैं ही इसके सदा से भूखे, जो सदा इस पैसे को पाप कहते हैं और अस्पृश्य कहते हैं। वे सब जो···।"

"तुम अपनी ही कहते जाओगे या कुछ मेरी भी सुनोगे सुरेशबाबू! दिखता है, तुममें जो क्रोध है उसे यों निकालकर छोड़ोगे।"

"जी, सच कहता हूँ, मैं अपने पिता के साथ पैसा पाप से कमाता हूँ ! मैं पापी हूँ । मैं तुम्हारी मण्डली में आने योग्य नहीं हूँ ।"

"सुरेशबाबू, ओह ! ओह ! दिखता है तुम नहीं रुकोगे । तुम नहीं···।" यह कहते हुए रोहिणी की आँखें भर आईं । देखते-देखते उस के आँसू गालों पर भी ढुलक पड़े ।

लेकिन सुरेश ने उस ओर न देखकर बाहर की ओर ही देखते हुए कहा—"काश, तुम पुरुष होतीं तो जानतीं अपमान क्या होता है और उसकी चोट क्या होती है !" और उसने रोहिणी की ओर देखा ।

रोहिणी ने अपनी आँखें पोंछते हुए कहा—"तो तुम सोचते हो स्त्री हृदय नहीं रखती ? क्यों ?"

"हाँ, अब समझा हूँ कि शायद नहीं रखती !" सुरेश ने एक दूसरी ओर गहरी दृष्टि से देखते हुए कहा ।

यह सुनकर रोहिणी ने खिड़की के सामने खुले आसमान की ओर देखा । उसने लम्बी साँस भरी और द्वार की ओर बढ़ते हुए कहा—"तुम भ्रम में ही रहोगे । अच्छा रहो," और उसने सुरेश की ओर देखते हुए कहा, "मैं तो जाती हूँ । तुम सुखी रहो, यहाँ से यह कामना भी लिये जाती हूँ ।" रोहिणी चली गई ।

किन्तु इसके विपरीत वह सुरेश था जो तब पत्थर की मूर्ति बना हुआ जहाँ-का-तहाँ खड़ा रह गया था । उसने चाहा कि वह रोहिणी को पुकार ले, उसको लौटा ले और अपनी मोटर में जाने के लिए कहे । वह तब भी कठिन और कठोर बना हुआ अपने-आप से बोला, 'ऊँह, औरत की जात जो ठहरी, कभी कुछ, कभी कुछ । धूर्त कहीं की । मैं व्यर्थ ही भावुक बना । शायद सोचा होगा उस दिन, कि अपने प्रेम की भीख माँगने आए हैं, सुरेशबाबू । इनसे प्रेम करते हैं, मुझ पर मरते हैं ।' कहते-कहते उसके होठों पर तीखी-सी मुसकराहट आई और उसकी आत्मा के समूचे अंश में फैल गई । वह बालों में उँगलियाँ फेरता हुआ बोला—'चलो खत्म हुआ झगड़ा । एक लड़ी थी, जो टूट गई ।'

रास्ते-भर अपने अन्दर अधीरता और अस्थिरता अनुभव करती

हुई रोहिणी जब घर पहुँची तो रामू की माँ बोली—"बैठक में देख बहू, कोई आये हैं।"

सुनकर रोहिणी उधर ही चली गई। देखा, भैया का सहयोगी वसन्तसिंह एक अखबार पढ़ने में व्यस्त था। रोहिणी को देखकर वह उठ खड़ा हुआ। नमस्ते की और जेब से एक पत्र देता हुआ बोला—"भैया आज ही बाहर चले गए हैं, यह पत्र दिया है उन्होंने।"

रोहिणी ने पत्र ले लिया।

तब वसन्तसिंह जाने के लिए उद्यत होता हुआ बोला—"अच्छा, अब चलूँ, नमस्ते।"

रोहिणी ने कहा—"नमस्ते।"

वसन्तसिंह चला गया। रोहिणी ने पत्र पढ़ना आरम्भ कर दिया। भैया ने लिखा था:—

"·····तुमसे परसों मिला था, कल भी। मुझे बाहर जाना है, यह तुमसे कह दिया था। लेकिन इस पत्र में जो मुझे कहना है, वह यह कि अब तक मैंने देखा कि जैसे तुम कुछ लिये हो। मैंने नहीं समझा कि तुम क्या चाहती हो। देखा, तुम अपने इस भाई को भी बताने में असमर्थ रहीं। कदाचित् तुम्हारी स्वाभाविक लज्जा ही इसका कारण हो। मुझे अजयबाबू से भी कुछ कहना है। वह अपने काम में लग गए हैं जो ठीक भी है। परन्तु मुझे उनसे यही पूछना है कि क्या उन्होंने अपने जीवन की राह चुन ली है इसके विपरीत, तुम उलझन में हो। जैसे पाठशाला एक आधार है कि तुम अपने को भुलाओ और भूलो। मैं कहता हूँ, यह उपादेय कहाँ है! तुम तो अब ऐसी राह पर आ गई हो जहाँ कि यह निश्चय होना है कि तुम्हें क्या करना है। अब समाज तुम्हें देखता है। धनिक-वर्ग भी तुम्हारी प्रगति देखता है कि जाने कल को क्या दिखाई दो तुम!

"·····लेकिन मैं सोचता हूँ, तुम इतनी ठोस कहाँ हो! कहाँ हो पत्थर! तुम ममतामयी हो, तुम गृहिणी हो, तुम माँ हो। अपने इस भैया की बहन तो हो ही तुम! तुममें जो उमंग है, जो आकांक्षा है, वह यों मर जाय, मेरी यही इच्छा है; सो, सोच लो तुम! अजय को बाहर

से पत्र दूँगा। मैं बाहर से ही यहाँ की मिलों पर प्रभाव डालूँगा। शायद यहाँ भी हड़ताल हो, तुम भी हड़ताल कराने वालों की नामावली में हो, इसलिए चाहो तो तुम इस पथ से हट जाओ। तुम फिर घर में बैठ जाओ।

"...तुम्हारे इस भैया ने तो बार-बार कहा है कि जीवन एक ही बार मिलता है। वैसे दो ही मार्ग हैं इसके; चाहे भोग लो, चाहे त्याग लो। तुम देखती तो हो, वह मानव सदा अतृप्त ही रहा है। इसकी निरन्तर की प्यास ने एक दिन भी चैन और आराम नहीं लेने दिया है। इसने दूसरों को भी कंगाल और भूख से ललचाए हुए कुत्ते के सदृश बना दिया है। मानव के आदर्श और सिद्धान्त सदा सिसके हैं। उनकी सदा ही हत्या हुई है।

"...और आज तुम इसी का विरोध करने चली हो। तुममें जो कोमल रस है, जो माधुर्य और नारीत्व है, उसी को लिये-लिये तुम अपने देश के प्रांगण में उठी आहों की लपटों से मिलने चली हो और उन्हें नवजीवन देने चली हो। बताओ, तुम इस पर अस्थिर तो नहीं हो? मैं जानता हूँ, तुम अपनी आत्मा की पुकार सुनती हो और उसे समझती हो। इसलिए जो तुम्हें करना है उसे स्वेच्छापूर्वक कर सकती हो।"

रोहिणी ने पत्र रख दिया। उसी समय रामू की माँ ने आकर कहा—"बहू, साग छिल गया है। अँगीठी जल गई है। अजयबाबू अभी नहीं आये हैं।" किन्तु उस समय रोहिणी का मन वहाँ नहीं था। वह कहीं और था। उसने जैसे कुछ नहीं सुना।

रामू की माँ ने फिर कहा—"उठ, बहू, यह कपड़े उतार!"

तब जैसे खोई-खोई-सी रोहिणी ने रामू की माँ की ओर देखा।

रामू की माँ ने कहा—"कोई बात है, क्या? और यह क्या बहू?" कहते हुए उसने रोहिणी के सिर पर हाथ रखा और कहा, "बताओ तो, क्या रमा याद आ गए! उठो, ऐसे भला कब तक रोओगी तुम! चलो, बदलो कपड़े। जानती तो हो, भाग्य में जो होता है वही मिलता है। मुझे तो देख, रण्डापे में उम्र काट दी। हाथी-सा बेटा भी गया।"

कहते-कहते उसका गला भर आया और आँखें चू पड़ीं।

तभी रोहिणी ने एक लम्बी साँस छोड़कर कहा—"अरी, रामू की माँ, जीवन में कहीं भी शान्ति नहीं है, कहीं भी सुख नहीं है।"

"हाँ बेटी, ईश्वर ने भी साथ नहीं दिया। उसने तुझे कुछ भी नहीं देखने दिया।" सान्त्वना के भाव में रामू की माँ ने कहा।

रोहिणी ने आँखें पोंछ लीं। और ठोढ़ी को हाथ पर रखकर बोली—"कौन जानता है। जाने ईश्वर ने अन्याय किया, या मैंने।"

उसी समय अजय आ गया। आते ही उसने रोहिणी और रामू की माँ की ओर देखा। रामू को माँ ने पूछा—"आज देर में कैसे आए भैया?"

किन्तु अजय ने यह सुनकर भी उत्तर नहीं दिया। उसने कोट और हैट खूँटी पर टाँग दिया। तभी वह वहाँ से जाती हुई रोहिणी को लक्ष्य करके बोला—"अजी सुनो तो भाभी, और तुम भी रामू की माँ; बताओ दोनों कैसे रो रही थीं। दोनों क्यों इस प्रकार बैठी थीं?"

रामू की माँ ने कहा—"कुछ नहीं भैया! बहू उदास थी, सोचती थी कुछ। शायद रमा भैया याद आ गए। दुखी ही तो पहचानता है दुःख को। मैंने भी तो इसी दुःख में सारी उम्र काट दी है और बहू की तो उम्र ही क्या है। इसने कुछ भी तो नहीं देखा। और अब होता ही क्या है। जो पंछी उड़ गया, वह फिर अब क्या आयगा डाल पर!"

यह सुनते ही अजय ने फिर रोहिणी की ओर देखा, जो खिड़की के सहारे खड़ी बाहर की ओर मुँह किये थी। अपनी बात कहकर रामू की माँ रसोई की ओर चली गई। तब सदय भाव से अजय ने रोहिणी के पीछे जाकर कहा—"भाभी!"

तब बरबस रोहिणी ने अपनी भरी और गालों पर बहती आँखों को अजय की ओर फेर दिया।

उन्हीं आँखों को देखकर अजय ने व्याकुल होकर कहा—"तुममें जो पीड़ा है, उसे क्या रो-रोकर बहा दोगी भाभी! तुमने यही सीखा है क्या अभी तक?"

 तब रोहिणी ने चाहा कि वह भैया का पत्र अजय को दे दे और

उसे बता दे कि भाभी में कौन-सी पीड़ा है और क्यों रोना चाहा है उसने; किन्तु उसने यह नहीं किया। उसी क्षण जैसे उसे स्पष्ट ही उस अपने सामने खड़े अजय में ऐसा एक भी पदार्थ या तत्व नहीं दिखाई दिया, जो निर्मोही हो, आसक्ति और जीवन की तृष्णा से हीन हो। रोहिणी को तब उस अजय में और एक साधारण नागरिक में कोई अन्तर नहीं दिखाई दिया। लोग पैदा होते हैं, पलते-पुसते और बड़े होते हैं। वह कुछ पढ़ते हैं और ब्याह-शादी करके अपनी जीविका-उपार्जन के साथ बाल-बच्चे वाले हो जाते हैं। फिर वृद्ध होकर मर जाते हैं और कोई बीच में ही लुढ़क जाते हैं। बस यही तो है आज के नागरिक का जीवन; जो ममता-मोह में पड़कर जीवन की उसी दलदल में फँस जाता है। हाँ, ऐसा ही है इस अजयबाबू का जीवन भी। इसने अब यही देखा है, यही चाहा है। इसी से उसने कुछ नहीं कहा, उसे जो-कुछ कहना था वह अजयबाबू को नहीं सुनाया। वह उसने अपनी आत्मा के उसी पीड़ित क्षेत्र में रहने दिया, जहाँ कि उसे रहना था और ऐसी ही अनेक व्यथाओं का जहाँ आवास था।

देर तक भी रोहिणी को कुछ न कहते देखकर अंजय ने अपने-आप कहा—"कैसी अजब बात है, सुबह थी हँसती हुई और अब मिलीं रोती हुई। यह भी एक पहेली है। और पूछता हूँ तो बताती नहीं कि क्यों आ गए इन आँखों में आँसू···!"

उसी समय रामू की माँ ने आकर कहा—"बहू, चलो अँगीठी सुलग गई।"

यह सुनकर जब रोहिणी जाने लगी तो बरबस अजय ने फिर उसका हाथ पकड़कर कहा—"कुछ नहीं कहोगी, कुछ नहीं बताओगी भाभी!"

छूटते ही रोहिणी ने उत्तर दिया—"कुछ हो तो बताये भाभी। और तुम्हें बताये भी क्या; जो देख नहीं पाता और समझ नहीं पाता ऐसे आदमी को क्या बताये?"

"हुँ," अजय ने साँस भरकर कहा, "और रोहिणी का हाथ छोड़ दिया। वह बोला, "ऐसी भी कोई बात है जो नहीं कही जा सकती। अच्छा, पूछ लिया तो यह कसूर हुआ, माफ करो।"

"हाँ, छूट तो तुम्हें चाहिए ! कैसे भी चाहिए !" यह कहती हुई रोहिणी वहाँ से चली गई और रसोई में जाकर अपने काम में भी लग गई। किन्तु उस प्रकार अकेला रहकर अजय जैसे और अधिक उद्वेग में भर गया, 'भाभी जिस 'मूड' में है, निःसन्देह वह भारी है।'

इतने में रामू की माँ लैम्प जलाकर लाई। अजय ने उससे पूछा—"अरी क्या हुआ रामू की माँ, भाभी क्यों हो रही है ऐसी ?"

"क्या जाने भैया, एक आदमी आया था। शायद वह ही कुछ कह गया हो।"

"कौन, भैया था क्या ?"

"ना, कोई और ही था। जब से वह गया है बहू तभी से ऐसी दिखाई दे रही है।"

यह सुनकर अजय रसोई के दरवाजे पर जा खड़ा हुआ। रोहिणी साग छोंकने में लगी थी। अजय ने पूछा—"कौन आया था भाभी ?"

"बसन्तसिंह आया था।"

"क्या कहता था ? भैया के यहाँ आने की बाबत कुछ कहा क्या उसने ?"

"नहीं। भैया बाहर गये हुए हैं।"

"बाहर ! यहाँ कब तक आने को कह गए हैं ?"

यह सुनकर रोहिणी ने अजय की ओर देखा और बोली—"अब जल्दी नहीं आयंगे। वह क्या हम लोगों की तरह हैं, जिनका काम पैसा कमाना और मौज उड़ाना ही है। और कहते हैं कि हम हैं गरीबों के हिमायती; जो ढोंग है, झूठ है सरासर....।"

उसने साग छोंक दिया, उसमें पानी भी डाल दिया और पतीली को ढककर खड़ी हो गई। फिर अजय की ओर देखते हुए उसने कहा—"हमने अपना ही सुख देखा है, इसमें ही लीन रहना चाहा है। इसी से मैं कहती हूँ लोगों को यह क्यों सुनाया जाय कि हम हैं भारत के लाल, निर्धनों के धन; और उस पर निसार हो जाने वाले माता के सच्चे सपूत। एक भैया है; वह भी दुनिया का आदमी है, उसकी भी

 इच्छाएं हैं कुछ—सबकी तरह सुन्दर स्त्री और धन की कामना वह भी

कर सकता है ! वह भी मन और आत्मा रखता है। किन्तु जानते हो उसकी आत्मा में जो चीत्कार भरा है, वही इन सबको मिट्टी समझने की प्रेरणा देता है और हेय समझता है।

"तो तुम क्या कहने चली हो? आखिर मुझसे तुम चाहती क्या हो?"

यह सुनकर तब जाने किस भाव से रोहिणी ने अजय की ओर देखा और कहा—"तुमसे तो क्या कहूँ, मैं तो अपने से ही कहती हूँ कि मैं अब नहीं चाहती इस जीवन का योग। और तुम्हीं ने आकर कहा, मुझे बताया कि यह है हमारा देश, माँ बन्धन में है, वह परतन्त्र है। निर्धन मरते जा रहे हैं, अमीर अपने स्वार्थों के वशीभूत होकर अपना पेट भर रहे हैं। बताओ यह नहीं कहा था क्या तुमने? और कहा था कि मैं देश के लिए मर जाऊँगा, मैं जनता-जनार्दन की झोली में अपने को अर्पित कर दूँगा। आज मैं पूछती हूँ, ऐसा किया क्या तुमने? कहाँ गईं वे सब तुम्हारी बातें? अब एक बैंक के मैनेजर बन गए हो। तुम दो सौ रुपये पाने लगे हो, अब तुम बड़े आदमियों में बैठते हो। अब तुम·····।"

"भाभी!" एकाएक क्षुभित होकर अजय ने क्षीण स्वर में कहा और सामने के दालान की खूँटी पर टँगी हुई गुप्ती को लपककर उतार लिया। उसका खोल फेंकते हुए उसकी चमकती धार को अपने हाथ की कलाई में घोंपकर वह बोला—"लो भाभी, मेरे इसी खून से लिख दो—धूर्त है यह, पापी है यह!"

कलाई से खून बह निकला था। वह जमीन पर भी टपकने लगा था। परन्तु रोहिणी ने जो एक बार उस ओर देखा तो फिर उधर मुँह नहीं किया। अपना मुँह फेर लिया और वहाँ से जाते-जाते जैसे अजय को लुभाते हुए कहा—"देश का जो बन्धन है, वह ऐसे नहीं टूट जायगा अजय! ऐसे नहीं पूर्ण हो सकता तुम्हारी माँ का अभाव····!"

रोहिणी अपने कमरे में चली गई और पलंग पर गिर गई। अचरज था कि वह घूँसा खाने के सदृश अधीर और व्याकुल हो गई। वह हिचकी भर-भरकर रो पड़ी।

तभी दौड़ती हुई रामू की माँ ने आकर कहा—"अरी बहू देख, अजय भैया की बात! खून-ही-खून! हाय-हाय!"

सुनते ही रोहिणी ने चीखकर कहा—"तो मैं क्या करूँ। अजय-बाबू पागल हो गए हैं।"

बुढ़िया ने दुलार के स्वर में फिर कहा—"आओ, उठो बहू! अजय अभी नादान है। वह छोटे दिल का है। उसको समझाना भी तो तेरा ही काम है। चल,उठ!" और उसने रोहिणी को उठाने के लिए सहसा हाथ खींचा।

रोहिणी उठी। वह फिर अजय के पास गई। देखा, अजय ने अपने घाव को दूसरे हाथ से पकड़ लिया था और अपना मुँह सामने की खिड़की के ऊपर रख लिया था। वह गुप्ती उससे कुछ दूर पड़ी थी, जिसकी तेज और चमकती हुई धार अब खून से लथ-पथ थी।

उसे देखते ही रोहिणी ने रामू की माँ से कहा—"इस गुप्ती को उठाकर फेंक आ रामू की माँ! आज तो अपना हाथ है क्या पता कल को मेरा गला हो। जिन व्यक्तियों का मस्तिष्क अपने वश में नहीं होता, उनको ऐसा ही करते मैंने देखा है," यह कहते हुए उसने अजय का वही हाथ पकड़ लिया और अपने हाथ की हथेली को कटे हुए स्थान पर रखते हुए अजय की ओर देखकर कहा, "जाने कैसे पढ़े हो तुम, तुम कैसे विचारक हो? अच्छा चलो, कमरे में आओ।" यह कहते हुए उसने नितान्त शान्त हुए अजय को साथ लेकर उसे पलंग पर बैठा दिया। हाथ में कपड़ा बाँध दिया और तब उसके सिर को अपनी गोद में रख कर जाने किस अपूर्व स्नेह के साथ उसने अजय के सिर पर हाथ फेरते हुए कहा—"सच, तुमने मुझे भी पागल बना दिया है। जानते हो जीवन की जिस बात को मैंने नहीं समझा था, उसी को तुमने बताया। और अब मुड़ते हो तुम। जिस पथ के तुम पथिक बने थे, उससे पीछे हटते हो। कहो तो, यह ठीक है क्या? यह तुम्हारे लिए शोभनीय है क्या? माँ ने तुमसे जो आशाएं की थीं उनको इस प्रकार तोड़ना तुम्हारे लिए उचित है क्या? ना कदापि नहीं। इस जीवन में कभी नहीं।"

अजय ने अपनी आँखें बन्द कर ली थीं। उसकी उष्ण साँस जल्दी-जल्दी निकल रही थी, जो रोहिणी के मुँह को छू रही थी। उसकी साँस भी अजय के मुँह पर आ रही थी। तब वह सब बातों को भूलकर केवल विशुद्ध नारी का प्यार लिये अजय का सिर सहला रही थी और क्षण-भर पूर्व की अपनी सारी समस्या को सर्वथा भूलकर उस अजय की सीमा में बँध गई। वह तब उसी के दुःख से दुखी और क्षुभित थी।

रात को अजय जिस कमरे में सोया था, उसके पास ही रोहिणी का कमरा था। आधी रात बीत गई थी। तब तक न अजय सोया था और न रोहिणी। दोनों ही एक समस्या में उलझे हुए थे। अजय के सामने शाम के समय रोहिणी द्वारा कही गई सब बातें घूम रही थीं।

रोहिणी सोच रही थी कि क्यों उसने अजय को छेड़ दिया। जो इतना पागल बन गया कि वह अपना खून तक निकालने पर उतारू हो गया। उसे क्या पड़ा, अजय चाहे जिधर जाय···।

लेकिन इतना कहने से ही तो रोहिणी का निस्तार नहीं था। उसे इससे आगे भी देखने के लिए जैसे उसकी आत्मा द्वारा बाध्य किया जा रहा था। उस पर भी उसका मन अटका था। एक दिन जिस अजय ने उसके यहाँ आते-आते जीवन की नई दिशा का पथिक अपने को बताया था और रोहिणी के हृदय में अपने लिए वह विशिष्ट स्थान बना सकने में समर्थ हुआ था वही अजय आज यों पथ-भ्रष्ट होकर इस रोहिणी को एक क्षण के लिए भी नहीं सुहाया। इच्छा होते भी वह इस प्रश्न को नहीं छोड़ पाई।

किन्तु उस रात में अजय का प्रश्न तो सब ओर से गौण बना था। विशेष रूप से प्रश्न तो यह था कि भैया ने अपने पत्र में रोहिणी की जिन मानसिक दुर्बलताओं को लक्ष्य किया था, वह क्या सत्य नहीं थीं,

रोहिणी को मान्य नहीं थीं ? स्पष्ट था कि रोहिणी ने उन्हें स्वीकार कर लिया था। शाम को जो भैया का पत्र पढ़ते ही रोना आया, वह सच-मुच उसके उसी पश्चात्ताप की निशानी था। रोहिणी ने तब सोचा था कि वह इतनी निकृष्ट है, अपने-आपमें स्वयं ही इतनी पतित है कि भैया को अन्त में उससे यह पूछना पड़ा और कहना पड़ा। क्या यह रोहिणी के लिए लज्जा का विषय नहीं था ?—जरूर था। इसी कारण वह रोई थी। उसने आँसुओं द्वारा ही अपनी आत्मा की वेदना को उँडेला था।

और तभी आ गया यह अजय, जो उसकी लज्जा और मानसिक दुर्बलता का आधार बना था। भैया ने उसी को लक्ष्य किया था। अजय भी अपने मार्ग से च्युत हो गया था, यही तो भैया ने अपने पत्र में लिखा था। रोहिणी को भैया के पत्र से जो ठोकर लगी, उससे उसकी आँखें खुल गईं और उसने अपने उत्तरदायित्व को पल-भर में पहचान लिया और अजय के आते ही, जो उससे कहना-सुनना था, उसे कह-सुन दिया। भैया ने अपनी जिस तीक्ष्ण दृष्टि से रोहिणी की आत्मा के द्वन्द्व को पहचाना था, उसी के प्रतिकार-रूप में भैया के बिना जाने ही उसके काम को रोहिणी ने अपने ऊपर ले लिया। उसने अपने मन में यह दृढ़ निश्चय कर लिया और अजय से भी कह दिया।

इसके साथ जो तीसरा पक्ष था—रोहिणी की समस्या में जो तीसरा प्रश्न खड़ा था वह सुरेश का था। सुरेश क्या है, वह क्या चाहता है, यह सब जानकर भी जिस प्रकार उसने पहले कभी उसे उपेक्षा की दृष्टि से नहीं देखा। उस सन्ध्या को उसके यहाँ से अपमानित होकर लौटने पर रोहिणी ने चाहकर भी नहीं चाहा कि आगे वह सुरेश को भूल जाय अथवा उसका तिरस्कार कर दे। उसने जाने अपने मन के किस आग्रह के वशीभूत हो पहले सुरेश को नहीं भूल पाया, उसे नहीं छोड़ पाया।

किन्तु उस समय, उस रात के सुनसान प्रहर में अजय अपनी जिस समस्या में अटका था, उसका तो स्थूल रूप ही यह था कि वह क्या करे, कौन-से मार्ग को स्वीकार करे। एक यह है नौकरी,—रोटी का

धन्धा,—जीवन का व्यापार। जिसमें किसी ओर भी पोल नहीं है, जो सब ओर से ठोस है। यह जीवन की मधुर और ममतामयी गत है, जिसके सभी स्वर एक-से सधे हैं, जिसकी व्यापकता सदा ही स्वीकार की गई है। जो मानव के संघर्ष, औचित्य और उत्थान की एक इकाई बनकर सदा ही प्रेरणा और शक्ति देता रहा है।

'तो क्या यही हो! नौकरी और पैसा हो!' एक अधूरे निश्चयात्मक और भ्रमात्मक भाव में उसने अपने से कहा, 'और त्याग! हाँ, तुमने चाहा कि अपने लिए धन नहीं चाहोगे, स्त्री नहीं चाहोगे। तुम अपने घर की सीमा से बाहर, विश्व के वैभव के पार उन अशान्त, विदग्ध और तड़पती हुई आत्माओं की पुकार सुनोगे।—

'हाँ, मैंने कहा था, मैंने यही चाहा था। किन्तु···

'हाँ, किन्तु इस देखने से, मेरे एक के चाहने से हुआ क्या? यहाँ एक तो रोगी नहीं, लाखों-करोड़ों इसी पीड़ा से आक्रान्त हैं। सभी ओर तो सुनाई पड़ता है—हाय रोटी!···हाय कपड़ा। लोग एक समय भी तो पेट नहीं भर पाते। बच्चे रोज मरते हैं जाने कितने? स्त्रियाँ अपनी लाज भी नहीं ढक पातीं। सभी कोई तो इस ओर देखता है, एक तुम हो, जो यही सोचते हो। इसी के लिए मरना और खपना चाहते हो। देखते हो, जिस दासता में लोग पड़े हैं तुम भी उसी में बँधे हो। और यह भी तो कितनी भयंकर बात है कि जिस समाज में तुम जन्मे और पनपे हो, जिसके साथ तुम आज अपना सम्बन्ध रखते हो, वह सड़ गया है। वह विवेक से, बुद्धि से भ्रष्ट हो गया है। वह जिस नैतिक धरातल पर टिका है, वह डगमगा रहा है। आज तो सभी की यह चाह है कि स्त्री हो, रुपया हो, भाई-बन्धु और समाज में मान हो···'

यह सोचते और मन में कहते हुए स्वतः ही अजय को लगा कि जैसे उसकी आत्मा ने मुसकराया हो, वह अजय पर हँसी हो। यह तो वह जानता है कि परिस्थिति आदमी को ढालती है और निर्मित करती है, लेकिन कोई ऐसी भी विवशता है जो उसकी गति को रोक सकती है और पथ-भ्रष्ट कर सकती है, कदाचित् ऐसा विश्वास उसमें एक क्षण के लिए भी नहीं आया। इसी से उसके मन की आँखों ने जो सूक्ष्मतर

भाव से उसकी ओर देखा और उसकी मनोदशा का दर्शन किया तो हठात् उसी ने जैसे अजय को सम्बोधित किया और कहा—'हाँ, ठीक तो है, तुम भी स्त्री, धन और मान चाहते हो। सबकी तरह तुम भी इन वस्तुओं के भूखे हो, तुम भी प्यासे हो!'—और उसने कहा—'तब दूसरों को क्यों कोसते हो—क्यों उनकी ओर उँगली उठाते हो। जब देश मरता है, कोई भूख से तड़पता है तो तुम क्यों इस झूठी और अर्थहीन सान्त्वना का ढिंढोरा पीटते हो। कहते तो हो, तुम अकेले हो और दुर्बल हो, तब भाई तुम अपनी सीमा में रह सकते हो और जो भैरव-नाद तुम सुनते हो, उसकी ओर से कान फेर सकते हो।'

तब अजय जैसे पत्थर की तरह अवसन्न हो गया था। वह ठण्डे बरफ की शिला-जैसा बिस्तर पर पड़ा था। उसके हृदय की नसों में जो तनाव आ गया था, वह क्षण-क्षण में अधिक कठोर होता जा रहा था। अजय व्याकुल हो गया।

तभी उसने सुना, जो उसकी आत्मा ने कहा—'तुम भोग और त्याग साथ-साथ कैसे पाओगे अजय! एक ही चीज लो, चाहे कोई-सी लो। भोग और जीवन की इच्छा ही लो। और जो त्याग है, जो दरिद्र-नारायण की सेवा का प्रश्न है, उसके लिए तो तुम्हें तैयार होना है, संयमी के रूप में जीवन में एकाकी रहना है भाई! यह सेवा का पथ अत्यन्त कठिन है, इसके लिए तो तुम्हें अपनी बड़ी-से-बड़ी इच्छा की आहुति देनी है। दिखता है ऐसा तुम नहीं कर सकते। शायद करना भी नहीं चाहते। जो इस विश्व का सुन्दर-सा लालच है, उसके सामने तुम आर्त्तों की पुकार को नहीं सुन सकते, उसे नहीं देख सकते। उसके लिए तो इस सुनहरे और चमकीले मानव-समाज की उपेक्षा करके ही तुम कुछ बन सकते हो और दे सकते हो।...'

उसी समय एकाएक रोहिणी ने उस कमरे में आकर अजय को चौंका दिया। उसके अन्दर जिन विचारों का अलोड़न-विलोड़न हो रहा था, वह समाप्त हो गया। तब वह एक अपराधी की तरह रोहिणी की ओर देखते हुए बोला—"भाभी, सच, मैं बहुत लज्जित हूँ, मेरे कारण तुम्हें भी क्लेश हुआ। विश्वास रखो, मुझे जो बनना था वही बनूँगा। मैं

बाबू या धनिक नहीं बनूँगा, मैं भोगी भी नहीं बनूँगा।"

"हुँ!" रोहिणी ने उसकी चारपाई के पास खड़े होकर कहा, "तो यों पड़े-पड़े यही सोच रहे हो। तुम इसीलिए जग रहे हो अभी तक।"

"हाँ भाभी, मैं सो नहीं सका। मैं तबसे अपने इन्हीं विचारों में उलझा रहा।"

यह सुनकर रोहिणी ने कुछ नहीं कहा। एकाएक उससे कुछ कहा भी नहीं गया।

लेकिन तब अजय के मन में तो और भी अधिक कोलाहल मच गया। वह चारपाई पर उठकर बैठ गया और सामने की खिड़की में से उस बाहर के तारों-भरे आसमान की ओर देखने लगा। देखा, चाँदनी छिटक रही थी। बाहर सभी ओर शान्ति थी। कहीं दूर चौकीदार का या चकवी-चकवे का बोल सुनाई दे जाता था। एक अपूर्व शान्ति का वातावरण चारों ओर बना था।

उसी समय रोहिणी ने उसे टंकोरकर कहा—"तुम अपनी मानसिक स्थिति को ठीक करो अजयबाबू! जीवन ऐसे नहीं चलता, ऐसे नहीं निभता। तुम पुरुष हो। तुम अपनी सीमा स्वयं निर्धारित कर सकते हो। तुम वही करो।"

"ना भाभी, सब झूठ है यह। मैं व्यर्थ हूँ और निस्सार हूँ। भला जो कभी मैंने सोचा था, उसे कहाँ कर पाया हूँ और निभा पाया हूँ। लगता है जैसे मैं एक ऐसा तिनका हूँ, जो पानी की कृपा पर जाने कहाँ-का-कहाँ बहा जा रहा है, जिसका कोई अन्त नहीं है—जो सीमाहीन है।"

"ऐसा मत कहो अजयबाबू!" जाने कितने गहरे दर्द से भरकर रोहिणी ने कहा, "देखते हो मुझे भी तुमसे कुछ आशा है। अपने आत्मीयों में मैंने तुम्हीं को पाया है। ऐसी हीनता की बात कहना न तुम्हें शोभता है, न मुझे सुनना ही अच्छा लगता है।"

"तो क्या करूँ मैं! नौकरी छोड़ दूँ? जो जीविका का आधार है उसे लात मार दूँ। काम एक ही होगा। निश्चय ही, दो नावों पर चलकर मेरा भला नहीं होगा; मेरा क्या किसी का भी नहीं होगा।"

रोहिणी अजय के बिस्तर पर बैठ गई। वह तब बड़ी भावमयी दृष्टि से उसे देखकर बोली—"तो बात क्या है। तुमने नौकरी को ही कैसे अपना आधार मान लिया है। तुम्हें पेट भरना है, वह तो कैसे भी भरा जा सकता है।" कहते हुए रोहिणी मुसकराई और होठों से हँसी।

अजय ने घड़ी की ओर देखा तो चार बजे थे। वह चकित होकर बोला—"लो रात-भर का जागरण हो गया आज तो। यों कल का दिन भी बेकार ही जायगा।"

रोहिणी ने कहा—"दफ़्तर न जाना।"

"नहीं जाऊँगा। अब ऐसे क्या जाऊँगा। अब तो मैं वैसे भी नौकरी छोड़ दूँगा।"

"क्यों, क्यों?" हठात् रोहिणी ने हँसकर पूछा।

अजय ने कहा—"कहा तो, नौकरी गुलामी है। कुछ पैसों की अधीनता-मात्र है।"

तब रोहिणी ने अपनी बात बढ़ाकर कहा—"पर इस अधीनता का ही दूसरा नाम जीवन है। मनुष्य की ऐसी ही प्रगति होती है। मैं तुम्हें नौकरी नहीं छोड़ने दूँगी।"

यह सुनकर जाने कितनी देर बाद अजय को हँसी आई। लगा कि उसके अन्दर जो आँधी उठी थी, वह दब गई। तभी उसने कहा—"तुम झुकना पसन्द करती हो। तुम दया और ममता का जीवन ही अपने सामने देखती हो। और इसी से तुम अपने विपक्षी को हराना चाहती हो।"

"लेकिन तुम उसे मारना—उसका अन्त करना चाहते हो, क्यों?"

"हाँ भाभी, मनुष्य ने यही सीखा है। आज तक यही निभा भी है। मनुष्य स्वार्थी है। यह कृतघ्न है। और यह मिसाल तो जानती ही हो कि लोहा ही लोहे को काटता है।"

यह सुनकर रोहिणी हँसी। वह बोली—"यह मिसाल तो सुनी। पर यह भी सुनी कि ठण्डा लोहा भी गरम लोहे को काटता है।"

अजय ने कहा—"यह होता है। पर लोहा तो लोहा है, वह चाहे गरम हो या ठण्डा। भला इस अपवाद का कौन कायल रहा है।"

यह सुनकर तब रोहिणी ने समझा कि यह अजय अब भी कठोर और पत्थर बना है। जो भयानक है। लेकिन वह डरी नहीं और हारी नहीं। वह तब भी उस हाड़-मांस के अजय में प्यार और ममता, विनय और उत्सर्ग का स्रोत ढूँढ़ती रही।

उसी समय अजय ने फिर कहा—"इस मानव-संस्कृति ने उत्थान और पतन, ईर्ष्या और द्वेष, राग और विराग की जो दुनिया देखी है, वह सब इसी के कारण तो। संघर्ष का ही नाम जीवन है। दुनिया शान्ति नहीं चाहती। यह झुकना भी पसन्द नहीं करती। पुरुष का घूँसा पुजता आया है सदा से। यहाँ इसी की शक्ति तोली गई है।"

तब रोहिणी बात सुनती हुई मुसकराती जाती थी।

अजय फिर कहता गया—"हमारे समाज ने नारी को पुरुष के सामने नत होने और इसे देवता समझने की सीख दी है। उपनिषदों और पुराणों में भी यही बात कही गई है। पर मैं पूछता हूँ, यह क्या पुरुष की अहम्मन्यता नहीं है। जो नारी उदार और ममतामयी है, वही इस प्रकार छली गई है। यह सदा ही इस उद्दण्ड पुरुष के सामने झुकी है और झुकती आई है। जो कानून हैं, वह सब इसी के लिए निर्मित हुए हैं। ऐसे पुरुष देवता हैं, क्या वह नर-पशु और राक्षस नहीं हैं, क्या ?"

यह सुनकर रोहिणी हँसी। वह तब अजय को स्नेहमयी दृष्टि से देखकर बोली—"तुम पुरुष हो, इसी से तुम नारी का दोष नहीं देख पाते ? दोष इसका भी कम नहीं है। जो पुरुष देवता था उसी को नारी ने राक्षस बनाया है, नारी ने स्वयं अपना भी अस्तित्व खो दिया है। वैसे, दोषी दोनों हैं। समाज में जो भ्रष्टता है, उसे दोनों ने निर्मित किया है। नारी के पास जो मादकता थी, वही उसने पुरुष को दी। लेकिन जो अमृत वह साथ लिये रही, उसका उपयोग नहीं कर पाई। इसी से नारी सन्दिग्ध है, वह एक समस्या है।"

देखा, इतने में सवेरा हो गया था। चिड़ियाँ चहकने लगी थीं। कौओं की काँय-काँय भी सुनाई देने लगी थी। प्रातःकाल की ठण्डी समीर भी कमरे की खिड़कियों से आकर टकराने लगी थी।

अजय ने हँसते हुए कहा—"तुमसे मैं कभी भी नहीं जीत पाऊँगा भाभी ! इस जन्म में तो कम-से-कम बिलकुल नहीं ।"

रोहिणी ने भी हँसकर कहा—"यदि ऐसा होता, तो मेरे लिए सुखकर हो जाता। बताओ तो, तुमसे कितनी बार कहा है कि पिस्तौल फेंक दो, मत रखो इसकी गोलियाँ; परन्तु तुम तो जो चाहते हो वह करते ही हो। तुम पिस्तौल का क्या उपयोग करते हो ?"

"यह समय की बात है भाभी !"

"लेकिन बताओ तो, एक पिस्तौल से तुम कितने व्यक्तियों को मार दोगे। मैं जीना पसन्द करती हूँ और तुम इसे नहीं चाहते ।"

यह सुनते ही फिर अजय का उत्साह मन्द हो गया। उसमें फिर उमस पैदा हुई। वैसे ही वह रोहिणी की ओर देखकर बोला—"जाने तुम इस जीवन को कैसे पसन्द करती हो—जो शून्य है, नीरस और उजाड़ है; जो शंकाओं और आशंकाओं के बीच टिका है; जो आज कुत्ते-बिल्लियों से भी गया-बीता बन गया है ।"

अजय की इस बदली हुई भाव-भंगी को देखकर भी रोहिणी को आगे बोलने की इच्छा नहीं हुई। वह अब सीधी राह समझौता ही चाहती थी। इसी से वह तुरन्त बोली—"इस दुनिया के पार भी कोई दुनिया है, मैं नहीं जानती। जब इसी दुनिया में रहना है, जब इसी में जीवन का उत्थान और पतन देखना है, तब कैसी उपेक्षा ? आओ अजयबाबू, इस दुर्बल रोहिणी के साथ इसी अन्धकार में। तुममें जो ईर्ष्या है, जो द्वेष है, अहं और स्पर्धा है, उसे छोड़ दो—उसे इसी अन्धकार में खो जाने दो; तुम उदार बन जाओ। हम असहिष्णु और ईर्ष्यालु बन गए हैं—हम अपने आदर्श से और आध्यात्मिक जीवन से दूर हो गए हैं अजयबाबू ! अब उसी को देखो और समझो ।"

तब आश्चर्य था कि जिस बात को सुनकर अजय ऊब गया था, उसी को रोहिणी की उस मधुर, दीन और ममतामयी वाणी से फिर सुनकर अनायास सूखी-सी हँसी के साथ बोला—"अरी भाभी, तू ! सच, तू !..."

 यह सुनते ही रोहिणी अजय से और भी सट गई। वह अजय की

उन विद्रोही और घातक भावनाओं से भरी आँखों को देखकर उन्हीं पर झुकती हुई-सी जाने किस-किस जन्म के एकत्र हुए माधुर्य को अपनी वाणी में सँजोकर बोली—"मैं नारी हूँ अजयबाबू ! मैं यही देखती हूँ, और यही चाहती हूँ।"

अजय ने आहत होकर कहा—"अच्छा भाभी, अच्छा !"

यह सुनकर रोहिणी हँसी। वह तब अजय के कन्धे पर अपना मुँह रखकर बोली—"तुम्हारे साथ यह भाभी भी तर जायगी,—इस भव-सागर से पार हो जायगी अजयबाबू!"

अजय कुछ नहीं बोला। वह एक अनोखे सुख के साथ, उस उगते आए नव-प्रभात को देखने लगा।

एक दिन रास्ते में अकस्मात् सुरेश और महेशबाबू की भेंट हो गई। देखते ही महेशबाबू ने हँसते हुए पूछा—"आजकल किस डाल पर बैठते हो भाई ? सच, उड़ते पंछी हो गए, जैसे ईद का चाँद।"

सुनकर सुरेशबाबू ने कहा—"पंछी की भी कोई डाल होती है ? जहाँ सहारा मिला वहीं बैठ गया; आज कहीं कल कहीं। वही तो बात है मेरी। तुम अपनी सुनाओ। हाँ, तुम डाल वाले हो भाई ! भाग्य-शाली हो।"

यह सुनकर महेशबाबू को और हँसी आई। उन्होंने सुरेश का हाथ दबाकर कहा—"ठीक तो है, मैं तुम्हें कहूँ तुम मुझे कहो। ऐसे दोनों मन बहलायंगे। भले आदमी आज मिले हो मुद्दत बाद। तुम्हारी भाभी ने तो एक दिन कहा भी था कि शायद नाराज हो गए हैं सुरेशबाबू। परन्तु ऐसी क्या बात ? भई, तुम बड़े आदमी हो हम-जैसे झुक्कड़ों में अब तुम शोभा नहीं पा सकते।"

सुरेश ने आतुर होकर कहा—"तुम सदा यही कहते रहते हो। ऐसी ही उलाहना देते रहते हो। जानता तो हूँ कि तुम भी वैसा देखते

हो," और उसने पूछा, "और हाल-चाल सुनाओ, भाभी मजे में हैं ?" उसने कहा—"भई, आ नहीं सका। अब घर के काम-काज में फँस गया हूँ। अब पिताजी ने मुझ पर ही अपना बोझ डाल दिया है।"

महेशबाबू ने कहा—"आओ, चलो घर चलें।"

"घर चलें ! अच्छा, चलो। अब घूमने को ही निकला था।" सुरेशबाबू ने कहा।

वहीं पास ही महेशबाबू का घर था। अचानक सुरेशबाबू को घर आया देखकर लक्ष्मी ने कहा—"आज कैसे रास्ता भूल गए सुरेश बाबू !"

सुरेश ने नमस्ते की और बैठ गया।

महेश बाबू ने लक्ष्मी को बताया—"आज भी रास्ते से पकड़ लाया हूँ। अब काम-काजी बन गए हैं सुरेशबाबू।"

लक्ष्मी ने इस बात का समर्थन करते हुए कहा—"ठीक तो है, बड़ा घर ठहरा। कार-बार भी बड़ा ठहरा !"

"तुम भी महेशबाबू के स्वर में बोल रही हो भाभी ! अच्छा, भई बोलो," सुरेश कहने लगा, "अभी रास्ते में जो मैंने कहा, भला उस पंछी का क्या, जो दिन-भर हवा के झोंके खाकर, आँधी और तूफान सहकर, किसी सूखी डाल पर बैठ जाय और रैन-बसेरा करके फिर उड़ जाय; कहो तो उसकी बात, जिसका न कोई साथी है न मीत, ऐसा ही तो हूँ मैं ! और आप दोनों कहते हैं कि मैं भाग्य लिये हूँ, मैं पूर्णता पाये हूँ।"

यह सुनकर लक्ष्मी ने समझा कि जैसे इस सुरेशबाबू के दिल में दर्द है, टीस है और व्याकुलता भरी है। और उसे यह समझने में देर नहीं लगी कि क्यों है इनके मन की ऐसी स्थिति। तब निरुद्देश्य ही उसने ममता और सहानुभूति के साथ सुरेशबाबू की ओर देखा और कहा—"यह तो सभी की बात है सुरेशबाबू ! यह सभी के जीवन की बात है।"

यह सुनकर सुरेश तब सूखी-सी हँसी हँस दिया।

 लक्ष्मी ने फिर कहा—"अब तुम विवाह कर लो सुरेशबाबू !"

सुरेश ने कहा—"हाँ, कर लूँगा।"

"नहीं, अब 'कर लूँगा' नहीं, कर लो। तुम एक साथी चुन लो।" लक्ष्मी ने फिर कहा।

सुरेश ने कहा—साथी की बात भी तब तक ही सुन्दर है, जब तक कि वह दूर है। मुझे तो लगता है कि जैसे यह भी दुकानदारी है। इसी से खिंचता हूँ। जो सूनापन है, इसमें भी एक आनन्द देखता हूँ मैं तो।"

"तुम पागल हो, यह तुमसे नहीं निभेगा।" महेशबाबू ने कहा।

सुरेश ने संयत और बँधे स्वर में कहा—"हाँ, कुछ-न-कुछ तो पागल हो ही चला हूँ। अभी-अभी तो मैं दुनिया को कुछ समझने लगा हूँ।"

यह सुनकर लक्ष्मी और महेशबाबू ने थोड़ा-सा हँस दिया। महेशबाबू ने कहा—"जिस दुनिया की तुम बात कहते हो, वह तो हम सबसे मिलकर बनी है भाई! तुम इससे बाहर नहीं जाओगे। यही तो दर्पण है, जिसमें तुम भी अपने को देखते हो। साथी तो तुम भी चाहते हो, जो पा सकते हो; और जो मिले उसे अपने अनुरूप भी बना सकते हो।"

लक्ष्मी ने पूछा—"रोहिणी से मिले?"

"जी, मिला था एक दिन। वैसे वह मेरे घर भी गई थीं।"

"पर तुम तो बहुत दूर-दूर होते जा रहे हो सुरेशबाबू! ऐसा भी क्या; न जोड़ते देर न तोड़ते।"

सुरेश ने कहा—"लेकिन सभी से थोड़े हो तोड़ पाया हूँ भाभी! ऐसा नहीं हूँ। इधर आ नहीं सका हूँ।"

"रोहिणी तुम्हारे पास क्यों गई थी?" महेशबाबू ने पूछा।

सुरेश ने बताया—"मैं एक दिन उनकी पाठशाला में पहुँच गया था। उनसे पाठशाला छोड़ने के लिए कहना था। यह मैं पुलिस और मिल-अधिकारियों की इच्छा जानकर कहने गया था, परन्तु मुझे अचरज हुआ कि इसी बात पर रोहिणी ने अत्यधिक उत्तेजना का भाव ग्रहण कर लिया। बात तो सुनना दूर, उन्होंने एक प्रकार से मुझे

तिरस्कृत भी किया। इसी बात के लिए क्षमा माँगने गई थीं वे।"

महेशबाबू ने पूछा—"लेकिन रोहिणी को तुमने क्षमा-दान दे दिया था क्या ?"

"क्षमा का कैसा प्रश्न, महेशबाबू ! बात यों नहीं है," सुरेश बोला, "तुम लोगों ने जो विवाह का प्रश्न रखा था, रोहिणी ने समझा कि सुरेश चाहता है। और आज इसी से सुरेश मन-ही-मन कुढ़ता है, शायद उसी की यह भावना है।"

लक्ष्मी ने कहा—"रोहिणी सरल और साफ है सुरेशबाबू !"

"शायद ऐसा ही हो। मैं भी पहले ऐसा ही सोचता था, किन्तु वह मेरा भ्रम ही निकला। रोहिणी की दृष्टि में मैं इतना नीच बन सकता हूँ, इसकी मैं कल्पना भी नहीं कर सकता था।"

महेशबाबू ने कहा—भई मेरे, तुम अब भी आवेश में हो। रोहिणी कैसे कच्चे धागे से बँधी है इसे तुम अब भी नहीं समझते। वह परिस्थितियों के फेर में पड़ी है। अनायास ही वह जिस पथ पर आ टिकी है, बताओ वह कैसे हेय है ? वह तो सभी के लिए दुर्गम है। तरुणाई की दहलीज पर पैर रखते ही वह सुहाग खो चुकी है। तुमने जो-कुछ भी उस के साथ किया शायद कभी भी वह इस आभार को भूल नहीं सकती।"

मुसकराते हुए लक्ष्मी ने कहा—रोहिणी कहीं से भी ऐसी नहीं है, जो दुर्गम और कठिन हो।"

यह अपनी दृष्टि से देखने की बात है भाभी ! कदाचित् मैं इस ओर इसलिए भी नहीं आया कि यह प्रसंग आने पर बदले में आत्म-पीड़ा और आत्म-ग्लानि के सिवा मुझे कुछ और नहीं मिलता," यह कहते हुए उसने महेशबाबू की ओर देखा और कहा, "आप भी तो पुरुष हैं, कहिये तो यदि आपके सामने ऐसी स्थिति आ जाय, तो क्या कीजियेगा; बताइये, क्या सोचियेगा ? आप जानते हैं न, मैं रोहिणी के लिए समूचा जीवन भेंट करने के लिए प्रस्तुत हुआ था, और आपकी प्रेरणा से प्रेरित हुआ था। आज जो रोहिणी को भ्रम है कि मेरे मन में उसके

हो। परन्तु यदि इस सत्य की कोई सीमा है तो मैं यह कह सकूँगा कि रोहिणी को मैंने रमाकान्त की पत्नी समझा था, मैं इसी नाते वहाँ जाता था। वैसे दुर्बल मैं भी हूँ, मैं भी लालची और अभाव-ग्रस्त हूँ। यदि आपके द्वारा विवाह की बात न आती, तो मैं सुखी था और प्रसन्न था। अब तो मैं अपने को दल-दल में फँसा हुआ पाता हूँ। जैसे मैं कहीं से टूट गया हूँ···!"

सुरेश ने फिर लाल होकर कहा—"रोहिणी ने सचमुच यह समझा कि मैं अजयबाबू और उसकी राह का काँटा बनना चाहता हूँ, मैं इसी ईर्ष्या से भर गया हूँ; लेकिन मैं तो कहता हूँ कि ऐसे विचार-मात्र को ही मैं जीवन का पाप मानता हूँ।"

"तुम्हारी मन्शा क्या है? क्या इच्छा है आखिर तुम्हारी?" हठात् लक्ष्मी ने बात को समाप्त करते हुए पूछा, "यह तो रोहिणी के मन की बात है, जिधर चाहे जाय। वह कुपथ पर नहीं है, इतना तो मैं अवश्य ही जानती हूँ।"

यह सुनकर सुरेश रूखा-सा हँस दिया।

लक्ष्मी ने फिर कहा—"ऐसा शंकित और दुविधापूर्ण जीवन ठीक है क्या? तुम्हारी दृष्टि में उपयुक्त है क्या···?"

सुरेश बोला—"यह सब ही तो जीवन का सौदा है भाभी! जब लड़ना ही ठहरा, तो चिन्ता किस बात की?"

यह सुनकर लक्ष्मी ने समझा जैसे सुरेश के अन्दर गाँठ है—जो उलझी है, जिसमें ईर्ष्या है, जलन है। इस परिणाम पर पहुँचते ही उसने महेशबाबू की ओर देखा। जैसे वे भी उसकी गहराई तक पहुँच गए थे, और उन्होंने सुरेश से कहा—"आदमी को ऐसा जीवन न तो शोभा देता है, और न आज तक वह फला ही है। तुम भ्रम में हो। बताओ तो क्या कभी रोहिणी ने तुमसे कहा था कि यदि कभी वह विवाह करेगी तो तुमसे करेगी। जब तुममें बात है, तो क्यों नहीं साफ-साफ कहते कि तुम रोहिणी को पाना चाहते हो और उससे प्रेम करते हो। बात सीधी होनी चाहिए सुरेशबाबू! तुम पैसे की महत्ता को स्वीकार न करके भी उसी को देखते हो। जिसमें सचाई भी है। तुमने समझा था

एक धनिक-पुत्र होने के कारण ही वह तुम्हारी ओर झुकी है। जो झूठ निकला। उसी रोहिणी ने तुम्हारे धन को लौटा दिया। परिणाम यह हुआ कि तुम उसी दिन से उसके प्रति उदासीन हो गए। मेरा अब भी आग्रह है कि वापस लौटिये सुरेशबाबू! रोहिणी को फिर अपने मित्र रमाकान्त की विधवा पत्नी समझने लगिए। हम सबका यही कर्म है। और यही उसके लिए श्रेयस्कर भी है।"

लक्ष्मी ने सुरेश से कहा—"आइये, चलें रोहिणी के पास। मिल आइए। जो दिलों में बात है, उसे भी मिटा आइए।"

सुरेश ने कहा—"मैं आज नहीं जा सकूँगा भाभी!"

"अच्छा, कभी अजयबाबू मिले तुम्हें?" लक्ष्मी ने पूछा।

"नहीं। एक दिन देखा था कि वह और रोहिणी कहीं जा रहे थे। रोहिणी ने मुझे देख लिया था, परन्तु मैं कुछ बोला नहीं।"

लक्ष्मी ने पूछा—"रोहिणी भी नहीं बोली थी क्या?"

सुरेश ने फिर कड़वेपन में कहा—"भला उन्हें क्यों बोलना था, भाभीजी! महेशबाबू कहते तो हैं, पर मैं इस बात को नहीं भूल पाता। शायद मैं ही दोषी हूँ और···।"

अचानक तभी रोहिणी वहाँ आ गई। सुरेश की बात वहीं रह गई। आते ही रोहिणी ने लक्ष्मी की ओर देखकर कहा—"तुम कल नहीं आईं जीजी!" और वह उसी के पास पड़ी कुरसी पर बैठ गई।

लक्ष्मी ने कहा—"कल मुझे बुखार हो गया था।"

तभी महेशबाबू ने रोहिणी की ओर देखकर कहा—"तुम बड़े ठीक समय पर आई हो। अभी तुम्हारा ही जिक्र चल रहा था। तुमसे सुरेश-बाबू आजकल कुछ नाराज दीखते हैं।"

रोहिणी ने लक्ष्मी की ओर देखते हुए कहा—"मेरा दुर्भाग्य है कि मुझसे कोई नाराज है।"

उसी समय सुरेशबाबू ने कहा—"अच्छा अब आज्ञा दीजिये महेशबाबू!"

महेशबाबू ने कहा—"सो कैसे भाई, अब ही तो असली बातें होंगी।

 तुम हो, रोहिणी है। अच्छा तो यही है कि जब किसी का किसी से स्वार्थ

नहीं है, तो मन का विकार मिट जाय—जो स्नेह था, वह अब भी रहे।"

"तो बात क्या है! जो है, ठीक है वह।" सुरेशबाबू ने कहा।

"नहीं भाई! तुम नाराज हो। भला रोहिणी में कहाँ ऐसा है कि जो चुभता है और तुम्हें बुरा लगता है।"

यह बात सुनकर सुरेश ने द्वार की ओर देखा। लगा कि वह महेशबाबू की बात से सहमत नहीं था। परन्तु उसने मन में यह दृढ़ निश्चय कर लिया था कि वह कुछ नहीं कहेगा। वह रोहिणी तो क्या उनको भी यह नहीं बतायगा कि जो उसमें गुलझट है, वह क्या है।

महेशबाबू ने फिर कहा—"जाने क्या बात है कि हम मिलकर बैठना नहीं पसन्द करते। जिस बात को तुम सबने महत्त्व दिया है, भला यह उपादेय कहाँ है?"

"तुम उल्टी बात कहते हो महेशबाबू!" एकाएक सुरेश ने उत्तेजित होकर कहा, "बताओ तो सुरेश का दोष क्या है इसमें? और जानते तो हो, मेरी और तुम्हारी बिलकुल अलग राह है। मिले तो ठीक है, अन्यथा उसका प्रश्न ही क्या है। हमारा रूप ही जुदा है। जो जहाँ है वह वहीं बना रहे यही तो हमारे जीवन की अनुकूलता है।"

यह सुनकर लक्ष्मी हँसी। उसने रोहिणी और महेशबाबू की ओर देखा। उसी हँसी को देखकर सुरेश ने फिर कहा—"तुम लोग जिस सुरेश को धनवान कहते हो, वही तो पहले अनुभव करता है कि कहीं ठुकराया तो नहीं गया है—कहीं मान खोकर तो वह जीवित नहीं बना है।"

इसी बीच रोहिणी की इच्छा हुई कि वह कुछ कहे। सुरेशबाबू की उसे एक भी बात न जँची। सभी अटपटी और निरर्थक लगी। उसने समझा यह सब मेरे लिए है और मुझे ही लक्ष्य करके यह सुनाया जा रहा है।

तब रोहिणी लक्ष्मी की ओर देखकर बोली—"अच्छा जीजी, मैं चली।"

लक्ष्मी ने कहा—"नहीं, नहीं।"

किन्तु रोहिणी खड़ी होती हुई बोली—"नहीं, तुम लोग बातें

करो। मेरे तो मतलब की बात कुछ है नहीं यहाँ।"

महेशबाबू ने कहा—"लेकिन इन बातों का तो तुम्हीं से सम्बन्ध है रोहिणी!"

"शायद हो। लेकिन मैं तो देखती हूँ मुझसे अलग की बातें हैं यह सब, जो मुझे पसन्द नहीं। मैं अधिक कहना और सोचना भी नहीं सीखी।"

उस समय सुरेश द्वार की ओर देख रहा था। रोहिणी ने फिर कहा—"मनुष्य सदा ही तिल का ताड़ बना लेता है। यहाँ भी यही है। यह मेरा भाग्य है जो ऐसा देखती हूँ और सुनती हूँ, परन्तु यह सुन लीजिये, यह मेरे लिए पाप है—अन्याय है; जो मुझ पर आँख मूँदकर किया जा रहा है। और आप सोचते नहीं, देखते भी नहीं कि यह रोहिणी बिलकुल एकाकी और निरी अशान्त है। मैं कहती हूँ, जब आप इसके घावों पर मरहम नहीं लगा सकते तो कम-से-कम नमक तो न छिड़किये। इसे वैसे ही रहने दीजिये—निराश्रित और असहाय।"

लक्ष्मी ने कहा—"हम गैर नहीं हैं रोहिणी, तेरे ही अपने हैं।"

"अपने हैं तभी तो जो अधिकार पाया उसे तोड़ा जा रहा है। नहीं तो आत्मा रोहिणी के भी पास है। अगर यह किसी के घूँसा नहीं मार सकती, तो उसके मुँह पर थूकना इसे भी आता है," कहते-कहते रोहिणी एकाएक आवेश में आ गई। उसकी आँखें भर आईं और उसी अवस्था में वह लक्ष्मी की ओर देखकर बोली "अच्छा जीजी, अब मैं चली।" और वह द्वार की ओर बढ़ गई।

द्वार तक लक्ष्मी ने साथ जाकर कहा—"कुछ और बैठती, रोहिणी! तूने गलत समझ लिया। बात क्या थी और क्या हो गई।"

रोहिणी ने कहा—"अब यही होना था जीजी! यही चाहिए भी था। वैसे मैं सुरेशबाबू की सदा ऋणी रहूँगी, आभार मानूँगी।" कहते हुए उसने लक्ष्मी को नमस्ते की और चली गई।

लक्ष्मी ने लौटकर सुरेश से कहा—"सुरेशबाबू, सुना तुमने! जो रोहिणी आज तक मीठी दिखाई देती थी, वही आज कड़वी भी दिखाई दी है, जिसकी कड़वाहट गले तक उतर गई है।"

सुरेशबाबू ने इसका कोई उत्तर नहीं दिया। कदाचित् इच्छा होने पर भी वह न दे सका, क्योंकि जो-कुछ भी वहाँ उसने सुना था वह सबको ही मिथ्या समझता था।

लक्ष्मी के घर से रोहिणी जैसे ही अपने घर पहुँची, तो अजय उसके सामने आ पड़ा। अजय को देखकर एकाएक ही रोहिणी का दिल भर आया, आँखें डबडबा आईं और गला रुँध गया। उसी रूप में उसने अजय की ओर देखा।

यह देखकर अजय ने पूछा—"क्या बात है, भाभी!"

किन्तु रोहिणी नहीं बोली। उसने दाँतों से अपने होठ दाब लिये और मूक भाव से जमीन की ओर देखा।

अजय ने फिर पूछा—"बताओ ना भाभी, क्या हुआ है तुमको?"

रोहिणी खड़ी न रह सकी। वह वहीं पास के कमरे की दहलीज पर बैठ गई और नीचे सिर झुकाकर दोनों घुटनों पर सिर रखकर फूट-फूटकर रोने लगी।

अजय अचरज में रह गया। उसका मन उद्विग्न हो उठा और व्याकुल होकर उसने फिर कहा—"कुछ बताओ तो भाभी?" कहते हुए वह वहीं रोहिणी के पैरों में बैठ गया। उसने रोहिणी की दोनों टाँगों को पकड़ लिया और बोला—"बताओ तो क्या बात हुई है?"

"अरे, तुम्हें क्या-क्या बताऊँ अजयबाबू! अब किस-किसको बताऊँ," रोहिणी ने अपनी आँखें पोंछकर लम्बी आहें भरते हुए बाहर की ओर देखा और बोली, "एक बात हो तो बताये भी भाभी, ऐसे क्या-क्या बताये," और उसने तभी झटके से अजय की ओर देखकर कहा, "यह भाभी विधवा, सूनी और एकाकी क्या हुई कि अब लगता है यह सभी ओर से छली गई। अब तो अपने भी अलग होते जा रहे हैं।"

यह सुनकर भी जैसे अजय कुछ न समझ पाया। लगा कि उसमें जो भावना थी, वह बरबस रोहिणी की बात के आगे स्वतः ही फीकी और जड़ बन गई। उसकी भाभी में जो अशान्ति और तड़प दिखाई दी, उसको शान्त करना अजय की शक्ति से बाहर की बात थी।

तब भी उसे कुछ कहना था, कहना चाहिए था। क्योंकि यह भी उसे नहीं शोभा देता कि भाभी रो रही है, वह किसी गुलझट में उलझ गई है और उसके लेखे कोई बात ही नहीं हुई। यह सोचते हुए उसने रोहिणी के घुटनों पर अपना सिर रख दिया और उसके पैर की उँगलियों को पकड़ता हुआ बोला—"भाभी, जानती तो हो इस दुनिया में कोई भी किसी का नहीं है। यहाँ सभी गैर हैं। लेकिन मैं कहता हूँ, यह कहना ही हमारे लिए वास्तविकता है क्या? हमें यही प्राप्य है क्या? यहाँ सबके अपने-अपने स्वार्थ हैं—अपना-अपना लक्ष्य है।"

"अरे, भाई तुम मेरी जगह होते तो समझते इस भाभी के मर्म को! इसके मन की व्यथा और आत्मा की तड़पन को।" कहते हुए रोहिणी ने अपने पैरों को पीछे को खींच लिया।

अजय बोला—"यह सब तो तुम्हारे मन की दुर्बलता है भाभी! तुम जो संसार में देखती और सुनती हो, बस उसी को मन में धारण कर लेती हो। भला, ऐसा कहीं निभता है। जो सुनती हो, वह तो सुनना पड़ेगा, देखना भी पड़ेगा; उससे घबराना नहीं चाहिए भाभी, धीरज से काम लो।"

उसी समय बाहर से भैया की आवाज आई। सुनते ही अजय ने चौंककर कहा—"लो, आ गए भैया। अब शान्त हो जाओ।" कहते हुए वह खड़ा हो गया और बाहर के कमरे की ओर चला गया।

अजय ने बैठक में जाकर देखा कि भैया ने एक पोटली हाथ में दबा रखी है। भैया माथे पर आये पसीने को पोंछ रहे थे। देखते ही अजय ने कहा—"नमस्ते भैया!"

भैया ने कहा—"नमस्ते। आओ अजयबाबू!"

अजय ने कहा—"दीखता है, आप सीधे आ रहे हैं। जैसे अकस्मात् गये थे, वैसे ही आ भी गए।"

यह सुनकर भैया हँसा। उसने कहा—"सोचकर गया था कि देर में आऊँगा। लेकिन आना जल्दी ही पड़ा।"

इतने में रोहिणी कमरे में आई। भैया को 'नमस्ते' करके वह भी वहीं बैठ गई।

भैया ने कहा—"ठीक तो हो रोहिणी! कुछ दुर्बल-सी दीखती हो," यह कहते हुए भैया ने जेब में से एक अखबार निकालकर रोहिणी की ओर बढ़ाते हुए कहा, "इसमें छपा है कि यह जो तुम्हारी पाठ-शाला है, उसमें सेवा और धर्म करने की आड़ में मजदूरों को भड़काने का आयोजन किया जाता है।"

भैया ने फिर कहा—"मैं इसीलिए आज यहाँ आया हूँ। पत्र में इसका प्रतिवाद मैंने भेज दिया है। लेकिन वह छपेगा भी कि नहीं, यह संदिग्ध है। हमारे पत्रकार इतने उदार कहाँ हैं! वे स्वार्थी हैं, दम्भी हैं और पूँजीपतियों के गुलाम हैं। वह अपनी वाणी बेचते हैं और आत्मा बेचते हैं। इसी से मैंने सोचा कि कहीं रोहिणी न पकड़ ली जाय। तुम्हें सावधान करने ही मैं यहाँ आया हूँ।"

अजय ने कहा—"तो क्या हुआ भैया, भाभी जेल जायंगी तो वहाँ शान्ति से रहेंगी।"

यह सुनकर अजय के साथ भैया भी हँस दिया।

भैया ने रोहिणी की ओर देखकर कहा—"सुनी अजयबाबू की बात! यह तुम्हें जेल भेजना ही चाहते हैं—इनकी यही इच्छा है।"

रोहिणी चुप थी और चुप ही रही।

भैया ने फिर कहा—"दो दिन से चने के दानों पर गुजर करता आया हूँ—भूखा हूँ, कुछ हो तो लाओ।"

यह सुनते ही रोहिणी उठी और घर के अन्दर चली गई। देखा, रामू की माँ ने साग छीलकर अँगीठी को जला दिया था। उस पर रोहिणी ने पतीली रखी और साग छोंककर आटा गूँधने के लिए रामू की माँ से कह दिया, फिर एक तश्तरी में कुछ मिठाई और पानी का गिलास लेकर उसने भैया के पास जाकर कहा—"इतने इसे खाओ भैया, खाना बन रहा है। अभी आध घण्टे में बना जाता है।"

मिठाई खाते हुए भैया ने अजय से पूछा—"तुम्हारा काम तो ठीक चल रहा है अजय !"

अजय ने कहा—"हाँ, ठीक ही चल रहा है।"

भैया ने फिर कहा—"मुझे दीखता है, जो हमारे मित्र बने थे, अब उन्हीं ने शत्रु का रूप धारण किया है। इस देश का यही दुर्भाग्य है। अपने जरा-से स्वार्थ के लिए हमने सदा से ही ऐसा खेल खेला है। इसी से मेरा तो मत है कि यह देश अपने इन दुर्दिनों को सुगमता से न तो भूल सकता है और न मिटा ही सकता है। जब भाई ही भाई के खून का प्यासा है तो इससे बढ़कर मानवी शोषण और हृदय-हीनता का और क्या उदाहरण हो सकता है। हमारी परिस्थितियाँ हमारे विपरीत हैं और दीखता है कि समस्या पहले से अधिक जटिल होती जा रही है।"

अजय ने कहा—"अभी हमारा कोई निश्चित कार्यक्रम भी तो नहीं बना है, भैया !"

सुनते ही भैया बोला—"शायद तुम्हारा अपना नहीं बना है। जो व्यक्ति कुछ करना चाहता है, वह कभी भी नहीं रुकता। इस विषय में रोहिणी से भी कुछ कहना है। मुझे दीखता है कि आप दोनों उलझन में हैं। शायद दोनों ही परवश हैं। लेकिन मैं तो कहता हूँ, यह खुशी की राह है। इस पर आओ तो ठीक, न आओ तो···"

उसी समय रोहिणी फिर रसोईघर की ओर चली गई।

भैया ने फिर कहा—"जीवन की दो ही दिशाएं हैं—जीवन और मृत्यु। दोनों ही एक-दूसरे के पास हैं और सम्बन्धित हैं। परन्तु जीवन पाकर स्वभावतः हम मृत्यु से डरते आए हैं। यह सत्य है कि हम सदा ही उससे दूर रहे हैं। लेकिन तुमने तो इस मानव का इतिहास पढ़ा है, जिसमें तुम देख चुके हो कि इस मानव ने अपने-आपको मृत्यु के मुँह में डालकर ही जीवन पाया है। जो निर्बल है, असक्त है; और जो डरपोक है, वह जीवित रहकर भी जीवन से दूर रहा है। ऐसा व्यक्ति तो सदा ही याचक और अपाहिज बना अपने सिर पर पाप का घड़ा उठाये दूसरों के सामने गिड़गिड़ाता है और जीवन की भीख माँगता है। आज

यही हमारे देश की अवस्था है, हममें यही दासता है। अन्यथा ऐसा क्या कारण है कि इस विराट विश्व का यह बड़ा-सा खण्ड यों सिसक रहा है और चुपचाप ही वह दम तोड़ रहा है···।"

अजय बाहर की ओर देखकर लम्बी साँसें भर रहा था।

उसी समय अत्यधिक गम्भीर होकर भैया ने फिर कहा—"अजय-बाबू, शायद तुम अभी नहीं समझे कि देश में जो रोदन और तड़पती हुई आत्माओं का चीत्कार भरा है, उन्हीं के चरणों में उत्सर्ग होने के लिए देश को तुम्हारी आवश्यकता है। मैं नहीं जानता कि तुमने और कौन-सी दिशा को चुना है।"

अजय ने करुण होकर कहा—"भैया, मुझे इस भाभी ने बाँध लिया है। इसका नित्य का रोना-कलपना न मुझे कुछ सोचने देता है और न कुछ करने देता है।"

यह सुनते ही भैया माथे में बल डालकर खड़ा हो गया। वह वहीं कुरसी के आस-पास घूमने लगा। उसी अवस्था में उसने एक बार अजय के सामने खड़े होकर कहा—"बस, इतनी-सी बात है अजयबाबू! मुझे दीखता है कि तुम भ्रम में हो। शायद इस भैया से यह कहने चले हो कि अपनी भाभी का भार अब तुमने अपने कन्धों पर ले लिया है। लेकिन मैं तो पूछता हूँ—तुम क्यों रोहिणी से बँधे हो? क्या तुम भाभी को प्रेम करते हो? बताओ, तुम भी प्रणय और भोग की इच्छा करते हो क्या? तुम····?"

एकाएक अजय ने आहत होकर कहा—"भैया···!"

"हाँ, अजयबाबू, तुम रोहिणी को और समूची दुनिया को धोखा दे सकते हो, किन्तु तुम अपनी आत्मा से मुँह नहीं चुरा सकते, न ही उसे धोखा दे सकते। मेरा तो यह भी मत है कि तुम अभी तक रोहिणी को नहीं समझे। वैसे मैं पत्थर नहीं हूँ, मैं भी आदमी हूँ। मैं रोहिणी की अवस्था समझता हूँ। लेकिन तुम जो हो, न उसे भूल सकता हूँ, न क्षमा ही कर सकता हूँ।"

उसी समय रोहिणी खाना लेकर आ गई। वह जब मेज पर भैया और अजय के लिए खाना रखकर जाने लगी, तो भैया ने उसे रोककर

कहा—"सुनो रोहिणी, मुझे तुमसे कुछ कहना है। वह अभी खाना खाने से पहले ही कहना है। बताओगी, अब तुम्हें क्या करना है, किस दिशा की ओर अपना जीवन ले जाना है। क्या यह सच है कि तुमने इन अजयबाबू को बाँध लिया है। यदि ऐसा है तो निश्चय ही न केवल तुमने अपने साथ, वरन् अजयबाबू के साथ भी अन्याय किया है। सच ही तुमने अनर्थ किया है।" यह कहते हुए भैया क्रुद्ध हो उठा। उसका मुँह तमतमा गया।

इससे चकित होकर रोहिणी ने अत्यन्त विनीत स्वर में कहा—"भैया, अन्याय को मैंने आज तक न देखा है, न समझा है," और तभी उसने मेज की दराज से दो घण्टे पूर्व लिखा भैया के नाम पत्र उसके सामने रख दिया और कहा, "तुम्हारी बात के उत्तर में जो-कुछ मुझे कहना है, वह इसमें लिखा है। अब मैं जाती हूँ, तवे पर परौंठा जल रहा है।"

पत्र पढ़कर भैया ने अजय की ओर देखा। उसके मुँह पर क्रोध का जो बादल मँडरा रहा था, दीखा कि वह एकबारगी दूर हो गया। हठात् वह हँस पड़ा और पत्र अजय की ओर बढ़ाकर बोला—"देखा, जो मैंने कहा वही सत्य निकला। पत्र पढ़ो। रोहिणी ने सच ही लिखा है, ठीक ही लिखा है। तुममें जो भ्रान्ति है, शायद सबसे पहले उसे रोहिणी ने ही अनुभव किया है।"

अजय ने पत्र पढ़कर रख दिया और हँस पड़ा। रोहिणी फिर खाना लेकर आई। उसे देखते ही भैया ने हर्षित होकर कहा—"रोहिणी, तुमने अपने भैया का काम स्वतः कर लिया। इसमें जो चिन्ता थी, उससे इसे मुक्त कर दिया।" कहते हुए उसने खाने का थाल अपनी ओर सरका लिया और खाना आरम्भ कर दिया।

वह जाने लगा तो रोहिणी ने नितान्त दीन और याचक की तरह उससे कहा—"मेरी ओर से भरोसा रखो भैया, मुझमें कुछ नहीं है। अब तुम्हारा ही कहना फलेगा।"

भैया के चले जाने पर अजय ने रोहिणी की ऐसी संलग्नता और विपन्नता देखकर अचरज और क्षोभ से अभिभूत हो अपने मन में कहा—'मुझे इस भाभी के प्रति कुछ अस्था है, यह मैंने व्यर्थ ही भैया से कह दिया। जाने क्यों मैंने ऐसी दुर्बलता का प्रदर्शन किया,' साथ ही वह सोचने लगा, 'क्या यही सत्य है? अब यही होगा? मैं हूँ, यह भाभी हो, जीवन का उत्सर्ग और पतन हो—शायद यही रह गया है।'

किन्तु बात उसी की तो नहीं है, न उसी पर निर्भर है। भाभी ने रोहिणी ने भला आज तक ऐसा कहा है? वह कह रहा था—'ऐसा नहीं! हाँ, नहीं!'

अचानक अजय बेचैन हो गया। उसने चाहा कि अपनी चारपाई पर जाकर गिर जाय और सो जाय। किन्तु लगा कि जैसे उसकी आँखें पत्थर बन गई थीं। उसकी पलकें अब भी सूखी ठूँठ-सी खड़ी थीं। वह उठा और रोहिणी के कमरे में चला गया। वहीं बाहर आँगन में रामू की माँ खुर्राटे ले रही थी। देखा कि अभी रोहिणी के कमरे का लैम्प जल रहा था। अजय उसके पलंग के पास पहुँच गया। उसने सोचा था कि भाभी जाग रही होगी, जरूर वह किसी विचार में उलझी होगी। लेकिन उसे सोते पाकर वह वहीं खड़ा हो गया और रोहिणी की ओर देखने लगा। रोहिणी की उन बड़ी-बड़ी आँखों पर पलकों का पड़ा हुआ परदा जाने कितना मनोरम और सुहावना लग रहा था, उसके गोरे-गोरे मुँह पर अपूर्व सौन्दर्य दिखाई देता था। कदाचित् अपने जीवन में पहली बार ही अजय ने रोहिणी के उस अकल्पित और मोहक रूप को भरी आँखों देखा और समझा था। रोहिणी इतनी रूपवती है, ऐसी अलभ्य और सुन्दर है, निश्चय ही उसे पहले इस बात का ज्ञान नहीं हुआ था। उसके जूड़े से हवा का स्पर्श पाकर जो बाल खुल-खुलकर मुँह पर आ रहे थे, वह सचमुच ही कवि की उपमा

को सार्थक कर रहे थे और रोहिणी के उन गोरे गालों पर किसी काली बदरिया के समान घिरते जा रहे थे।

अजय ने अपने जीवन में ऐसा सुख, ऐसा अन्वेषण और ऐसी प्रेरणा का आभास कदाचित् इससे पूर्व अनुभव नहीं किया था। इसी से, अजय अपने में चंचल हो उठा। उसके मानस पर जो मादकता का नशा चढ़ आया था उससे वह बरबस ही आन्दोलित हो गया। उसने चाहा कि वह भाभी को जगा दे और आज स्पष्ट रूप से उससे कह दे—'मैं तुम्हारा हूँ, भाभी! तुम्हारा अपना हूँ। अब तुम्हारी सीमा में बँध गया हूँ...।'

लेकिन आज उस रोहिणी के सौन्दर्य-घट के पास खड़े होकर भी अजय प्यासा था। वह जाने किस दुर्बलता से अपने में इतनी शक्ति नहीं पा रहा था कि रोहिणी को जगा दे और जो उसमें प्यास है, उसकी तृप्ति के लिए कह दे। जिस रोहिणी के पलंग पर वह अनेक बार बैठा था आज वह वहाँ बैठने की अपने में सामर्थ्य नहीं पा रहा था। तब वह अपने को सर्वथा दीन और याचक अनुभव करता था।

तभी अचानक रोहिणी ने करवट ली और आँखें खोलीं तथा अजय को वहाँ देखकर वह विस्मय से जाने कैसी गहरी दृष्टि से उसकी ओर देखने लगी।

अजय ने कहा—"भाभी···!"

"हाँ, अजयबाबू, तुम खड़े हो, कब से खड़े हो तुम यहाँ?" कहते हुए रोहिणी उठकर बैठ गई, उसने अपने सिर पर धोती का पल्ला कर लिया और फिर अजय की ओर देखकर जाने किस जिज्ञासा और भावना से उससे पूछा—"बताओ क्यों खड़े हो? क्यों मेरे पास आए हो तुम?"

यह सुनकर अजय ने झटके से अपना मुँह फेर लिया और जो उसमें देर की रुकी हुई साँस इकट्ठी थी, उसे भी छोड़ दिया।

रोहिणी ने फिर कहा—"मैं नहीं जानती कि आज से पहले भी तुमने कभी ऐसे इस कमरे में पैर रखा हो और मुझे सोती हुई को देखना चाहा हो। बताओ, ऐसा तुमने आज किस इच्छा से किया?"

यह सुनते ही अजय ने जाने कितनी विनयपूर्ण वाणी में कहा—"भाभी, मैं तुम्हें देखने आया था। हृदय तो तुम्हारा देखा, आज रूप देखने आया था। जिसको मैं आज तक भी न देख पाया था और न समझ पाया था, उसे आज ही तो मैं अपनी खुली दृष्टि से देख पाया। भाभी मैं···।"

"अजयबाबू!" रोहिणी ने उसे बीच में ही रोककर कहा और चाहा कि वह उस अजय के तमाचा जड़ दे और घर से जाने के लिए कह दे। किन्तु, अजय की वाणी में जिस दीनता और याचना का भाव दीखता था, उसी को लक्ष्य करके उसने अपूर्व ममता और स्नेह के स्वर में कहा—"चलो, तुमने आज देखा तो मेरा रूप! सुन्दर लगा? देखती हूँ, तुम्हें जरूर अच्छा लगा। इसे नित्य समझा करो, अजय बाबू!"

लेकिन रोहिणी की उस अवहेलनापूर्ण वाणी पर ध्यान न देकर अजय ने फिर भी अपनी बात आगे बढ़ाते हुए कहा—"तुम्हारे इस रूप के पीछे जो ज्योति है, जो ममता और प्रेम है, मैं आज उसी को पाना चाहता हूँ, भाभी! देखती हो न, मैं आज पागल हो गया हूँ। शायद तुम्हारी दृष्टि में भी भ्रष्ट हो गया हूँ। लेकिन मैं तो अपने को तुम्हारे अत्यन्त निकट और निकटतर होना चाहता हूँ। मैं दिल से यह चाहता हूँ, तुमसे यही माँगता हूँ भाभी!"

रोहिणी जिधर देख रही थी, उधर ही देखती रही। वह कुछ नहीं बोली।

अजय ने फिर कहा—"भाभी, आज अपनी जिस भावना को समेटकर मैं व्यक्त कर सका हूँ, देखता हूँ आज से पूर्व यह मुझमें कभी भी नहीं आई थी। मैंने कभी नहीं समझा, मैंने कभी नहीं चाहा कि यह अजय हो, तुम हो और जीवन का मधुर और सरसतापूर्ण विहाग हो। शायद यह मेरे अन्दर ही था, जो आज अपने-आप ही तुम्हारे सामने आ गया। मैं इसे नहीं रोक पाया। यह होगा, तो अजय होगा। नहीं तो, ऐसे तो यह अब नहीं रहेगा। इस दुविधापूर्ण जीवन का, इस लड़खड़ाती हुई दुनिया का रूप ऐसे स्थिर नहीं रह सकेगा। यह भ्रष्ट और

पतित हो जायगा, भाभी ! आज मैंने भैया से यही कहा है। सबकी तरह तुम भी मुसकराती रहो, हँसती रहो, अब मैंने यही चाहा है। तुमने जो भैया को पत्र लिखा, वह क्या तुमने अपनी स्वभावगत भावनाओं से प्रेरित होकर ही लिखा है। उसमें सार कहाँ तक है—वास्तविकता कहाँ तक है भाभी! जो तुम्हारे हृदय में है, वह और है। वह तो···!"

तब हठात् रोहिणी ने ऊपर मुँह उठाकर अजय की ओर देखा और कहा—"तुम कहे ही जाओगे अजयबाबू ! तुम अपनी वाणी को विराम नहीं दोगे ?" कहते हुए उसका स्वर भारी हो गया। उसने जैसे नितान्त विपन्न भाव से सामने की ओर देखकर फिर कहा—"सबकी तरह एक तुम भी हो, जो मन में आता है, उसे कहोगे और मुझे सुनाओगे। कदाचित् तुम सोचते हो कि भाभी नहीं जानती, नहीं समझती तुम्हारा मर्म। ऐसे तुम्हीं एक क्यों; वह सुरेशबाबू हैं, जो समझते हैं कि रोहिणी विधवा है, सुन्दर है, मोहक है और लावण्यमयी है···।"

और उसने नितान्त करुण हो, आँखों में आँसू भरकर तड़ित भाव से झुँझलाकर कहा—"अरे, ऐसे क्यों इस रोहिणी को आग की भट्टी में झोंकते हो अजयबाबू ! इस पर रहम करो। इसे अपने भाग्य के भरोसे पर ही जीने और मरने दो। भला ऐसे किस-किसकी ओर देखेगी यह। अब किस-किसका बोझ अपने सिर पर उठायगी। ओह," उसने अपने-आप कहा, "कैसी व्यथा है ! यह कितनी करुण और बीभत्स गाथा है इस रोहिणी की, कि जिससे न स्वयं कहा जाता है, न किसी से सुनाया जाता है।"— उसने कहा—"तभी तो सुरेशबाबू ने कहा है कि रोहिणी उनकी अपराधिनी है, रोहिणी पापिन है और घातिनी है। सो, वही अब तुम भी कहना। तुम भी ऐसे ही अपने मन की कसक निकालना और इस पर कीचड़ उछालना भाई !"

तब अजय जैसे अवाक् रह गया। वह बाहर तारों-भरे आसमान की ओर देखने लगा। मानो जो नशा था, वह उतर गया था; और वह ठीक होश में आकर, भूला-सा और अपराधी-सा वहाँ से चल दिया और अपने कमरे में जाकर बैठ गया।

 लेकिन उसके पीछे ही रोहिणी ने जाकर पूछा—"बताओगे, भैया

से तुमने क्या कहा ?" और उसने फिर कहा—"दीखता है, तुमने भी मुझे बदनाम करना चाहा है। आखिर नई बात क्या है, सबकी तरह तुमने भी स्त्री के रूप पर लक्ष्य किया है। तुमने इसी में अपनी सन्तुष्टि और महत्त्वाकांक्षा का पेट भरना चाहा है। लेकिन मैं तो कहती हूँ, लो खाओ और मुझे कच-कच चबा जाओ तुम···!"

यह सुनते ही अजय ने आहत होकर कहा—"भाभी···?"

"अजयबाबू तुमने क्या कहा है, यह शायद तुमने नहीं समझा। तुमने···!"

अजय ने तब भी दीन होकर कहा—" ऐसा नहीं है भाभी, ऐसा नहीं।"

"सुरेशबाबू भी कब थे ऐसे ? वह भी तो···।"

"पर मैं तो तुम्हारा ही आश्रित और पालित रहा हूँ भाभी ! मुझे क्षमा करो।"

तब रोहिणी ने अपने उस भाव में परिवर्तन लाकर क्षणेक सदय होकर कहा—"जब तुम जानते थे कि भाभी मेरी है—अपने ही दुःख-सुख की साथिन, तो बताओ यह नई चाह और इच्छा कैसे पैदा हो गई तुममें। मैं समझी, तुम धोखे में रहे हो। तुम निश्चय ही अपनी इस भाभी को नहीं समझ पाए हो, तुम भ्रम में रहे हो अभी तक।"

अजय चारपाई पर बैठ गया था। वह अपने दोनों हाथों की हथेली पर मुँह रखे जैसे जड़ बन गया था।

तभी उसे इस प्रकार बैठे देखकर रोहिणी ने जैसे उसके अपराध को क्षमा कर दिया; और जो उसके प्रति ग्लानि उत्पन्न हुई थी, उसे भी हृदय से निकाल दिया। तब बरबस, उसने अजय के सिर पर हाथ रख दिया और बोली "अजयबाबू···!"

यह सुनकर अजय ने अपना सिर उठा लिया, उसने अपनी भरी और रोती हुई आँखों को रोहिणी की आँखों में डाल दिया। जिन्हें देखकर रोहिणी ने आहत होकर कहा—"रोते हो ! इसी पर कहते हो कि भाभी ने रोना सीख लिया है।"

तब अजय ने फिर अपना मुँह गिरा लिया।

रोहिणी ने कहा—"मैंने समझा था कि तुम पाये हो अपने साथी, जो इस रोहिणी के अकेले जीवन के साथ निभ जाओगे। एक दिन तुम सुन्दर-सी दुलहिन लाकर अपना गृहस्थ बसाओगे और इस भाभी को भी उसमें स्थान दोगे और रहने दोगे। लेकिन मुझे क्या पता था कि तुम भी ऐसे अन्धे बन जाओगे। तुम देश-सेवा करने का ढोल पीटोगे और उसकी आड़ में जनता का प्रतिनिधि बनकर सबकी तरह जीवन का विहाग देखोगे और सुख देखोगे। यह जो तुम्हारे जीवन का विस्तृत भू-खण्ड पड़ा है, जिसे तुमने कुछ पीछे छोड़ दिया है, बताओ तो तुमने इसमें से पाया क्या है? तुमने खोजा क्या है? दिखता है जीवन में भोग, तृष्णा और स्वेच्छाचारिता को छोड़कर तुमने कुछ नहीं पाया है। जो सबने लिया है, वही तुम्हारे हिस्से भी आया है। कहो तो इससे बड़ा दुर्भाग्य तुम्हारा और क्या होगा? अच्छा, तुम इसे ही भोगो और पाओ। यह कहते हुए रोहिणी सोने के लिए अपने कमरे में चली गई उसने अजय को उसी अवस्था में छोड़ दिया। रोहिणी के जाते ही जाने अजय के मस्तिष्क में कैसा विचार आया कि उठकर उसने कपड़े पहन लिए। उसने बक्स में जो रुपये रखे थे, वह भी निकाल लिए। एक छोटे बक्स में कपड़े आदि रखकर उसने फिर बिस्तर भी बाँध लिया। फिर वह रोहिणी के कमरे की ओर गया। द्वार से ही देखा कि रोहिणी सो गई थी। उसका मुँह भी दीवार की तरफ था।

यह देखकर अजय लौटा और उसने बाहर का द्वार खोला, जूते पहने और बक्स तथा बिस्तरा उठाकर सड़क पर पहुँच गया, ताँगा लिया और स्टेशन की ओर चल दिया। निश्चय ही उसके सामने कहीं जाने का भी लक्ष्य नहीं था। स्टेशन पर ही उसने एक पत्र बैंक के नाम डालकर पन्द्रह दिन का अवकाश माँग लिया। लेकिन जाना कहाँ है, जब यह प्रश्न सामने आया तो हठात् वह कलकत्ते की तरफ जाने वाली गाड़ी का टिकट लेकर उसी में जाकर बैठ गया।

गाड़ी छूट गई और देखते-ही-देखते वह कई स्टेशन भी पार कर गई। दिन निकल आया, सूरज चढ़ गया। तब एकाएक ही अजय के मन में विचार आया कि अब भाभी कमरे में गई होगी और मुझे

वहाँ न देखकर चौंक गई होगी। जब मेरा बिस्तरा और बक्स भी उसे दिखाई न दिया होगा तो सचमुच वह सिर पकड़कर बैठ गई होगी और तभी रामू की माँ से कहने लगी होगी कि अजयबाबू गये, वह चले गए।

और उसने तभी सामने के जंगल को ओर देखते हुए कहा—"मुझे आना ही था। मुझे यही करना था। मेरी मूर्खतावश जो-कुछ कड़वाहट उत्पन्न हुई है, वह मिट जायगी। मैंने जो अनधिकार चेष्टा की है भाभी उसे भी भूल जायगी···।"

इतने में एक स्टेशन आया और निकल गया। अभी तो बहुत स्टेशन हैं, तब कहीं जाकर आयगा कलकत्ता। और उसने कहा—'भैया भी आयगा, सुनेगा तो सोचेगा; शायद जो ताड़ना दी थी उसी का परिणाम है यह···!' यह सोचते-सोचते उसने जंगल के भागते हुए पेड़ों को ओर देखते हुए कहा—'चलो, यही होना था, मुझे यही करना था। अब बड़ी भाभी और भाई को भी पता हो जायगा कि मैं वहाँ नहीं हूँ, मैं कहीं और हूँ। मैं अज्ञेय हूँ और अदृश्य-पथ पर हूँ। कभी मैं चाहता भी यही था। इसी प्रकार सबसे छूटना चाहता था सो, आज छूटा हूँ। मैं इस प्रकार दूर आया हूँ···।'

ऐसे सोचते-सोचते और अन्तर्मन्थन में लीन अजय सो गया। वह सोता ही रहा। जब कुछ देर बाद उसकी आँखें खुलीं, तो देखा कि गाड़ी पहाड़ों को पार कर रही थी। उसने चौंककर एक सामने बैठे व्यक्ति से पूछा—"क्या बजा है भाई?"

उसने कहा—"बारह।"

"बारह,—ओह!" अजय ने फिर बिस्तर पर सिर रख लिया और स्वतः ही कहने लगा—'भाभी मुझे स्वप्न में भी दिखाई दी है। वह मुझे जगा रही थी।'

तभी उसने खिड़की से झाँककर पहाड़ों को देखते हुए कहा—'परन्तु अब कहाँ है भाभी। वह तो दूर है। वह तो घर बैठी हुई सोचती होगी और निश्चय ही रोती होगी। भैया आये होंगे। लक्ष्मी

जीजी आई होंगी। और उन सबसे ही भाभी कहती होगी—जाने कहाँ चला गया, कैसे चला गया अजय।'

उसी समय उसने सुना, उसके पीछे की जगह पर बैठे आदमी आपस में कह रहे थे—"रोज मरते हैं कितने ही! कोई रोते हुए, कोई सिसकते हुए और तड़पते हुए! बीमारी है, जैसे एक आफत····।"

यह सुनकर अजय ने उनकी ओर ध्यान से देखा।

तभी उनमें से एक ने कहा—"ऐसी बहुत दिन में आई है बीमारी—ओह!"

अजय ने उनमें से एक से पूछा—"कैसी बीमारी है जी? कहाँ है?"

उस व्यक्ति ने कहा—"यहाँ से अगला ही तो स्टेशन है बाबूजी, जहाँ आस-पास के सभी गाँवों में बीमारी फैली है, जाने हैजा है या मलेरिया···।"

यह सुनकर अजय ने अपने मन में कहा—'तो तुम भी वहीं जाओ, वहीं रहो, अजय! जाकर मुरदे ढोओ और लोगों की दवा-दारू करो। ऐसे मरो तो, जियो तो···।'

वैसे बचपन में अजय डॉक्टरी और वैद्यक का कुछ-कुछ अध्ययन कर चुका है। जिसे, आज तक भी वह न उपयोग में लाया है और न उसे इसका अवसर ही मिला है। उसके सूटकेस में तब भी हैजा, मलेरिया और प्लेग को दूर करने की औषधियों का बक्स रखा था, जिसे वह अपने स्वभाववश लेता आया है।

इतने में अगला स्टेशन आ गया। अजय ने अपना सामान उतार लिया। मुसाफिरखाने में जाकर अपना टिकट बेच दिया और ताँगे में बैठकर पास ही के गाँव की ओर चल दिया। उन ऊँचे-ऊँचे पहाड़ों के बीच में जाते हुए उसका मन प्रफुल्ल और सुखी दीखता था। वह किसको कहाँ छोड़ आया है, कौन कहाँ याद करता है, तब वह इसे सर्वथा भूल गया था।

ताँगा गाँव की चौपाल पर जाकर रुक गया। लोगों ने उसके पास आकर पूछा—"बाबू आप···?"

उसने कह दिया—"डॉक्टर।"

बस, यह सुनना था कि उन लोगों ने खुशी-खुशी उसका सामान उतार लिया और बड़े दीन तथा आतुर स्वर में उसे चारों ओर से सुनाई पड़ा—"जो बच जायं, उन्हें अपनी दवा से बचाओ डॉक्टर!"

अजय ने यह सुन लिया और जाने कितनी अपार पीड़ा से भरकर उसने उन लोगों की ओर देखा। उसने उन्हें सान्त्वना दी और ईश्वर पर भरोसा करने की संक्षेप में सीख दी।

लेकिन वह तो दीन थे, आतुर थे; और व्यथित दिखाई देते थे सब लोग!

अपने कल्पनाओं से पूर्ण जिस जीवन को लेकर अजय उस गाँव में पहुँचा था, वहाँ अनायास ही उसे विस्तृत कार्य-क्षेत्र भी मिल गया। कभी उसने चाहा था कि वह मुर्दों के ढेर देखे; तड़पते हुए, सिसकते हुए और आत्म-वेदना की चीत्कारों से प्लावित मानव-हृदय के बुझते हुए चिराग़ देखे। सो, उन गाँवों में वही उसने देखा। साथ ही उसने तरुणी युवतियों का हाहाकार सुना, बच्चों का बिलखना और रोगियों का तड़पना भी देखा। मानो मृत्यु की जिस लपलपाती लौ ने उस पतंगे-रूप मानव-समाज को भस्म करना और उसका अन्त करना ही अपना एक-मात्र लक्ष्य बनाया था, उसी के आस-पास, जीवन का मोह भी उन मरते हुए माँ, बहन और भाइयों में प्रचुर मात्रा में दिखाई देता था।

अजय को गाँव में आये दो सप्ताह हो गए। अपने काम में वह इतना व्यस्त है कि न दिन को चैन पाता है न रात को। रात-दिन बीमारों की सेवा में लगे रहना ही उसका काम है। कहीं वह अपने आत्मीयों के मरने पर रोते हुओं को समझा रहा है, कहीं मुर्दे की अर्थी बँधवाकर उसे श्मशान-भूमि पहुँचा रहा है। सरकार की ओर से जो औषधि-

वितरण का काम आरम्भ हुआ, वह इतना तुच्छ और नगण्य दीखता था कि विवश होकर अजयकुमार को ऊपर के अधिकारियों के सामने कई बार इसकी शिकायत करनी पड़ी। दिखता था कि सरकार ने उसकी बात को मान लिया और वहाँ कुछ और नौसिखाये डॉक्टर भेजकर पहले से अधिक औषधि-वितरण का प्रबन्ध कर दिया। परन्तु डॉक्टरों में सेवा का भाव तो नहीं था, उन्हें तो उन गाँवों में आकर भी जीवन-सुख दीखता था। इसी से गाँव की चौपाल पर उनका अस्पताल खुलता, वहीं पर रोगियों को देखा जाता और जो औषधि देनी होती, वह दे दी जाती। बस, उन्हें तो जमींदार का दूध पीना और घी खाना अधिक पसन्द आता था। यदि किसी रोगी के घर जाना होता, तो निश्चय ही उन्हें अपने माथे पर पचासों बल डालकर उस काम को पूरा करने के लिए बाध्य होना पड़ता था।

किन्तु इसके विपरीत अजय न डॉक्टर था, न शहर का बाबू। जैसे वह उन गाँव वालों के साथ का ही एक प्राणी था। इसी से वह किसी भी मरती हुई माँ के बच्चों को गोद में लेता, दुलराता, प्यार करता और उन्हें छाती से लगाकर बड़ी चतुरता के साथ शान्त कर पाता था। जैसे वह अभी तक यही करता आया था, जैसे वह इसका अभ्यस्त बना था। दिन में कई गाँवों के चक्कर काटकर कहीं आधी रात के बाद ही वह अपने बिस्तरे पर पड़ता। तब वैसे भी वह अपने से सम्बन्धित मित्रों और आत्मीयों की याद करता था। जिनमें उसे रोहिणी का सबसे अधिक ध्यान आता, उसके बाद ही भैया का। इतने दिनों में उसने कई बार चाहा था कि वह रोहिणी और भैया को खबर दे और बुला ले। उसे अनुभव हुआ कि रोहिणी उसके काम में सहायक होगी। भैया आये तो यहाँ की परिस्थिति सँभाल लेंगे। किन्तु ऐसा विचार करके और निश्चय करके भी वह उन्हें खबर न दे सका। वह प्रमादवश ही ऐसा न कर सका था। वह डॉक्टर की अपेक्षा सेवक अधिक था, इसलिए किसी को पत्र देना तो क्या, उसे समय पर भोजन भी नहीं मिलता था—ऐसा समय ही उसके पास नहीं दिखाई देता था। परि-

 णामतः वह गाँव वालों का प्राण, उनका पथ-प्रदर्शक, सच्चा साथी और

उन्हीं के बीच का बन्धु बन गया था। सभी उससे हिल-मिलकर रहते और वह सभी के साथ मिल-बैठकर बात करना पसन्द करता था।

जब वह आया था, तब घर से तीन सौ से अधिक रुपये लेकर चला था। अब दस-बीस रुपये से अधिक उसके पास नहीं थे। वह सब रुपये कुछ मुर्दों के कफन पर, कुछ बीमारों की दवा में और कुछ अनाथों और भूखों के खाने पर उठा चुका था। उसने लोगों की इस दशा के प्रति भी जिला-कलक्टर को लिखा था। वह आठ-दस गाँवों का घेरा, वह उन लड़खड़ाते हुए जीवन और मृत्यु के द्वार पर खड़े हुए स्त्री और पुरुषों का समूह, मानो सभी तरह से दीन और याचक दिखाई देता था। वह जीवन के द्वार पर खड़ा हुआ हाहाकार कर रहा था और चिल्ला रहा था॥ बीमारी का वेग अब घट गया था। अब भी यदा-कदा कहीं से मृत्यु का समाचार आ जाता था।

अजय ने गाँव वालों को साथ लेकर सफाई का यथोचित प्रबन्ध कराया था। गाँवों के गली-मुहल्लों को उसने स्वयं अपने हाथों से साफ किया था और दूसरों से कराया था।

इस प्रकार व्यस्त रहकर भी अजय अपने सम्बन्ध में उदासीन नहीं था। वह प्रायः एक समय खाना खाता और तीसरे दिन उपवास रखता था। अथक परिश्रम और खाने की ऐसी व्यवस्था के कारण वह दुर्बल हो गया था। इसी कारण वह सूखे और धूपखाये आम की तरह निचुड़ा हुआ-सा दिखाई देने लगा था।

एक दिन जब अजय सुबह को सोकर उठा, तो उसने अनुभव किया कि उसके बदन में अकड़न और बुखार है। उस दिन वह नहीं उठ सका, वैसे ही पड़ा रहा।

इस अवस्था में बिस्तर में पड़े रहकर उसने अपने सामने नाना प्रकार के विचारों को आते-जाते देखा। वैसे जब से वह आया था अब ही उसे अपने विषय में कुछ सोचने और समझने का अवसर मिला था। कल जब एक तरुणी युवती के पति को अन्य लोगों के साथ श्मशान में फूँककर वह आया, तो कई घण्टे तक उस युवती के पास बैठा रहा था। समझाता रहा था और जीवन की निस्सारता पर उसे एक अच्छा-सा

भाषण सुना चुका था। किन्तु वह युवती क्या उसके समझाये को समझी थी, वह तब भी बराबर रोती रही थी। अजय को आज भी उसके पास जाना था। उस बेचारी में जो वेदना थी, जो तड़प थी, मानो वह तब उसके सामने मूर्तिमती हो आई थी। इसी से उसने जाने कैसे विरक्तिपूर्ण भाव से दूसरी ओर मुँह करके कहा—'सर्वत्र यही दीखता है, ऐसा ही रोदन और चीत्कार।'

और तभी उसने इसके ठीक विपरीत कहा—'वैसे कौन रोता है! जिसे देखो, अपने स्वार्थ के लिए ही रोता है।'

लेकिन दिखता था कि यह भी उसे मान्य नहीं था। इसीसे उसने कहा—'यह सेवा, यह धर्म जो तुमने पाया है, आखिर क्यों? किस लिए? स्वार्थ यह भी है। यह अजय महान् है, अद्भुत है और मानवों में श्रेष्ठ है, बताओ, ऐसा सुनना नहीं चाहते क्या तुम?' और उसने अपने में शान्त और स्थिर होकर कहा—'यह है तो वह भी है अजय! नारी है, तो उसमें रोना भी है, वह ममतामयी जो है···।'

तभी उसने अपने को लक्ष्य करके फिर कहा—'और तुम तो हो ही प्रदर्शन के इच्छुक, लोगों के आशीष के भूखे! बताओ तो, कितनों को रोक लिया है तुमने? तुम्हारी सेवा से, तुम्हारी अननुभूत दवा से क्या कोई बचा है? तुमने क्या किया है? तुम्हारे इस आदर्श ने बताओ कितनों का कल्याण किया है। और लोग कहते हैं—महान् हो तुम! अक्षय हो तुम। एक भैया है, ऐसे और भी कितने ही हैं। उन्हें कौन जानता है, कौन समझता है···?'

यह सोचते-सोचते अजय का मुँह लाल हो गया। वह रुक गया। वह बिस्तर से उठकर बैठ गया। पास ही खुली खिड़की थी, जहाँ से दूर तक खुला अन्तरिक्ष और हरा-भरा वन दिखाई देता था। उसने उसी ओर देखकर कहा—'मैं कहता हूँ, यह नहीं है जीवन का मर्म! वह मैंने अभी नहीं पाया है। स्पष्ट तो है, मैं योगी नहीं हूँ, मैं आदमी हूँ। जीवन की जो गत है, लय है, उसमें सभी स्वर हों, सभी ताल हों, मैं ऐसा ही पूर्ण जीवन चाहता हूँ। इसी से तो कहता हूँ, मैं यहाँ नहीं मरूँगा,

 मैं वापिस जाऊँगा—जाऊँगा ही। मेरा क्षेत्र यही तो नहीं है। यहाँ भी

पैसा चाहिए। यहाँ भी दीन हैं सब। सब चूस लिये गए हैं, और निरन्तर चुसते और निचुड़ते ही जा रहे हैं। जहाँ न पहनने को वस्त्र हैं न खाने को रोटी, मानो इनका जीवन ही नहीं है—ये लोग आदमी ही नहीं हैं। हाय! हाय! कहीं इस दीनता का भी अन्त है। और कहते हैं लोग कि ईश्वर एक है, वह अनन्त है, वह अविनाशी है···।'

वह कह रहा था—'जाने कैसा है वह ईश्वर! जो नहीं देखता, नहीं समझता इन लोगों की आहों का मर्म! मानो बे-जान है वह! वह सोया है, वह अचेत पड़ा है। जैसे सबकी तरह वह भी उदासीन है····।'

तभी रुँधे स्वर और भरी आँखों को लेकर उसने कहा—'मैं नहीं रहूँगा···मैं ऐसे इन्हें नहीं ठगूँगा···मैं यहाँ से चला जाऊँगा···।'

यह कहते हुए जैसे उसकी चेतना लौट आई। वह सामने के उस नीलाकाश की ओर देखता हुआ बोला—'अरे अजय, इस देवताओं की भूमि पर, इन धनिकों, इन राजा-महाराजाओं की कृपा पर—जो अन्न-दाता हैं, इस मानव के परमात्मा हैं—इन बाल वृद्ध, स्त्री और पुरुषों का जो क्रन्दन और चीत्कार तुम आज सुनते हो, यह सदा सुहाग की तरह ऐसे ही चलता चलेगा, यह नहीं मिटेगा।' यह कहते हुए वह बिस्तर पर पड़ गया। देखा कि उसका मस्तक गरम तवे के समान तप रहा था।

लेकिन इसके बाद ही वह अपनी अपंगता, शून्यता और बुखार की उष्णता को अनुभव करके मन में कहने लगा—'आज तू भी अकेला है। तू भी अपने आत्मीयों और सम्बन्धियों से यों दूर आकर पड़ा है। और सहसा उसे रोहिणी का स्मरण हो आया और उसने आनन्द से भरकर स्पष्ट स्वर में कहा—'इस अजय के जीवन में तुम आँधी के सदृश आई हो भाभी! तुम निर्मल और शान्त रही हो···।'

किन्तु तत्क्षण ही जो उसमें अशान्ति आई वह सचमुच एकाएक भीषण और दारुण बन गई। उसके हृदय की सभी नसें फूल गईं और लगा कि जो उसमें गति थी, वह बन्द होने के समीप आ गई। अपने-आप उसने यह बात कही—'भाभी, तुमने जरूर सोचा होगा कि

अजय कायर और भीरु था, जो भाग गया। लो, अब यह मर जायगा। जो मुर्दे ढोये हैं, बीमारों के पास बैठकर घण्टों बिताये हैं, उसका यह भी प्रसाद पायगा···।'

यह कहते हुए वह व्यग्र और चञ्चल हो गया। उसका मुँह सूख गया। सिर दुखने लगा और आँखों से जैसे आग का शोला निकलने लगा। उसने एक गरम आह भरी और तकिये में मुँह दे निःशक्त होकर लम्बी-लम्बी साँसें लेने लगा।

तभी कुछ आदमी उसके पास आये। वह दुःख और चिन्ता से उसकी ओर देखने लगे। यह देखकर उसने कहा—"घबराइये नहीं। मुझे बुखार है। शायद कल शाम तक उतर जायगा।"

उनमें से एक ने अजय को छूकर कहा—"आपको तो जोर का बुखार है डॉक्टर बाबू! बताइये, हम क्या करें?"

अजय ने बड़ी कठिनता से कहा—"भला आप क्या करेंगे? अच्छा, मैं पानी पिऊँगा।"

सुनते ही एक आदमी ताजा पानी लेने चला गया।

अजय ने उन लोगों की ओर देखकर फिर कहा—"अच्छा हो, मैं भी आप लोगों के कन्धों पर बैठकर श्मशान चला जाऊँ। मुझे बड़ा सुख मिलेगा इसमें।"

एक वृद्ध सज्जन ने कहा—"अरे, आप यह क्या कहते हैं डॉक्टर बाबू! सारा गाँव तुम्हारा अहसानमन्द है। हम तो बताने आये थे कि सरकार ने कुछ खाने को दिया है, कुछ अनाज भेजा है। कुछ धनिकों ने कपड़े भी भेज दिए हैं। सोचा था कि वे सब तुम्हारे हाथों बँटें।"

अजय ने कहा—"आप सोच रहे होंगे कि धनिक या सरकार अपनी जेब से देते हैं, ना भाई, वह सब तुम्हारा ही तो है—तुम्हारी ही मेहनत का कमाया हुआ है।"

"हाँ, बाबू," एक व्यक्ति ने साँस लेकर कहा, "लेकिन बड़े आदमी इतना ही कर दें, तो क्या कम है? गरीबों के लिए इतना ही बहुत है।"

यह सुनकर अजय उस मकान की छत की कड़ियों की ओर देखने लगा।

"आप कुछ खायंगे ?" एक ने पूछा।

उधर ही देखकर अजय ने कहा—"ना भाई, आज कुछ नहीं।"

"कुछ दूध ?"

"कुछ नहीं।"

"आप घबरा तो नहीं रहे हैं ? बताइए, कहाँ है आपका घर ? वहाँ खबर भेज दें। वैसे हम सब आपके सेवक हैं—चौबीसों घण्टों के ताबेदार !"

इतने में पानी आ गया। अजय ने कहा—"वह मेरा बैग उठा लो। और देखो, यह लाल शीशी रखी है, उसे भी दे दो। सिर में दर्द है।"

बैग उसके पास रख दिया गया, शीशी भी ला दी गई। जो उसमें दवा थी उसने माथे पर लगा ली। बैग खोलकर उसने एक शीशी और निकाली और उसमें से दो गोली पानी के साथ ले लीं। तब उन सबकी ओर देखकर उसने कहा—"आप चिन्ता न करें, मैं कल तक बिलकुल ठीक हो लूँगा। अभी नहीं मरूँगा।"

लोग हँसे। उनमें से एक ने कहा—"ईश्वर ऐसा न करे, डॉक्टर बाबू ! आप जरूर अच्छे होंगे, जरूर !"

अजय यह सुनकर मुसकराया। वह उन सबको विदा करके फिर अकेला रह गया। शायद अभी दो-चार मिनट ही उन व्यक्तियों को गये हुए बीते थे कि एक आठ-दस वर्ष की लड़की ने उसके द्वार पर आकर पुकारा—"बाबू···!"

तुरन्त ही अजय ने उसकी ओर देखा।

लड़की ने अन्दर आकर पूछा—"कैसे पड़े हो ? बुखार है क्या ?"

अजय ने मुसकराते हुए कहा—"हाँ रामा, मुझे बुखार है।"

लड़की उसके पास बैठ गई। वह बोली—"मुझे माँ ने भेजा है, पूछा है कि बुखार है क्या ?—सो मैं देखती तो हूँ, सच, तुम्हें बुखार है।"

अजय चुप था। उसे बोलते हुए भी कष्ट अनुभव होता था। तब भी अपनी सरस और हँसती आँखों से देखकर वह रामा के मुँह पर हल्का-सा चपत लगाकर बोला—"अरी वाह री, पगली बिटिया! बता तो क्या खाकर आई है। हुँ, भूखी है। बोल, लेगी पैसा?"

परन्तु जैसे लड़की का ध्यान कहीं और था उसने अपनी ही बात बढ़ाते हुए पूछा—"बताओ तो बुखार कैसे आया है? माँ ने पूछा है।"

अजय ने उसकी ओर देखकर कहा—"जा, कहना अपनी माँ से कि बाबू को बुखार नहीं है।"

"हुँ!" लड़की ने तपाक से कहा—"बोलते तो बनता नहीं! आँखें तो देख लो, कैसी हैं लाल-लाल!"

यह सुनकर अजय ने तकिये के नीचे से बटुआ निकाल लिया और उसमें से एक पैसा निकालकर लड़की की ओर बढ़ाते हुए बोला—"अच्छा, तुम अपना पैसा लो। लो!"

लड़की ने पैसे की ओर देख तो लिया, पर लिया नहीं।

अजय ने कहा—"लो बिटिया, पैसा लो!"

लड़की ने सिर झुकाये हुए पैसा ले लिया। उसे मुट्ठी में दाबकर उसने फिर कहा—"माँ ने पूछा है, आप क्या खायंगे?"

"कुछ नहीं।"

"क्यों, क्यों?"

"मुझे बुखार है रामा! सिर में दर्द है। जाओ, तुम खेलो। अब मुझे बोलने में कष्ट होता है।"

रामा उठी और वहाँ से धीरे-धीरे चलकर द्वार के बाहर हो गई।

अजय फिर अकेला रह गया। तभी वह अपने मन में बोला—'दुनिया भी क्या है एक तमाशा! इस लड़की रामा की ही बात है कि माँ विधवा है और मेरी जरा-सी सहानुभूति पर जैसे वह जी गई है और ऋणी बन गई है ···,' और झटके के साथ उसने कहा, 'यही तो हमारे जीवन का सार है। हम इसीलिए जीते हैं। यही हमारी दुनिया का रूप है। इसी भावना के सहारे निरन्तर की तरह आज भी अबाध

गति से यह दुनिया बढ़ती आई है और चलती आई है। मैं इसे नहीं छोड़ूँगा, नहीं छोड़ूँगा।'

तभी रामा बाहर से आकर बोली—"बाबू! बाबू!"

यह सुनकर अजय ने द्वार की ओर मुँह किया तो देखा कि भैया और रोहिणी अन्दर आ रहे हैं।

भैया ने द्वार पर से ही पुकारा—"अजयबाबू···!"

सहसा अजय बोल नहीं पाया, वह कुछ नहीं कह पाया। वह जैसे चकित और खोया-खोया-सा, निरा मूक हुआ-सा उनकी ओर देखता रह गया।

रामा ने उन दोनों की ओर देखकर कहा—"बाबू को आज बुखार है। बोल नहीं पाते, कष्ट होता है।"

इतने में भैया और रोहिणी अजय के पास आ गए थे। बरबस अजय ने उन दोनों की ओर देखकर हाथ जोड़कर नमस्ते किया।

भैया ने तो उसकी नमस्ते का उत्तर दे दिया था, किन्तु रोहिणी थी, जो तब अजय की उस काली बढ़ी हुई दाढ़ी, माथे में धँसी हुई आँखों और क्षीण मुखाकृति को देखकर उसकी नमस्ते के उत्तर में बरबस रुआसी-सी हो आई थी; उसकी आँखें अँधेरे में घूम गई थीं और वह अचानक ही, अजय के पैरों के पास कटे धड़ की तरह गिर गई थी।

अजय उस ओर नहीं देख पा रहा था। उसने खिड़की की ओर मुँह कर लिया था और जो उसकी आँखें भर आई थीं, उन्हें अपने कुरते की बाँह से पोंछ रहा था।

रोहिणी और अजय को उसी अवस्था में छोड़कर भैया सामने चौपाल पर जाकर बैठ गया था। वहाँ बैठे हुए उन पुरुषों में से एक ने भैया को सुनाने के अभिप्राय से कहा—"डॉक्टर बाबू ने हम लोगों के लिए कुछ उठा नहीं रखा बाबूजी, रात-दिन लगे रहे। कभी

भी परहेज नहीं किया—जैसे हमारे ही हों अपने कुटुम्ब के एक आदमी। मुर्दे इन्होंने उठाये, बीमारों के पाखाने और पेशाब तक इन्होंने साफ किए। आप भाई हैं क्या इनके ?"

भैया ने कहा—"हाँ, भाई हूँ !"

"और देवीजी भाभी हैं डॉक्टर बाबू की ?"

"हाँ, भाभी हैं।"

"अच्छा बाबूजी, तुम लोग खुश रहो। आज इन्हें भी बुखार आ गया। सुबह से पड़े हैं। आपको चिट्ठी दी होगी ?"

भैया ने कहा—"नहीं, अखबारों में पढ़ा था यहाँ की बीमारी का हाल।"

"अच्छा, आपने उसी में डॉक्टर बाबू का नाम पढ़ा होगा। डॉक्टर बाबू ने सभी ओर तो हमारी आवाज को पहुँचा दिया।"

इसके बाद ही भैया फिर अजय के पास चलने के लिए उठा। उसी वृद्ध व्यक्ति ने तब एक दूसरे पास बैठे व्यक्ति को लक्ष्य करके फिर कहा—"अरे मँगलू, जा बाबूजी के लिए घर में भोजन का इन्तजाम कर आ। देख, हमारे यहाँ आलू आये हैं। छीतर की झोंपड़ी की बेल से एक घिया उतार ला। अपनी दादी से कह आ, दूध न बिलोया हो तो दही निकाल लेगी। गाँव की तो यही सौगात है भैया ! हम किस लायक हैं, जो इन बाबू लोगों की खातिर करें।"

भैया ने उनके पास से जाते-जाते इस बात को सुना तो वह रुक गया और उसी वृद्ध की ओर देखकर बोला—"तुम भी कैसी बात करते हो चौधरी, हम-तुम दो हैं क्या ? हम भाई-भाई हैं—एक ही माँ के जाये। जो तुम खाते हो, हमें वही खिलाओ।"

यह सुनकर वृद्ध क्षणेक हँस दिया। उसने अपनी डेढ़ हाथ की बढ़ी हुई सफेद दाढ़ी और मूँछों पर हाथ फेरा और मुसकरा दिया। लगता था कि उसके जीवन का जो संघर्षमय इतिहास था वह उसके मुँह पर पड़ी हुई झुर्रियों में लिपटा हुआ था और अपने-आप व्यक्त हो रहा था। तभी उसने कहा—"तुम्हारी भलमनसाहत है बाबू, नहीं तो कौन देखता है हम जंगलियों की ओर। यहाँ कौन आता है···?"

इस दीनतापूर्ण बात को सुनकर भैया ने सदय होकर कहा—"चौधरीजी यह दिन भी नहीं रहेंगे। आज तो हम गुलाम हैं। हम लोगों की छाती पर जो बोझ है और जिससे हम दब रहे हैं, वह हमारी ही मूर्खता ने लाद दिया है। हमीं ने बँधवाये हैं अपने हाथ···।"

"हाँ, बाबू जी, ऐसे तो मर जायंगे लोग।"

"हाँ, मर ही जायंगे चौधरी! मरते ही हैं। कोई सुखी दीखता है? सभी परेशान हैं, सभी के सामने रोटियों का प्रश्न है। तुम खून-पसीना एक करके अन्न कमाते हो, परन्तु खाते दूसरे हैं। तुम्हारे भाई ही तुम्हारी छाती पर छुरी रखते हैं। उन्होंने यही सीखा है—उनका धन कमाना ही लक्ष्य है। और जानते हो, जो सरकारी मशीन के पुर्जे हैं, वह यही हैं। हमारे व्यापारी और धनिक लोग, जो कुछ तो स्वयं खाते हैं और बाकी सरकार को खिलाते हैं। जो सरकार है वह भला तुम्हारी क्यों हो सकती है। वह अपनी ओर देखती है, अपने भाई-बन्दों को देखती है। तुम उसके गुलाम, हीन और भिक्षुक हो। उसकी चाह है, उसकी यही मन्शा है कि तुम टुकड़े-टुकड़े के लिए लड़ते रहो, और सदा उसके सामने झुककर दया की भीख माँगते रहो।" यह कहते-कहते भैया वहाँ से चल दिया और अजय के पास पहुँच गया।

वहाँ जाकर देखा कि रोहिणी ने अपनी गोद में अजय का सिर रख लिया है और उसे दबाना आरम्भ कर दिया है। पास में दो-तीन स्त्रियाँ बैठी हैं, जो भैया को देखकर वहाँ से उठकर चलने लगी हैं।

किन्तु रोहिणी ने भैया को देखते ही कहा—"किसी गाड़ी का प्रबन्ध करो भैया, यहाँ से अभी चलना है।"

भैया ने कहा—"अच्छा।" और उसने झुककर अजय की देह पर हाथ रखा, जो तवे-सी तप रही थी।

रोहिणी ने कहा—"बुखार तेज है। यहाँ कोई डॉक्टर भी नहीं है।"

भैया ने पुकारा—"अजयबाबू···"

अजय ने कहा—"हुँ।"

तब रोहिणी की ओर देखकर भैया बोला—"जो इन्हें करना था, वही किया। सेवा-क्षेत्र की ओर आये तो ऐसे लगे कि भूल गए दीन

और दुनिया की सुध। युवक ऐसा ही सोचते हैं। वह गति में तीव्रता ही पसन्द करते हैं। जो उनमें आवेश है, उससे इसी प्रकार अन्धे हो जाते हैं। देखो न, अब हजरत स्वयं पड़ गए हैं।"

उसी समय कराहकर अजय ने रोहिणी की ओर देखा। बुखार की गर्मी उसकी आँखों में स्पष्ट झलकती थी। व्याकुलता से उसने भैया की ओर भी देखा।

रोहिणी ने कहा—"अजयबाबू···।"

"हाँ भाभी, पानी दो, गला सूख रहा है।"

भैया ने कहा—"पानी नहीं। ऐसे बुखार की तेजी में पित्त बनेगा। वैसे यहाँ से चल देना ठीक है। गाँव से बीमारी की जड़ नहीं गई है।"

रोहिणी ने अधीरता से कहा—"तुम अभी गाड़ी ले आओ भैया!"

भैया उठ लिया। वह फिर चौपाल में पहुँच गया। उन्हीं बूढ़े चौधरी की ओर देखकर उसने कहा—"हमें एक गाड़ी मँगवा दो, चौधरी!"

चौधरी ने पूछा—"अभी?"

"हाँ, अभी ठीक रहेगा।"

"भोजन करके शाम को चले जाना, बाबूजी! कल जाना, अभी तो आये हो!"

भैया ने कहा—"हम फिर भी आयंगे। आप लोगों का जब प्रेम पाया है, तो जरूर आयंगे।"

तब चौधरी ने एक लड़के को गाड़ी जोत लाने के लिए कहा। भैया अजय के पास पहुँच गया। देखा, रोहिणी ने अजय की पुस्तकें, शीशियाँ और कपड़े सब बक्स में रख लिए है। उसने भैया को देखते ही पूछा—"गाड़ी आ रही है?"

भैया ने कहा—"आ रही है।"

"बस तो, बिस्तरा नहीं बाँधती। अजयबाबू के नीचे गाड़ी में बिछा दूँगी।"

 लड़की रामा, जो इतनी देर में कई बार आ-जाकर फिर गई थी,

तब हठात् रोहिणी की ओर देखकर बोली—"क्या डॉक्टर बाबू को ले जा रही हो ? अभी ले जा रही हो ?"

रोहिणी ने लड़की के उस आतुर हुए भाव को देखकर दुलार के साथ उसकी ठोढ़ी पकड़ते हुए कहा—"हाँ, बिटिया रानी, तुम्हारे डॉक्टर बाबू जा रहे हैं। फिर आयंगे।"

यह सुनकर वह रामा लड़की खिन्न-सी हो गई और नीचे को मुँह लटकाकर बोली—"जाने कब आयंगे ? अब जाने···"

तभी एक आदमी ने आकर सूचना दी—"गाड़ी आ गई।"

भैया ने सामान उसमें रखने के लिए कहा। और स्वयं अजय के पास जाकर बोला—"तुम स्वयं उठोगे या गोद में चलोगे। तुम गाड़ी में लेटना। स्टेशन चल रहे हैं।"

यह सुनकर उसने अचरज के साथ पूछा—"क्या अभी चल रहे हैं भैया ! मैं मरूँगा नहीं। भाभी ने कहा होगा, अच्छा···!" कहते-कहते उसने सामान की उठा-धरी में व्यस्त हुई रोहिणी की ओर देखा।

उसी समय रोहिणी ने भी आकर कहा—"उठो, अजयबाबू !"

तब अजय ने जाने कैसी विवशता भरी आँखों से रोहिणी की ओर देखा। वह कुछ कहना ही चाहता था कि तभी लड़की रामा के साथ कई स्त्रियाँ वहाँ आ गईं। आते ही उनमें से एक ने रोहिणी की ओर देखकर पूछा, "तुम इन्हें ले जा रही हो बहन ?" और कहा उसने—"अच्छा, तो जाओ। हमीं क्या, सारा गाँव ही याद करेगा डॉक्टरबाबू को। सच, इन्होंने दूसरों के लिए मरना सीखा है। अब बेचारे खुद ही पड़ गए। पर इन्हें अवश्य बचायगा ईश्वर।"

तभी भैया ने बाहर से आकर कहा—"चलो रोहिणी ! उठो अजयबाबू !" कहते हुए उसने अजय को उठने के लिए सहारा दिया। वह उठ गया। जब वह भैया का सहारा लेकर चलने लगा, तो लड़की रामा ने उसके सामने आकर रुँधे स्वर में कहा—"डॉक्टरबाबू · "

"अरी, रामा···"

"तुम जा रहे हो !" एकाएक रामा ने हिचकियाँ भरकर रोते हुए कहा।

अजय ने उसकी ओर देखा। जो आँसू उसके गालों पर बह आए थे, उसने उन्हें अपने हाथ से पोंछा।

रोहिणी ने लड़की को अपने पास बुलाकर कहा—"रोती है पगली! तेरे लिए फिर आयंगे, डॉक्टरबाबू!..."

तब लड़की नहीं बोली। वह नहीं बोल पाई।

अजय गाड़ी में लिटा दिया गया। देखते-देखते क्षण-भर में वहाँ स्त्री-पुरुष और बच्चों का—गाँव का एक बड़ा भाग एकत्र हो गया। अजय ने उन सबकी ओर निगाह करके हाथ जोड़कर कहा—"अब जाता हूँ भाई, याद करूँगा, नहीं भूलूँगा तुम्हारा प्रेम..."

उनमें से कई-एक ने अधीर होकर कहा—"तुम जल्दी अच्छे हो जाओगे, डॉक्टरबाबू!"

भैया ने सबसे आज्ञा ली और गाड़ी आगे बढ़ा दी। गाँव के बाहर तक बहुत-से स्त्री-पुरुष गाड़ी के साथ आये, भैया साथ था उनके। गाँव के बाहर आकर भैया गाड़ी में बैठ गया। उसने उन गाँव वालों को भी विदा कर दिया। तब रास्ते में रोहिणी की ओर देखकर भैया ने कहा—"अगर आध घण्टे में स्टेशन पहुँच गए तो गाड़ी मिल जायगी।"

गाड़ीवान ने पूछा—"पछाँह की, बाबूजी?"

"हाँ, पछाँह की।"

"वह तो मिल जायगी।" कहते हुए उसने बैलों को और भी तेज कर दिया।

उसी समय आँख खोलकर अजय ने रोहिणी की ओर देखा। यह देखकर रोहिणी ने उसके सिर पर हाथ रखा। उसके बालों में उँगलियाँ फेरकर उन्हें सहलाना आरम्भ कर दिया। भैया गाड़ीवान के पास बैठा हुआ पहाड़ों और खेतों की हरियाली की ओर देख रहा था। तभी उसके मन में कोई बात आई, जिसके साथ ही उसने अपने-आप से कहा—'अजयबाबू ने जीवन और मृत्यु की होड़ लगाकर यह सेवा-क्षेत्र चुना था वह पूरा भी हुआ। अजय उदार है और भावुक है। लेकिन सदा

 ऐसा निभता कहाँ है। जो प्राण बच गए, तभी कौन जीवन का सुख पा

जायंगे ! उनका सड़ना और जीवन की दलदल में फँसे रहना ही तो काम है। वह जियेंगे और हाहाकार करते हुए एक दिन मृत्यु को प्राप्त हो जायंगे···'

तभी रोहिणी से उसने सुना—"यह प्यासे बहुत हैं, भैया ! गला सूख रहा है।"

भैया ने कहा—"स्टेशन आ गया है। वह सामने दीख रहा है।"

"इन्हें बेचैनी भी बहुत है भैया !"

भैया ने बिना उस ओर देखे ही पूर्ववत् कहा—"होगी ही, बुखार जो है।"

रोहिणी ने फिर कहा—"तुम अगर अखबार न पढ़ पाते, न जानते और आज यहाँ न आते, तो भैया···"

"तो शायद न दीख पाते, अजयबाबू ! गाँव से बीमारी अभी निकली कहाँ है।' भैया ने जंगल की ओर देखते हुए ही कहा।

रोहिणी ने फिर कहा—"लेकिन इनकी तो बात देखो, ऐसी हालत में भी खबर नहीं दी। शायद देते भी नहीं।"

उसी समय अजय ने रोहिणी की ओर देखा।

उसी को लक्ष्य करके रोहिणी ने पूछा, "क्यों जी बताओ तो, तुमने खबर क्यों नहीं दी," और आगे कहा, किन्तु तुम तो छोड़ आए थे, जैसे यह सोचकर आये थे कि मेरी तरफ से तो भाभी मर गई," कहते हुए उसने बैलगाड़ी के बाहर देखकर लम्बी साँस छोड़ी। उसी अवस्था में उसने फिर कहा, "ठीक तो है, ऐसे कब तक जीती रहेगी, मर ही जायगी यह भाभी। लेकिन यह भाभी न सही, तुम्हारे तो और भी है कोई—बड़ी भाभी हैं, बड़े भाई हैं। तुमने भैया को भी खबर नहीं दी।"

अजय ने इसका कोई उत्तर नहीं दिया और नितान्त दीन भाव में कहा—"सिर में दर्द है भाभी !"

यह सुनकर रोहिणी ने उस प्रसंग को छोड़ दिया। उसने फिर अजय के सिर पर हाथ रख दिया और उसकी कमीज के बटन खोलकर छाती पर आये पसीने को पोंछ दिया, तथा उसकी गर्दन के नीचे के भाग

पर जमे हुए मैल को छुड़ाना आरम्भ कर दिया।

उसी समय स्टेशन आ गया। देखा, मुसाफिर टिकट ले रहे थे। भैया ने गाड़ी से उतरकर पहले तीन टिकट खरीदे। उसने सामान भी उतार लिया। इतने में गाड़ी के आने का सिगनल हो गया।

तभी अजय ने कहा—"तुम्हें मैं एक दिन भी नहीं भूल पाया भाभी! मैं तुम्हें यहीं बुलाना चाहता था। भैया को भी लिखने वाला था। वैसे, अब लौट ही आता। दफ्तर से एक मास का ही अवकाश लिया था न!"

उसी समय भैया ने आकर कहा—"अजयबाबू उठो, गाड़ी आ गई। आओ तुम्हें उतारूँ।"

इतने में गाड़ी प्लेटफार्म पर आकर खड़ी हो गई। भैया ने अजय को सहारा देकर गाड़ी के डिब्बे में जा बैठाया। रोहिणी ने सामान रख दिया। अजय को लिटा दिया गया। भैया पानी ले आया और बोला—"लो अजय, थोड़ा पानी पी लो।"

पानी पीकर अजय फिर लेट गया। भैया भी वहीं बैठ गया। वह चलती हुई गाड़ी से बाहर की ओर देखने लगा। अजय ने मुँह ढक लिया और सो गया। इस प्रकार वह देर तक सोता रहा। बहुत देर बाद उसने खाँसा और मुँह उघाड़कर डिब्बे की ओर देखा। उसी अवस्था में वह रोहिणी से बोला—"मुझे सपना दिखाई दिया। लड़की रामा कुछ कह रही थी। बेचारी गरीब लड़की! बड़ी हँसोड़ और चञ्चल है! उसका मैंने रोज एक पैसा बाँध रखा था।"

यह सुनने के बाद रोहिणी ने उसकी तबियत का हाल पूछा।

उसने कहा—"तबियत घबरा रही है।"

"चलो, डॉक्टर को दिखाना," और मुसकराती हुई बोली, "वहाँ ड क्टर भी बन गए।"

अजय ने बरबस हँसते-से भाव में कहा—"यह भी बनना था भाभी!" और उसने पूछा, "तुम्हें कैसे खबर मिली? अखबार में पढ़ा होगा?" उसने कहा, "सचमुच बड़े निर्धन हैं यहाँ के लोग! सूखी रोटियाँ भी नहीं पाते। वहाँ रहतीं तो देखतीं, जीवन जैसे नर्क है—

कीड़े-मकौड़ों से भरी कोई सड़ी माँद, जिधर न कोई देखता है, न आता-जाता है। कहते तो हैं लोग कि गाँव हमारे हैं, हम उनके हैं, लेकिन इतना कह-सुनकर ही तो गाँव वालों का उद्धार नहीं हो जायगा···।"

उसी समय रोहिणी ने चाहा कि वह अजय से अधिक न बोलने के लिए कह दे। किन्तु वह नहीं कह पाई। वह जैसे स्वतः उससे कुछ सुनना चाहती थी। उसमें भी कुछ सुनने का मोह हो आया था। जो अजय एकाएक ही उससे इतना हिल-मिल गया और बिना उसकी आज्ञा के उससे इस प्रकार दूर हो आया, उसी के कारण रोहिणी को जो वेदना, शोक, आशंकाओं के बीच इतने दिन रहना पड़ा, आखिर उसका निराकरण तो उसे करना ही था। इसी से अजय से कुछ कहना था, कुछ सुनना था। लेकिन कहना उसे अभी नहीं है। जो प्रताड़ना उसे देनी है, वह इस दशा में कदापि नहीं देनी है। जो अजय कृपा और दया का पात्र बना है, उससे उसे अपनी कोई भी बात नहीं कहनी है। इसी से जो आँधी उसे पागल और विक्षुब्ध बनाये थी उसने उसे फिर दबा लिया है और अपने हृदय के जाने किस एकान्त कोने में छिपा लिया है। नहीं तो अजय जिस प्रकार आया है उसके फलस्वरूप रोहिणी को जाने कितनी रातें रोते और जागते बितानी पड़ी हैं। उसका लेखा बताना चाहकर भी अब वह नहीं बतायगी। लक्ष्मी और भैया ने जो उसकी दुर्बलता को लक्ष्य करके उससे कई बार कहा, उसी को फिर याद करके वह मन में बोली—'जानते तो हैं यह भैया और लक्ष्मी जीजी कि मैं इसी अजय के लिए पागल थी, इसी की खोज के लिए व्यग्र बनी थी···।'

यह जानकर तब बरबस ही रोहिणी लजा गई। उसने भैया की ओर देखा, जो दूसरी ओर देख रहा था। भैया हँस रहा था। वह अपने-आप ही किसी बात में उलझ गया था।

हठात् रोहिणी ने पूछा—"किस बात में मग्न हो भैया?"

भैया ने कहा—"आये थे हरिभजन को, ओटन लगे कपास! आज यही हाल तो है अजयबाबू का।"

यह सुनकर अजय ने भैया की ओर देखा। तब भैया ने उसकी

ओर देखकर फिर कहा—"कहिये महाशय जी ! तबियत तो खुश है। चलो सिर पर पगड़ी तो बाँध ली। गाँव वाले मनायंगे और कहेंगे, डॉक्टरबाबू की जय !"

अजय यह सुनकर मन्द-सा हँसा। उसी भाव में उसने भैया की ओर देखा।

तब भैया ने खिड़की के बाहर देखकर कहा, "चलो, उठ जाओ अब ! स्टेशन आ गया," कहते हुए भैया खड़ा हो गया। उसने अँगड़ाई ली और रोहिणी की ओर देखकर बोला, "चलो, फिर आ गए अपनी दुनिया में। अजयबाबू भी आ गए, जो एक दिन उसे छोड़ गए थे। शायद तब सोचा होगा, अब यह दूर हुई दुनिया। नई बात हो, नये काम हों, नई दुनिया हो, आदमी यही चाहता है। लेकिन वह फिर अपनी ही दुनिया में आता है, शायद यह भूल गए थे अजयबाबू।"

रोहिणी ने अजय को उठाया। जिसके साथ ही अजय ने जाने किस भावना पर टिककर रोहिणी को सुनाकर कहा—"अरी भाभी तुम···· तुमको कष्ट ही दिया।"

लेकिन रोहिणी ने इस पर अपना मत नहीं दिया। जब गाड़ी स्टेशन के प्लेटफार्म पर खड़ी हुई, तो उसने हाथ का सहारा देकर अजय को डिब्बे से उतार लिया।

एक दिन बहुत पहले भैया ने रोहिणी से कहा था कि यह सुरेशबाबू कभी भी हमारे विपरीत हो सकते हैं। उनके जो आदर्श हैं, यह पैसे को अधिक महत्त्व देते हैं और ऐसी ही दुनिया की कल्पना करते हैं।

तब रोहिणी ने इसे स्वीकार नहीं किया था, लेकिन अब वह देखती है कि जैसे भैया ने ठीक ही कहा था। धन के लिए अपने यश और गौरव को सुरक्षित रखने के लिए जैसे आदमी के लिए सभी प्राप्य है और सम्भव है। उस दिन जो शहर के एक बड़े अधिकारी के यहाँ

मिल-मालिकों का डेपुटेशन गया था, तो उसमें सुरेश भी था। वह उनमें शिक्षित युवक था। इसलिए डेपुटेशन की ओर से जो कहा गया, वह प्रायः उसी ने कहा। मिल-मालिकों की जो शिकायतें थीं, उन सबका यही निष्कर्ष था कि मजदूरों में जो विचार दिन-दिन बढ़ रहे हैं, उनका आधारभूत संगठन देश-व्यापी बनाया गया है। जिसका यहाँ भी प्रचार हुआ है। संगठन-कर्ताओं का मुख्य उद्देश्य हड़ताल कराना है। यहाँ जो मिल-एरिया में जो पाठशाला खुली है, उसी के द्वारा यह सब प्रचार किया जा रहा है। भैया, रोहिणी और अजयकुमार इन तीनों ने मिलकर ही इस कार्य का सूत्रपात किया है।

तब मिल-मालिकों को आश्वासन मिला कि तथा कथित रिपोर्ट पाकर प्रबन्ध किया जायगा।

इधर कुछ समय से भैया के सामने यह भी परिस्थिति आ गई थी कि वह शहर में पूर्ववत् नहीं आ-जा रहा था। पुलिस को जैसे भैया के रूप का परिचय मिल गया था। इसीलिए वह सचेत था। अब वह शीघ्र ही दूसरी जगह चला जायगा। उसका काम भी बढ़ गया था। देश के मजदूरों के संगठन की जिस कल्पना को वह सँजो रहा था और अपने में समेटे फिर रहा था, उसका फलित योग उसे अभी ही दिखाई दिया था।

किन्तु यह अनायास पैदा हुई अजय की बीमारी और रोहिणी की ममतामयी भावना उसे कहीं भी दूर नहीं जाने देती थी।

चार-पाँच दिन बाद अजय स्वस्थ हो गया। उस बुखार से उठते-उठते रोहिणी के प्रति जो उसमें एक और नई भावना पैदा हुई, वह यह थी कि उसकी भाभी एक युवती के प्रेम की परिभाषा ही नहीं, वह माँ भी है। माँ का हृदय लिये है, क्योंकि जिस ममता और तन्मयता के साथ उसने बीमार अजय की परिचर्या की, उसमें उसे माँ की भावना के अतिरिक्त अन्य किसी प्रकार की भी मूर्ति नहीं दिखाई देती थी।

स्वस्थ होकर वह फिर दफ़्तर जाने लगा। जब कई दिन उसे अपने काम पर जाते हो गए तो एक दिन बातों के प्रसंग में उसने

म शबाबू से सुना—"तुम ऐसे कब तक चलते जाओगे, अजयबाबू ! इस भावुकता को छोड़ो। वस्तुस्थिति पर आओ। क्या एक दिन भी तुमने देखा कि रोहिणी किस स्थिति में जा रही है। वह तुम्हारी भाभी है," उसने कहा, "सुरेशबाबू उसे जितना लज्जित और अपमानित करते जा रहे हैं, क्या वह तुम्हारे कानों में नहीं आया। सुरेशबाबू ने जहाँ-तहाँ यह कहा है कि रोहिणी भली नारी नहीं है, वह नारीत्व को खो चुकी है। इसी से उसने अजयबाबू को अपने घर में रख लिया है···।"

अचरज और दुःख के साथ अजय ने इस बात को सुना और महेश बाबू की ओर देखा।

महेशबाबू ने फिर कहा—"सुरेशबाबू मेरे मित्र थे और आज भी हैं, परन्तु रोहिणी तो नारी है, जो पवित्र और ममतामयी है। तब तुम्हीं बताओ ऐसी नारी के प्रति ऐसी गन्दी और भद्दी बातें कहना क्या शोभनीय दीखता है। मैंने तो यही निष्कर्ष निकाला है कि समाज का छोटा वर्ग ही इस जिह्वा का दुरुपयोग नहीं करता अपितु यह शिक्षित और समझदार ऊँचे वर्ग का मानव भी वैसा ही ईर्ष्यालु, कुटिल और क्षुद्र दिखाई देता है।" यह कहने के बाद ही उसने मिल-अधिकारियों की उस बात को भी कह दिया और बता दिया कि सुरेशबाबू ने तुम्हारा, भैया और रोहिणी का नाम पुलिस-अधिकारियों के यहाँ लिखा दिया है और कह दिया है कि मजदूरों में जो प्रचार-कार्य हुआ है, वह तुम तीनों के द्वारा ही हुआ है।

उसी समय एकाएक आये आवेश में भरकर अजय ने कहा—"महेशबाबू, जहाँ तक भाभी की बात है निश्चय ही उसके प्रति मैं अपना कुछ कर्तव्य अनुभव करता हूँ। मैं भाभी का ऋणी हूँ। ऐसे एक सुरेशबाबू क्या, मैं दसों के दाँत खट्टे कर दूँगा। आपको अनेक धन्यवाद हैं कि आपने यह सब बता दिया। मेरी आँखों पर जो पर्दा पड़ा था, उसे आपने हटा दिया। अब मैं सुरेशबाबू से निबट लूँगा।" कहते-कहते अजय लाल हो गया।

यह देखकर महेशबाबू ने आतुर होकर कहा—"तुम आवेश में आ गए अजयबाबू, यह तो बुरा है।"

अजय ने कहा—"मैं भी आदमी हूँ महेशबाबू! अपने जीवन में जिन दो स्त्री-चरित्रों की मुझ पर छाप पड़ी है, उन्हीं की महिमा मेरे जीवन की नस-नस में व्याप्त हुई दीखती है। अपनी बड़ी भाभी और इस दूसरी भाभी को पाकर मैंने मानव की अनुभूति और जीवन की पवित्र साधना को छोड़कर कोई और दिशा नहीं पाई है। यदि आपको सुरेशबाबू मिलें, तो मुझसे मिल लेने के लिए कहिएगा, अन्यथा मैं उन्हें ढूँढ ही लूँगा।" यह कहते हुए अजय खड़ा हो गया और वहाँ से चल दिया।

अजय के जाते ही लक्ष्मी ने उधर आकर पूछा—"क्या गये अजयबाबू?"

महेशबाबू ने कहा—"गये। रोहिणी के प्रति मुझे जो-कुछ कहना था, उसे भी सुन गए।"

लक्ष्मी ने विस्मय के साथ कहा—"सब कह दिया, बुरा किया। अजयबाबू में इतनी क्षमता कहाँ है कि जो इतना सुनकर अपने पेट में पचा लें। वह जरूर झगड़ा करेंगे।"

"अजयबाबू नादान नहीं हैं। वह अपनी शक्ति समझते हैं।"

"वह गिरफ्तार हो जायंगे।"

यह सुनकर महेशबाबू को क्रोध आ गया। उन्होंने छूटते ही कहा—"यही तो होगा। यह आज नहीं तो कल अवश्य होगा।"

लक्ष्मी ने फिर खीझते-से स्वर में कहा—"समझते तो हो नहीं, जब रोहिणी सुनेगी तो कितनी दुखी होगी। वह अजयबाबू को तरह सुरेशबाबू को भी अपने हृदय से नहीं निकाल सकती। वह ऐसी ही भावना अपने जीवन में सँजोयगी। उसे यह विश्वास है कि सुरेशबाबू एक दिन अपनी भूल मान लेंगे, और जो सीधा और सरल पथ है, उस पर आ जायंगे।" और वह द्वार की ओर जाने लगी।

पीछे से महेशबाबू ने पूछा—"किधर चलीं?"

"रोहिणी के पास। मैं उसे बताऊँगी कि यह किया है तुमने। वह सजग तो हो जायगी।" कहकर वह तुरन्त ही द्वार से बाहर हो गई। वह सीधी रोहिणी के घर पहुँच गई। उस समय रोहिणी भोजन

बनाने में लगी थी। अजय कमरे में था, लक्ष्मी ने रसोईघर के सामने जाकर कहा—"तुमसे कुछ कहने आई हूँ रोहिणी!"

"क्या अलग कहोगी? यहीं कहो। तवा जल रहा है।"

लक्ष्मी वहीं रसोई के द्वार पर बैठ गई और बोली—"आज हमारे घर गये थे अजयबाबू। उन्हें तो जानती हो तुम, वह कोई बात पेट में रख थोड़े ही पाते हैं। तुम्हारे और सुरेशबाबू के बीच की सब बातें अजय से उन्होंने कह दीं।"

रोहिणी आटे की लोई बना रही थी। लक्ष्मी की बात सुनकर बरबस लोई को परात में छोड़ वह खिन्नता के साथ लक्ष्मी की बात रोककर बोली—"जाने मुझे क्या-क्या देखना है, जीजी! और यह तो आगा-पीछा भी नहीं सोचते अजयबाबू।"

"यही तो! अब तुम्हें निगाह रखनी है। कुछ कर बैठे तो आफत हो जायगी।"

रोहिणी ने फिर आहत स्वर में कहा, "लेकिन मैं कर ही क्या सकती हूँ जीजी! सच, मैं बहुत दुःखी हूँ। मैं अब इन सब झगड़ों से दूर रहना चाहती हूँ।"

लक्ष्मी ने खड़ी होकर कहा, "अच्छा, अब तो मैं जाऊँगी। मुझे भी जाकर खाना बनाना है। उनसे जो सुना तो दौड़कर तुम्हें यही बताने चली आई।"

"लेकिन तुम बताओ तो, मैं कर क्या सकती हूँ? कैसे इन पुरुषों को समझाऊँगी!"

यह सुनकर लक्ष्मी ने आसमान की ओर देखा और कहा, "क्या कहूँ रोहिणी, आदमी देवता भी है और पशु भी। नहीं जान पड़ता कि कब कैसा हो जाय आदमी। ऐसे भले और सीधे सुरेशबाबू, सचमुच पैसे के नशे में आ गए। यही होना था, उन्हें अब यही सोहता था।"

रोहिणी ने कहा, "यह उन्हें खाक सोहता था! यह कहो कि पैसे का नशा आना था, सो आ गया।"

यह सुनकर लक्ष्मी ने कुछ नहीं कहा, और वह जल्दी-जल्दी अपने घर को चल दी।

लेकिन तब पहले की तरह रोहिणी खाना बनाने नहीं बैठ सकी। वह रसोईघर से निकलकर अजय के कमरे की ओर गई। उस कमरे के द्वार पर जाते ही उसने देखा कि अजय के हाथ में पिस्तौल है और वह उसमें गोलियाँ भर रहा है। यह देखकर रोहिणी वहीं रुक गई और द्वार की आड़ लेकर खड़ी हो गई। देखा कि पिस्तौल भरकर अजय ने कोट की जेब में रख लिया और इसके बाद ही घर से चल दिया। तुरन्त ही पीछे से रोहिणी ने उसको पुकारा, "अजयबाबू! अजय-बाबू!"

किन्तु अजय ने नहीं सुना, अथवा सुनकर भी वह नहीं मुड़ा। वह जिस शीघ्रता से द्वार के बाहर हुआ था, उसी वेग से वह रोहिणी के देखते-देखते क्षण-भर में निगाह से ओझल हो गया। रोहिणी का माथा ठनका। उसने अपने कमरे में जाकर धोती बदली और बाहर रामू की माँ से रसोई का ध्यान रखने को कहकर, जाने कैसे चञ्चल और व्यथित मन से सुरेश के घर जाने का विचार करने लगी। वह घर से निकलकर सड़क पर आ गई। जिस द्रुत गति से वह चल रही थी, उसे देखकर निश्चय ही वह व्याकुल दिखाई देती थी और जल्दी-से-जल्दी सुरेशबाबू के घर पहुँच जाना चाहती थी। जिस उतावलेपन और वेग से उसके पैर उठ रहे थे और बढ़ रहे थे, उसके कारण उसकी साँस फूल गई थी, मुँह में खुश्की आ गई थी और जिह्वा तालु से लगी जाती थी। वह सुरेशबाबू के घर पहुँच गई और सीधी सुरेश के कमरे की ओर बढ़ी। जैसे ही वह कमरे के द्वार पर पहुँची, तो अजय की बोली सुनाई दी। वह द्वार के बाहर ही रुक गई और सुनने लगी, अजय कह रहा था—"मुझे नहीं पता था कि तुम इतने नीच हो, पामर और घृणित कहीं के! तुम···।"

उस अवस्था में रोहिणी की जैसे साँस रुक गई थी। वह सभी ओर से सिमटकर तब उस वार्तालाप को सुन रही थी। उसी समय अजय की बात को रोककर सुरेश ने आवेश में भरकर कहा—"देखो अजयबाबू तुम मेरे घर आये हो! मैं कहता हूँ तुम संयत हो जाओ। कहता हूँ कि तुम यहाँ से निकल जाओ!"

तब अजय ने अपनी जेब में हाथ डालकर कहा—"हाँ ठीक है, मैं निकल जाऊँगा, मैं संयत भी हो जाऊँगा। किन्तु यहाँ से जाने से पूर्व मैं तुम्हें सीख दे जाऊँगा! मैं तुम्हें अपने द्वारा ही ऐसे भारी अपराध का उचित दण्ड दे जाऊँगा। तुम आगे किसी पाये हुए मानव के जीवन में इतने कृतघ्न विद्रोही और अहम्मन्य न बन जाओ, यह मैं तुम्हें अभी बता दूँगा।" कहते-कहते उसने जेब से पिस्तौल निकाल लिया और उसका घोड़ा खड़ाकर लिया। वह समय दूर नहीं था कि जब वह सुरेश के मस्तक, छाती या पेट का निशाना साधता और पिस्तौल छोड़ता। तभी आँधी की तरह से रोहिणी ने उसके सामने आकर नितान्त सहमे और उद्वेलित स्वर में चिल्लाकर कहा—"अजयबाबू, हाय! हाय! क्या करते हो तुम! यह बहादुरी है क्या तुम्हारी! यह कायरता है। सुरेशबाबू ने जो-कुछ कहा है, जो-कुछ किया है उसका सम्बन्ध मुझसे है। बताओ यह अधिकार तुम्हें किसने दिया है। सुरेशबाबू मेरे अपने हैं, क्या सचमुच ही तुमने इसे नहीं समझा है। ओह, आज निश्चय ही तुमने मेरा सर्वनाश करने का प्रयत्न किया दिखता है···।"

अजय ने क्रोध में भरकर कहा—"भाभी···!"

"अजयबाबू, मैं कहती हूँ तुम चले जाओ। तुम अभी इस मकान से बाहर हो जाओ। तुम ऐसे···।"

"रोहिणी!" तभी पीछे से भैया ने आकर कहा, "तुम घर जाओ रोहिणी! तुम शान्त होकर जाओ। सुरेशबाबू मरेंगे नहीं, यह विश्वास लेकर जाओ।" यह कहते हुए उसने अजय और सुरेशबाबू की ओर घूरकर देखा। उसकी आँखों में जो क्रोध था, वह स्पष्ट रूप से झलक आया था।

रोहिणी ने दीनता और याचना भरी वाणी में कहा—"यह क्या हो रहा है भैया! यह कैसा ताण्डव हो रहा है?"

भैया ने पूर्ववत् उन दोनों को घूरते हुए कहा—"हाँ बहन, देखता हूँ दोनों ने अपना विवेक खो दिया है। इनमें जो नैतिक जीवन था उसे भी भ्रष्ट कर दिया है। देखती तो हो एक के पास धन है, दूसरे के पास उसका अभाव है, जिससे दोनों ही अपने-अपने पथ से भटक गए

हैं और खो गए हैं," यह कहते हुए उसने सुरेश को लक्ष्य किया और और कहा, "तुम सुख और चैन से रहो सुरेशबाबू! भला जिसकी सहायता को रोहिणी आई है, उसे मारने की एक अजयबाबू क्या, ऐसे अनेकों अजयों में भी मुझे शक्ति नहीं दिखाई देती।"

अजय ने अपनी पिस्तौल को पहले नीचे गिरा लिया था और अब उसे जेब में रखकर वह बिना किसी से कुछ कहे और किसी की ओर देखे वहाँ से चल दिया।

उसके पीछे ही रोहिणी और भैया ने वह स्थान छोड़ दिया। वहाँ से जाते-जाते रोहिणी ने सुरेश की ओर देखा और एक बार फिर उसने क्षमा-याचना की मुद्रा बनाई, किन्तु स्वयं सुरेश को सभी प्रकार विपरीत पाकर उसने चुपचाप ही उसका कमरा छोड़ दिया।

रास्ते में भैया ने कहा—"मैं तुम्हारे साथ नहीं जाऊँगा, मैं कहीं और जाऊँगा!"

रोहिणी ने कहा—"भैया तुम···!"

"हाँ रोहिणी तुम जाओ। आज जो-कुछ हुआ अच्छा नहीं हुआ, सुखकर नहीं हुआ। कहते हुए वह दूसरी ओर बढ़ गया।

तब रोहिणी ने सामने के अन्धकार की ओर देखकर कहा—'हे ईश्वर! जाने अभी और क्या होना है। इस रोहिणी को अभी क्या-क्या देखना रह गया है···!'

घर आकर रोहिणी ने देखा कि अजय चादर ओढ़कर पड़ा है, जैसे सो गया है। लेकिन वह सोया नहीं था, जाग रहा था। तब ऐसे में रोहिणी क्या करे, उससे क्या कहे! वह जैसे अपने जीवन के नये अध्याय को देख रही थी, जो कहीं से भी स्थिर और शान्त नहीं था। वह कुर्सी पर बैठ गई और जाने कैसे मन के साथ अजय की ओर देखने लगी। वह चाहती थी कि वह बोले, कुछ कहे। किन्तु यह सब करना

तो दूर; अजय तो उसके लिए जैसे एक पहेली बन गया दीखता था। जो भयंकर और रहस्य भरे, मानव से किसी प्रकार भी कम नहीं दिखाई दिया था। ऐसा विकराल रूप उसे आज ही तो अजय का दिखाई दिया। वह भोला सा अजय, सच उसे दिखाई दिया कि समतल नहीं है और साकार नहीं है।

उसी समय अजय ने मुँह से चादर उठाई, उसे पता नहीं था कि रोहिणी आ गई है और वह उसके पास ही बैठी हुई है। मुँह खोलते ही उसने रोहिणी की ओर देखा, जो हाथ की हथेली पर मुँह रखे नीचे की ओर देख रही थी। यह देखकर अजय ने फिर मुँह ढक लिया।

रोहिणी ने यह देख लिया था। वह अजय की उन लाल आँखों को भी भाँप गई थी, जिनमें अभी क्रोध भरा हुआ था। यह देखते ही उसने मन में कहा, 'लोग कहते तो हैं कि क्रोध भी एक गुण है, परन्तु इसमें सत्य कहाँ है, कर्म और मनुष्यता कहाँ है इसमें! यह अन्धा है। मनुष्य के जीवन में जो अन्धेरा है, क्रोध उसी पर टिका है।' यह कहकर रोहिणी ने मुँह उठाकर सामने दीखते तारों-भरे आसमान की ओर देखा। उसी ओर देखते हुए उसने कहा—'सब अपनी-अपनी दिशा देखते हैं और कर्म देखते हैं। आज यही मैंने भी देखा। जो मेरे मन में था, मैंने वही किया। ठीक किया। भला मुझे यह कैसे शोभता कि मेरे ही सामने मेरी ही आँखों के नीचे और मेरे ही कारण सुरेशबाबू का वध होता। उन्हें यों मार दिया जाता। उनकी भूल ही तो है और यह मनुष्य का भ्रम ही तो है, सब ओर से छूटकर फिर भी मनुष्य मनुष्य ही तो है, वह पूर्ण तो नहीं है। बस, ऐसे ही हैं एक सुरेशबाबू। वह मनुष्य हैं, जो स्वभावतः अपनी कमियों से भरे हैं। वह एक दिन मेरे लिए अर्पित हुए थे। तन, मन और धन से वह मेरी सेवा के लिए समर्पित हो गए थे। आज दूर हैं। वह कुछ सोचते हैं, कुछ कहते हैं, तो आपत्ति ही क्या है! इतने अपराध पर, मेरे लिए इतनी-सी बात पर ऐसा काण्ड हो, यह मुझे जीवित रहने देता क्या! यह होता, तो सारा समाज हाहाकार करता और मेरे मुँह पर थूकता। मुकदमा चलता, अजयबाबू को फाँसी का हुक्म होता।'

तभी उसने अपनी आवाज पर जोर देकर पुकारा—"अजय-बाबू····!"

सुनते ही अजय ने मुँह से चादर हटा दी। उसने रोहिणी की ओर देखा।

उसकी आँखों को देखते ही रोहिणी ने पूछा—"बताओगे, तुमने आज क्या सोचा था? अपने किन विचारों की नीति पर खड़े होकर तुमने सुरेशबाबू का वध करना चाहा था?" और उसने कहा, "जानती तो हूँ कि पुरुष अन्धा है। यह अपना बल ही देखता है। यह पाशविक वृत्ति को ही पसन्द करता है। किन्तु जिस आधार पर तुमने सुरेशबाबू के घर जाकर अपनी आन्तरिक इच्छा का प्रदर्शन किया, हाय, हाय, तुमने एक क्षण के लिए भी नहीं सोचा कि उसका परिणाम क्या हो सकता है? कहो तो, तुमने ऐसे ही अपनी इस दुखिया भाभी का उपहास कराना चाहा है। वैसे मैंने सुना तो कि उसने मेरे लावण्य की ओर देखा है, इसे भोगना चाहा है। पर मैं तो कहती हूँ—लो, स्वतः ही अपने को तुम्हारे सामने डाले देती हूँ, तुम अपनी भूख बुझा लो, जो तुममें प्यास है, उसे शान्त कर लो। तुम····।"

उसी समय अजय ने खड़े होकर अपने सिर के बाल पकड़कर कहा—"भाभी, ओह····!"

लेकिन रोहिणी ने अजय की उस आकुल और व्यथित हुई आकृति पर ध्यान नहीं दिया, उसने अपनी ही बात लेकर उसी क्रोधपूर्ण वाणी में फिर कहा—"तुम मुझसे मुँह छिपाकर गए थे, चोर की तरह गये थे, तो मैंने बुरा किया कि तुम्हें उस गाँव से जाकर ले आई, उस बीमारी में ले आई। तुम मर ही जाते, तो कौन इस दुनिया का अन्त हो जाता। ऐसे तो निश्चय ही इस दुनिया से एक और कीड़ा-मकौड़ा उठ जाता, जिसका काटना और लोगों का वध करना ही काम है। तुम जीवित हो, तुम गाँव के उन लोगों की तरह से नहीं मरे हो, तो आओ अपनी जिस पिस्तौल में गोली भरकर तुम सुरेशबाबू को मारने गये थे, देखती हूँ जब उन्हें नहीं मार सके, तो तुम उन गोलियों को मेरी छाती में निकाल दो। तुम मेरा अन्त कर दो। नई बात क्या, है

सब यही करते हैं। यहाँ सभी गाली का जबाब घूँसे से देते हैं। लेकिन मैं तो रोहिणी हूँ, नारी हूँ? मैं पुरुष की तरह अहम्मन्य और भारी कहाँ हूँ। जिस सुरेशबाबू की मैं ऋणी हूँ, उन्हीं को अपने कारण मैं आज क्या, किसी जन्म में भी मरता हुआ नहीं देख सकती हूँ। निश्चय ही मैं उनके लिए अपने प्राण दे सकती हूँ। मैं कभी भी, किसी क्षण भी सुरेशबाबू के लिए अपने प्राणों की छाँह कर सकती हूँ, मैं उन्हें अपने प्राणों में सँजोकर रख सकती हूँ।"

अजय सिर झुकाये बैठा था। दिखता था कि तब उसका क्रोध शान्त हो गया था। और अब वह इस प्रतीक्षा में था कि भाभी शान्त होकर उसके लिए कठिन और दुर्बोधता की परिभाषा से बदलकर पहले के समान ही सरलता की भाषा में परिणत हुई दीखे। किन्तु जब उसे ऐसा एक भी लक्षण नहीं दिखाई दिया, तो बरबस उसने आगे बढ़कर रोहिणी के पैरों को पकड़कर कहा—"मेरा कोई भी स्वार्थ नहीं था भाभी! मुझमें कुछ नहीं था। जो किया, जो चाहा, वह तुम्हारे प्रति सद्भावना से प्रेरित होकर और अपना कर्तव्य समझकर ही किया। लेकिन तुम तब भी दुःखित हुई हो, तुम तब भी मुझ ही पर कुपित हुई हो। अच्छा, मुझे क्षमा कर दो। तुम्हारी और सुरेशबाबू की जो सीमा है, ऐसे मुझे कभी भी सुगमता से उससे दूर कर सकती हो, मैं तुम्हारे सामने विद्रोही नहीं होऊँगा। मैं सदा तुम्हारे प्रति शुभ कामना करूँगा, भाभी!"

यह सुनकर रोहिणी ने समझा, उसने स्पष्ट ही देखा कि इस अजय के अन्दर, जो उसके पैरों में बैठा है, जैसे आज की ही नहीं पहले की ही किसी दुर्भावना ने अपना मुँह खोल दिया है। उसी ने मानो अज्ञात रूप हो, 'उसकी और सुरेशबाबू की सीमा' की बात को कहा है। लेकिन जो-कुछ कहा है, उसका अब उसे प्रतिवाद नहीं करना है—बात के सभी अंश को उसे स्वीकार कर लेना है।

इसी से उसने व्यथित होकर वहाँ से उठकर कहा—"ना, अजयबाबू क्षमा तो मुझे माँगनी है। यह मुझे ही शोभती है। देखती हूँ, जो क्रोध आया उसे दबाकर तुम्हें कष्ट ही हुआ है। क्योंकि तुम आदमी को

मारकर उसका और उसकी आगे आने वाली पीढ़ी का सुधार करना चाहते हो। आदमी ही तुम्हारे रास्ते का काँटा है। सदा-सर्वदा से आदमी ऐसे ही एक-दूसरे का शत्रु होता आया है। जिसकी यही परिभाषा है, तुम निर्बाध होकर रहना और जीवन के सागर में बहना चाहते हो। तुम भी अपना राज्य चाहते हो। जो तर्क करता है, जो तुम्हें टोकता है, वही तुम्हारा शत्रु है। अच्छा, उसे मारो—खूब मारो। तुम जी भरकर लोगों के खून में अपने हाथ रँगो। तुम्हारी बला से कि उनके वह छोटे-से कलेजे तड़पेंगे, कसकेंगे और दर्द-भरी आह के साथ अपनी साँस तोड़ेंगे। इसमें नयापन और अचरज क्या है? यही तो आदिकाल से चलता आया है, सभी ने इसे स्वीकार किया है। जो तुमने और भी तुम्हारे साथियों ने भी····।"

इतनी ही देर में जैसे अजय थक गया था और अपने-आप ही झुँझला गया था। उसने जूते पहन लिए और जाने लगा। रोहिणी ने यह देख लिया, लेकिन अपनी आदत के विपरीत न उससे कुछ पूछा न रुकने के लिए कुछ कहा। निदान अजय चला गया। उसी समय रामू की माँ आई और खाने के लिए कहा, तो रोहिणी ने उसे खा लेने और बाकी को रख देने के लिए कह दिया। उसने तब उस कमरे से जाकर अपने कमरे में पहुँच चारपाई पर पड़ते-पड़ते अपना मुँह ढक लिया और रोना आरम्भ कर दिया।

लेकिन इसके विपरीत वह अजय था, जो रोहिणी की बातों से बचने के लिए ही उस अवस्था में मकान से चलकर कुछ दूर पर ही एक पार्क में जाकर बैठ गया था। जब रास्ते का आवागमन बहुत कम हो गया और पथ प्रायः जन-शून्य हो गया, तो वह फिर घर की ओर लौट आया। जब उसने अपने कमरे में जाकर देखा, तो घड़ी ने डेढ़ बजा दिया था। सुबह जब वह दफ्तर गया था, तो सिर्फ दो-तीन फुलके खाकर गया था, जिसमें दिन-भर रहा। इसी से, अब जो उसके पेट में भूख का चीत्कार उठा था, निश्चय ही, वह उसके लिए असह्य हो गया था। इत्तिफाक था कि आज उसकी जेब में पैसा भी नहीं था। इसी से वह व्याकुल था। रोहिणी सो गई है या जाग

रही है वह खा चुकी है या भूखी है; आदि प्रश्नों का ताँता भी उसके मन में लगा था। वैसे उसे भरोसा था, वह यह जानता था कि भाभी भूखी है, वह उसके बगैर खाकर नहीं सो सकती।

उसी समय उसने द्वार पर देखा कि भाभी खड़ी है, जो उसी की तरफ देख रही है। तब रोहिणी ने उसकी ओर देखते हुए बरबस कहा—"खाना नहीं खाया जायगा क्या? जो बना है, उसे क्या फेंका जायगा?"

यह सुनकर तब एकाएक अजय से फिर भी कुछ नहीं कहा गया। उससे रोहिणी की ओर भी नहीं देखा गया।

रोहिणी ने आगे बढ़कर कहा—"चलो उठो, खाना खाओ। जो करना हो पीछे करना," और उसने तब अपने-आप ही जैसे अजय को सुनाते हुए कहा, "जो स्वार्थ, दम्भ और इस पुरुष का अन्धापन है वह एक तुम्हीं में क्या यहाँ सभी में दीखता है। सुरेशबाबू ने जो कहा है, उसमें झूठ क्या है। मुझे तो वह सब-का-सब ही सचाई से भरा दीखता है। लेकिन मैं कहती हूँ···" उसने अजय से कहा, "ऐसे तुम इस जीवन में किस-किससे कहोगे, किस-किसको मनाओगे, और किस-किसके प्राण लेने के लिए इस पिस्तौल का उपयोग करोगे। मैं फिर कहती हूँ कि तुम शान्त बनो, तुम धीर और गम्भीर बनो। कुछ झुकना भी इस जीवन में जान जाओ। मैं तो चाहती हूँ कि जो तुम मेरे इतने से अपमान को लेकर ऐसे कुछ बन गए हो और जिसके परिणामस्वरूप सुरेशबाबू का अन्त करने की भीषण चेष्टा में निरत हुए दिखाई देते हो, इसके विपरीत तुम इस भाभी को पिटते, दूसरों की जूतियों से ठुकराये जाते और अपमानित होते देखकर भी विचलित न हो जाओ। तुम तब भी शान्त रहो और मूक रहो। यह गुलाम देश है अजयबाबू! यह स्वतः ही अपने जीवन से पतित है। इसमें अपने स्वत्व और स्वाभिमान नाम का पदार्थ नहीं रह गया है, और तुम सोचते हो, जो दूसरों को—किसी एक नारी को भ्रष्ट और पतित कहता है, वह स्वयं सदाचारी है, अपने विवेक और नैतिक जीवन को रखने का अधिकारी है। नहीं, वह तो स्वयं आत्मा नाम के पदार्थ से खाली है और शून्य है।

इसी से कहती हूँ, जिसने स्वयं ही अपनी लज्जा उतार दी है, उसके लिए मौत क्या, जिन्दगी क्या ? दोनो ही मुझे एकसी दिखाई देती हैं। देश में जो नित्य ही माँ और बहनों की दुर्दशा की जाती है, वह ऐसे ही सैकड़ों दुःशासनों के द्वारा इन द्रोपदियों के वस्त्रों और नारीत्व की छीन-झपट की जाती है। अजयबाबू अपनी दृष्टि को विस्तृत करो, हृदय की इस अनुदारता को दूर करो, तुम एक ही भाभी से बँधे हो। इस भावना को भी त्यागकर जरा देखो तो कितनी हैं तुम्हारी भाभियाँ, बहनें और माताएं, जो नित्य ऐसी ही आपदा भोगती हैं और चुपचाप ही सिसक-सिसककर अपने प्राणों का होम कर देती हैं। वह भी रोहिणी हैं। वह भी अपने स्वत्व और नारीत्व की रक्षा की अधिकारिणी हैं। परन्तु इस रोहिणी के पास तो अजय है; और उनके पास ? हाँ उनके पास कोई नहीं है।...''

अजय ने कहा—''मैं भूखा हूँ भाभी !''

यह सुनकर रोहिणी ने वहाँ से जाकर खाना परोस लिया और तत्क्षण ही लाकर अजय के सामने रख दिया।

अजय ने कहा—''तुम भी खाओ, बैठो !''

उसने कहा—''मैं नहीं, अब नहीं खाऊँगी।''

''तो मैं भी नहीं खाऊँगा, अब नहीं खाऊँगा।''

''वाह, बात है कुछ ! तुम खाओ।''

लेकिन अजय ने जैसे इसे नहीं सुना। उसने खाने के थाल की ओर भी नहीं देखा। उसने तब अपनी ही बात लेकर कहा—''देखता हूँ जो नहीं निभ पायगा, जो नहीं फलेगा, तुम ऐसे ही पौधे की कल्पना करती हो। जिसे दुनिया स्वीकार नहीं करती, तुम उसी को मानती हो।''

उस समय रोहिणी चुप थी। वह खड़ी-खड़ी उसकी ओर देखने लगी थी।

अजय ने कड़वी-सी मुसकान से फिर कहा—''यह सीमा-हीन दुनिया का क्षेत्रफल भला कभी भी अपनी परिधि में तुम्हारी-जैसी भावनाओं को देख पाया है और समझ पाया है ? जिस रोटी के टुकड़े पर आज झगड़ा है, वह ऐसा ही आदि कल से चला आया दीखता है। इस

झगड़े के अन्तर्गत ही मानव के विकास और प्रगति-पथ का निर्वाचन हुआ है। जब-जब भावना को अधिक प्रोत्साहन मिला है, तब-तब ही इस मानव में द्वन्द्व-युद्ध हुआ है, और विधवा नारियों के हाहाकार, और मुर्दों के चीत्कार से यह हमारे ऊपर खड़ा हुआ नीलाकाश भी बरबस मुसकराया है और आन्दोलित हो उठा है।"

"तो जो तुमने कहा है, तुमने जो चाहा है, इसी को मानना होगा। अब यही सत्यं-शिवं होगा क्या ?"

"हाँ भाभी, अभी यही माना जायगा। जो किसी को लूट चुका है, अब उसे भी लूटा जायगा। आज का यही सिद्धान्त है। समाज की ऐसी ही व्यवस्था है। इस मानव में जो पुरुषत्व है, वह ऐसे ही तराजू पर रखकर तोला जायगा !···"

यह सुनकर जैसे रोहिणी खड़े-खड़े थक गई। तब वह अपनी टूटी कमर की तरह पलंग पर बैठ गई। उसने हथेली पर ठोढ़ी को रख लिया और बाहर के अन्धेरे की ओर देखने लगी।

अजय ने कहा—"मेरा तो प्रश्न क्या, दिखता है आज तुमने भैया की भी राह बिगाड़ दी। उन्हें भी नष्ट कर दिया। जो उन्होंने कमाया था, वह आज सब लुट गया।"

रोहिणी ने झल्लाकर कहा—"झूठ है, झूठ है सब।"

तब रोहिणी की उस अधीर और चंचल अवस्था को देखकर अजय ने बरबस हँस दिया। उसने फिर कहा—"और यही क्यों, मैंने जो एक अच्छे-से सुरेशबाबू को अपना मित्र बनाया, तुम्हारे कारण वह सम्बन्ध उनसे भी टूट गया। तुम्हारी दृष्टि में जो मूर्ख बना, वह जैसे मुझे सौगात रूप में तुमसे मिल गया।"

रोहिणी ने तब विद्रूप निगाहों से अजय की ओर देखकर कहा—"झूठ क्या है, तुम भेड़िया बनने चले थे—खूँखार; लेकिन जब तक मैं हूँ, तुम्हें ऐसा बनने दूँ तब तो !"

अजय ने हँसते हुए कहा—"अच्छा भाभीजी, अच्छा !"

तब रोहिणी ने खाना आरम्भ कर दिया और अजय की ओर देख-

लेकिन इस प्रकार जो अजय और रोहिणी के बीच उठ आए मन-स्ताप का पटाक्षेप हुआ, वह क्षणिक सन्धि के अतिरिक्त और कुछ नहीं था। उनके मन में जो उद्वेलन था, वह न अभी मिटा था, न उस पर विराम-चिह्न लगाया गया था। दोनों ने भोजन कर लिया। अजय फिर अकेला अपने कमरे में रह गया। तब उस अवस्था में, जो उसके सामने आँधी के तूफान-सदृश विचारों का तारतम्य आकर खड़ा हुआ उसका मानो एक ही उद्देश्य था और एक ही लक्ष्य था। यद्यपि जो उसे अब अपने से कहना था, और उसके ऊपर टीका-टिप्पणी करनी थी, वह इससे पूर्व भी अनेक बार अपने-आप कर चुका था। लेकिन आज जैसे अपनी उस शंका को वह प्रत्यक्ष और मूर्त-रूप में देख चुका था। इसी से वह उलझा था। वह बरबस ही उसे एक समस्या बनाकर सुलझाना चाहता था। लेकिन दिखता यह था कि वह जितनी चेष्टा उसे सुलझाने की करता उतना ही वह उसे और भी जटिल तथा गुल-झटदार बनाता जा रहा था। इसी से वह व्याकुल और व्यथित दिखाई देता था।

अजय की उस समस्या, व्यथा और व्याकुलता का जो आधार था, वह रोहिणी द्वारा सुने और देखे सुरेशबाबू के प्रति पहली-सी संलग्नता, अपनत्व और स्नेह-संचित भावना को देखने और समझने के अति-रिक्त और कुछ नहीं था। उसके मन में जो यह था कि भाभी उसी की है, उसी की साथिन है, इसके विपरीत आज उसने फिर देखा कि वह तो जैसे विभाजित हुई, बँटी हुई एक ऐसी निधि है, जो बरबस उसे भी अपनी ओर खींचती है और सुरेशबाबू को भी आकर्षित करती है। इसी से वह सोचता है कि जाने यह भाभी—रोहिणी—कैसी समस्या है, गूढ़; जो आज तक भी उसकी समझ में नहीं आई है। वह कभी तो उसे अपने निकट ही दिखाई दी है। और कभी दूर—बहुत दूर! मानो वह गंगा की एक ऐसी लहर है, जो कभी तो उससे आकर टक-राती है और कभी दूर होकर उसकी आँखों से भी ओझल हो जाती है। निदान इस कसक, पीड़ा और अपने मन की चंचलता को लिये, वह अपने मनःप्रदेश की ऐसी दिशा पर पहुँच गया, जो उस क्षण उसे

निपट सुनसान और उजाड़ दिखाई देता था। वह भयावना और निपट शून्य-सा हुआ दीखता था। जो रौरव और कोलाहल उसकी आत्मा में भरा था, इस प्रकार वह क्षण-क्षण पर उसे रोहिणी से दूर ले जाता दिखाई देता था। वह अपने जिस मनःसंघर्ष में पड़ा था उसमें रोहिणी के प्रति उपेक्षा और उदासीनता के अतिरिक्त अपने में कुछ नहीं पाता था। जिस भावना को लेकर वह अब तक चलता आया था और अपने मन में सँजोता आया था उसी की ऐसी प्रतिक्रिया देखकर उसने रोहिणी के रास्ते से स्वयं अपने को हटा लेना चाहा। उसने सोचा कि वह जो उसके प्रवाह के रास्ते में आ खड़ा हुआ है और उसकी गति को रोकने में समर्थ हुआ है, वह न तो स्वयं उसके लिए उपादेय है, न रोहिणी के लिए। तब क्यों न उसे निर्बाध गति से बहने दिया जाय, इसी से उसने चाहा कि वह भैया के पास जाय, उससे मिले और अपने आगे के कार्यक्रम को निर्धारित करे। वह भैया को अपनी स्थिति का सिंहावलोकन कराये और बताये कि वह रोहिणी का नहीं है, उसका कुछ नहीं है।...

अपने अन्दर जाने इसी विचार को लेकर अजय खड़ा हो गया। बाहर कुत्ते भोंक रहे थे। कहीं-कहीं से चौकीदार के बोलने के स्वर भी सुनाई दे रहे थे। उसने बक्स से कुछ रुपये निकाले और मकान से निकल आया। बाहर चौराहे पर उसे ताँगा मिल गया और बैठकर चल दिया। आध घण्टे के अन्दर ही जब वह नदी के किनारे पर पहुँचा, तो ताँगे वाले को पैसे देकर पैदल किनारे-किनारे चल दिया। वहाँ किनारे पर दूर-दूर बत्तियाँ लगी थीं, इसी से कहीं प्रकाश और कहीं अन्धेरा था। किनारे पर नावों से उतारे गए बाँस और लकड़ी के लट्ठों का भारी जमाव था। जिनसे कई जगह टकराकर वह गिरते-गिरते बचा था। वहाँ कीचड़ भी थी और मरी हुई तथा सड़ी हुई मछलियों की बदबू भी आ रही थी। नदी शान्त और स्निग्ध गति से मौन और एकान्त मन हुई बहती जा रही थी। वहीं पर एक मकान के सामने पहुँचकर बाँसों की बनी हुई सीढ़ियों पर अजय चढ़ गया। पास ही किनारे पर बर्मी, बंगाली, पूर्वी और पंजाबी मजदूरों के स्वर सुनाई दे रहे थे। वे सब अपनी-अपनी नावों

पर बैठे हुए गा रहे थे, चिलम पी रहे थे और आपस में बातें कर रहे थे। बहुत-से वहीं पर सोते हुए भी दिखाई देते थे और कुछ अपनी नाव पर सामान लादते हुए आगे के सफर की तैयारी कर रहे दीखते थे।

सीढ़ियों से ऊपर जाकर अजय ने मकान के दोतल्ले से खड़े होकर पुकारा, "बसन्तसिंह !"

इस प्रकार कई आवाजें देने पर भी उसे उत्तर नहीं मिला। तब वह जीने से ऊपरी मंजिल पर पहुँच गया। वहाँ जाकर देखा कि कमरा खुला था। उसमें मन्द-सा चिराग भी जल रहा था। उसी के अन्दर एक ओर बसन्तसिंह पड़ा हुआ सो रहा था और खुर्राटे ले रहा था। लेकिन भैया वहाँ नहीं था। यह देखकर अजय को अचरज हुआ और अपने इतने परिश्रम को व्यर्थ जाते देखकर खेद भी हुआ। इतनी दूर से आते-आते और ऊबड़-खाबड़ रास्तों को पार करते-करते वह थक गया था। इसी से वह कुछ बैठना और आराम करना चाहता था। उस भरी सुनसान रात में उसकी आँखों में नींद का नशा भी आ गया था, जो बरबस ही उसकी आँखों को भारी-भारी किये हुए था। किन्तु वहाँ भैया को न पाकर, वह एक उलझन-सी लिये मकान में इधर-से-उधर फिरने लगा और निरुद्देश्य ही इस-उस ओर देखने लगा। तभी दूसरी ओर बाहर के छज्जे से उसे किसी के खाँसने का स्वर सुनाई दिया। यह सुनते ही अजय उसी ओर गया। जाते ही देखा कि भैया नदी की ओर मुँह किये आसन पर बैठा हुआ है और ईश-चिन्तन में लगा है। उस उगते आए चन्द्रमा के निर्मल और तेजपूर्ण प्रकाश में वह बदन खोले हुए बैठा हुआ भैया सचमुच ही भक्ति और श्रद्धा का पात्र बना हुआ था। इस प्रकार उसे अपनी अन्तःप्रेरणा के समक्ष नत हुए बैठे देखकर, अजय की आत्मा में, जाने किस लोक की और उसके किस जीवन की प्रेरणा ने उदय होकर एकाएक उससे कहा—'अरे अजय, जीवन तो यह है यह—जो सपाट है, सुन्दर है। ईश्वर की जाने किस महान् ज्योति ने इस भैया को आलोकित किया है और सार्थक कियाहै।'

इसके बाद ही उस अजयकुमार में बरबस ही अपने जीवन की

समस्त स्मृतियाँ ऊपर उठ आईं, जो एक-एक करके उसे सम्बोधित कर अपनी वास्तविकता का परिचय देने लगीं। मानो तब वे उस भैया के समक्ष खड़े होकर नदी की श्वेत लहरों और चन्द्रमा की चाँदनी को देख, अपनी सत्यता को छिपाने में समर्थ नहीं हो सकीं। वह उस मोहक, शान्त और सुखकर वातावरण को लक्ष्य करके अपने-आपमें खो गईं और जो उनकी आत्मा में बैठी सत्यता पर पर्दा पड़ा था, वह तब अनायास ही हवा के एक झोंके में पलट गया। उसी अवस्था में अजय ने यह भी देखा कि जो भैया ने सुरेशबाबू के घर जाकर उसे उपहास के रूप में देखा और कहा, वह सभी जैसे सच था। भाभी का कहना भी सच था। वह कभी भी ईर्ष्या और स्पर्धा की भावना से ऊपर नहीं उठ सका, जो यह उसे कभी दिखाई भी नहीं दिया। वह जिन गाँवों में जाकर सेवा के कार्य में लग गया था, वह भी अनायास ही जाकर लग गया था और एक दम्भ वहाँ से भी वह अपने साथ लेता आया था। क्योंकि वहाँ पर जो निरन्तर अपने लिए उदार और जनता-जनार्दन का महान् सेवक होने का उपहार उसे दिया जाता था, वह सचमुच ही उसके हृदय में जमकर बैठ गया था। वह रोहिणी को अब अपने प्रति क्या देखना चाहता है यह भी, और सुरेशबाबू से जो उसका कटु सम्बन्ध हुआ है उसे भी, जब वह अपने अन्दर से सुन पाया, तो हठात् उसका रोम-रोम व्याकुल हो गया। उसने बरबस ही, अपने-आप चीखकर कहा—'अरे, अजय, तुम ऐसे! ओह! तुमने सभी-कुछ खोया! यह जीवन भी खोया! इस भैया का जो सम्पर्क पाया है, इसमें रहकर भी तुमने कुछ नहीं देखा। हाँ कुछ नहीं।'

यह कहते-कहते अजय जैसे बरबस ही भिंचा-भिंचा-सा हो गया। वह भैया के रूप में उस अध्ययन, एक स्मरण को लेकर स्वतः ही अपनी दृष्टि में इतना हेय और निकृष्ट बन गया कि अपनी आत्मा में उठ आये रोमांच के साथ वह रो दिया और आगे बढ़कर उसी क्षण उस ध्यानावस्थित भैया के चरणों में गिरकर जाने कितनी आतुर हुई प्रेरणा के साथ गद्‌गद् होकर बोल उठा—"आज मैं भी तुम्हारी शरण में आया हूँ भैया! मैं दुःखी हूँ। मैं निकृष्ट और हीन हूँ···"

सहसा भैया ने अपने बन्द नेत्र खोल दिए। उसने अपने मुँह के परस्पर जुड़े हुए होंठ भी खोल दिए और अजय को उस प्रकार दीन और हीन बना देख, उसकी ओर अपने दोनों हाथ भी बढ़ा दिए। उसने अजय को उठा लिया और अपनी छाती से लगा लिया। तब उसकी पीठ थपथपाकर शान्त और गम्भीर स्वर में उसने कहा—"मैं योगी और महान् नहीं हूँ अजयबाबू! मैं तुम्हारे ही बीच का व्यक्ति हूँ। मैं तो केवल अपनी आत्मा में परिव्याप्त हुए सत्य के दर्शन करने की चेष्टा किया करता हूँ। ऐसी ही चेष्टा करने के लिए मैं आज तुमसे भी कहता हूँ, तुम भी यही किया करो।"

अजय ने चन्द्रमा और नदी की ओर देखकर कहा—"हाँ, भैया! आज मैंने समझा कि जो सत्य है और शिव है, वह तो मेरी ही आत्मा में निहित है, तुम्हें इस प्रकार देखकर मैंने यही अनुभव किया है। मैंने आज ऐसी ही दीक्षा लेने का संकल्प किया है।"

यह सुनकर भैया मुसकराया। उसने कहा—"दीक्षा लेना तो आसान है अजयबाबू! किन्तु यह जो मन तुम्हारे पास है, इसकी चञ्चलता को दबाना, इसे अपने रूप में ही प्रतिपालित करना कितना कठिन है, अभी तुमने यह नहीं सोचा दीखता है। जिस संयम और त्याग की इस जीवन को इच्छा है, उसे पालने के लिए तुम्हें न जाने अपनी कैसी-कैसी परिस्थितियों से भी लड़ना पड़ सकता है।"

अजय के चुप रहने पर भैया ने फिर कहा—"अच्छा हुआ कि तुम आ गए। मैं प्रातः यहाँ से चला जाऊँगा। बसन्तसिंह रहेगा। देखता हूँ, यहाँ जो मैंने अपना कार्य-क्षेत्र बनाया है अब वह स्थिर और सुचारु नहीं रहेगा।"

उस समय अजय दूर जंगल की ओर देख रहा था। चन्द्रमा का प्रकाश चारों ओर फैल चुका था। कुछ देर पूर्व जो नदी के दोनों किनारों पर अन्धेरा दिखाई देता था, अब वह मिट गया था। चारों ओर चन्द्रमा की चाँदनी ने अपना साम्राज्य फैला दिया था।

उसी समय भैया कहने लगा—"जिस समस्या में तुम उलझे हो, उसके प्रति मैं कहूँगा कि रोहिणी, तुम और सुरेशबाबू ही इसके

अपवाद नहीं हैं, मुझे तो समूचा देश ही इस उलझन में पड़ा दीखता है। जिस राष्ट्र को हमने बार-बार एक और अखण्ड कहते सुना है, मुझे तो दिखता है कि यह कभी ऐसा नहीं रहा है। इस वृहत् देश के धर्म और संस्कृति को सदा ही विभाजित किया गया है। इसी से मेरा यह भी मत है कि इसे जिस परतन्त्रता का शाप लगा है, उसे स्वयं ही इसके वासियों ने सँजोया है। उन्होंने स्वयं ही राष्ट्र के कफन में कील का काम किया है। यह देश अपने ही आदमियों से ठगा गया है, अजयबाबू! फिर तुम लोगों की क्या बात? तुम्हारे द्वारा आज जो-कुछ हुआ, वह जिस इच्छा पर आधारित होकर हुआ, निःसन्देह वह तुम लोगों के लिए अशुभ हुआ। रोहिणी ने सुरेशबाबू के घर जाकर तुम्हारी जिस जंगली प्रकृति को रोकना चाहा, वह सचमुच ही उसका एक महान् और सत्साहस का कार्य रहा। रोहिणी के रूप में नारी के लिए जो मेरे पास श्रद्धा का भाव था, वह और अधिक दृढ़ हुआ और सत्य प्रमाणित हुआ। निश्चय ही रोहिणी में जो माधुर्य है, उसकी हृदय-तन्त्री के तारों में जो गत और स्वर-लहरी भरी हुई है, वह अपार है। वह तुम-जैसे युवकों को सुगमता से समझ में नहीं आती दीखती। सुरेशबाबू को मारने का जो तुम्हारा प्रयास था, मुझे उससे यही ध्वनित हुआ था।

अजय ने अपने-आपको और अधिक उलझन में पड़ा देखकर बचाव की दृष्टि से कहा—"वह तो दया और ममता चाहती है भैया!"

तुरन्त भैया ने रूक्ष हुए भाव में कहा—"यह मैं जानता हूँ। नारी जिस वस्तु की अधिकारिणी है और जिसके प्रति आकांक्षित रही है, रोहिणी ने उसी की चाहना की है। अजयबाबू यह मत भूल जाओ कि इसी ममतामयी नारी ने इस रूढ़ और पशु-तुल्य मानव में मनुष्यत्व की सृष्टि की है। उसमें जो सौन्दर्य है, जो नारीत्व है उसके अञ्चल में बैठकर ही इस पुरुष को अजस्र मानवीयता की सीख मिली है। यह नारी···।"

उसी समय नीचे से आने वाली आवाज सुनकर उसने कहा—"लो रोहिणी भी आ गई।"

"भाभी है," अचम्भे के साथ अजय ने कहा—'और तभी उसने

रोहिणी को अपने सामने खड़ा देखा। उसे देखते ही उसने कहा—"मैं भी तो अभी आ रहा हूँ भाभी!"

किन्तु भाभी ने कहा—"मैं भैया के पास आई हूँ।"

"लेकिन तुम ऐसी रात में आई हो—इतनी दूर! तुम हाँफ भी रही हो।"

भैया ने हँसकर कहा—"अब तो उजाला है अजयबाबू! चाँद निकल आया है। किन्तु इसके भी विपरीत रोहिणी तो यहाँ घोर अँधेरे में और काली रात में अनेकों बार आई है। अकेली ही आई है।"

यह सुनकर अजय चुप रह गया। वह बरबस ही तब रोहिणी और भैया की ओर देखने लगा।

उसी समय भैया ने रोहिणी की ओर देखकर कहा—"दिखता है, जो शाम को अजयबाबू ने अपनी पिस्तौल का खेल दिखाना चाहा था उसी के प्रति जो उपेक्षा और घृणा का भाव तुममें आया, वह अभी तक बना है। वह अभी तक तुम्हारे हृदय से नहीं निकला है। क्या उसी को लिये हुए तुमने यहाँ आने का कष्ट किया है?"

यह सुनकर रोहिणी ने एकाएक कुछ नहीं कहा। तब उसने अपना मुँह भी नदी की ओर फेर लिया।

यह देखकर भैया ने फिर कहा—"रोहिणी बहन, इस विषय में तुझे जो-कुछ कहना था, वह तब भी और अभी-अभी भी सुरेशबाबू से यथेष्ट कहा है। देखता हूँ, सम्भव है इसमें मेरी भी हीनता और क्षुद्रता का रूप दिखाई दिया है। इसी से मैंने जो प्रायश्चित्त करने का निर्णय किया है, वह मेरे यहाँ से हट जाने और अपने को किसी नई विपत्ति में झोंक देने के अतिरिक्त पूर्ण होता भी नहीं दिखाई देता। सो मुझे अब यही करना है। तुमको जो मैंने एक बहन के रूप में पाया है, तो विश्वास रखो, इस भैया ने तुम्हारी आँखों के सामने ऐसा कार्य कदापि नहीं करना चाहा है कि जिससे तुम्हें मानसिक कष्ट हो और रोना आता हो। इसी से अब मैंने अजयबाबू को अपने गिरोह से निकाल दिया है। मैंने इन्हें मुक्त कर दिया है। अन्यथा जो प्रमाद और अपने कार्य के प्रति अस्थिर भावना इनमें मुझे देर से दिखाई दी है, वह हमारे नियमानुसार

कभी भी क्षम्य नहीं रही है। यहाँ तो मृत्यु और जीवन के झूले पर जो झूलना चाहता है, वह ही इस मार्ग को ग्रहण करता है। आज यही मुझे अजयबाबू से कहना था, सो कह दिया है; और इन्होंने सुन लिया है। मैंने आज तुम्हारे सामने ही इन्हें समिति से मुक्त कर दिया है। अजयबाबू कभी फँस न जायं, इसलिए मैंने समिति के सभी सदस्यों से हमारे दल से इनके पृथक् हो जाने की बात को कह दिया था। इस प्रकार उन सभी ने अजयबाबू के दूर हो जाने की बात को मान लिया था।"

"लेकिन मैं पूछती हूँ, तुमने क्या सोचा है भैया!" हठात् रोहिणी ने उसकी ओर देखकर कहा, "आखिर तुमने तो वही चाहा है जो यहाँ न करके कहीं और करना चाहा है। ऐसे एक अजयबाबू को छोड़कर तो न रोहिणी का मन चाहा होना है और न तुम्हारा ही उद्देश्य पूर्ण होना है। यहाँ एक अजयबाबू तो नहीं सभी ऐसे दीखते हैं। भैया मैं आज फिर कहती हूँ, अपनी इस जरा-सी शक्ति को लेकर तुम पहाड़ से टक्कर लेने चले हो। जिससे टकराकर तुम स्वतः ही खण्ड-खण्ड और चूर-चूर हो सकते हो।..."

लगा कि उस समय सदा के विपरीत भैया अत्यधिक गम्भीर हो माथे में बल डाले छज्जे की दीवार पर झुक गया था और नदी की ओर देख रहा था। उससे कुछ दूर पर अजय खड़ा था, जो रोहिणी और भैया की बातों में उलझा हुआ अपने-आपमें डूब-उतरा रहा था। वह इसी से मौन था।

उसी समय भैया ने रोहिणी की बात को लक्ष्य करके उसकी ओर देखकर कहा—"बहन, तुम ठीक कहती हो। लेकिन भैया तो एक आधार है—साधन हैं;और देश के लिए तो ऐसे हजारों साधनों की आवश्यकता है। जिस पहाड़ से टकराने की तुम बात कहती हो, निश्चय ही उससे एक भैया क्या, सैकड़ों-हजारों भैया-जैसे टकराकर मर गए हैं। जब तक एक भी पहाड़ रहेगा तब तक मनुष्यों का मरना भी चलता रहेगा। वह मिट जायगा, तो फिर दूसरा उदय हो जायगा। यह जो मनुष्य के नैतिक, आर्थिक और सामाजिक विकासपूर्ण बन्धन का प्रश्न है, यह जब-जब अपनी उग्र और स्वेच्छापूर्ण स्थिति में होगा, तब-तब मानव

का बलिदान भी इसके लिए अवश्यम्भावी होगा। ऐसे निश्चय ही भैया मर जायगा। लेकिन जो जीवन है, वह तो फिर आयगा। मानव में जो विचारों का संघर्ष है, वह इस एक भैया के रोके से नहीं रुकेगा। भैया तो स्वयं ही उन विचारों की एक प्रतिच्छाया है, जिसे अनायास ही इस रूप में निर्मित नहीं होना पड़ा है। इसे बनाया गया है। परिस्थितियों ने स्वयं ही उसे ढाल दिया है। और जब तक इस पूँजीवाद का यह हृदय-हीन नग्न ताण्डव बरबस ही इस निरीह मानव की छाती पर होता रहेगा और उसका रोदनपूर्ण चीत्कार सुनकर पूँजीवाद खिलखिलाकर हँसता रहेगा, तो उसकी प्रतिक्रियारूप तब तक ही मानव के लिए मानव का बलिवेदी पर जीवन भी अर्पण होता रहेगा। ऐसे तब क्या कहूँ मैं ? मैं अकेला कैसे कहूँ ? किस मुँह से कहूँ रोहिणी बहन ?" कहते हुए भैया का गला भर आया। उसका स्वर भी रुँध गया। जिस भावात्मक स्थिति में वह आ गया, उसी के कारण उसकी आँखों में जल भर आया, जो रोहिणी के देखते-देखते उसके मुँह पर भी बह आया।

इतनी देर में दिन भी निकल आया। सूर्य की पहली किरण ने अपना मुँह खोल दिया। आँखों को पोंछकर हठात् भैया ने मुसकराकर कहा—"अब तुम जाओ, बहन अजय तुम भी। निश्चय ही तुम अपना उचित पथ निर्धारित करोगे, मेरी यही कामना है। इस जीवन के बाद भी जीवन है, मैंने आज तक यही समझा है। इसी को लक्ष्य करके अपना पथ भी निर्मित किया है।"

लेकिन रोहिणी को मौन और गम्भीर देखकर भैया ने फिर कहा—"जाओ रोहिणी, जाओ।"

यह सुनकर रोहिणी ने सिर झुकाये-झुकाये ही भैया के पैर छू लिए और वहाँ से चलते-चलते हाथ जोड़ दिए।

उसके पीछे ही भैया ने कहा—"मैं तुम्हारे पास आऊँगा रोहिणी, जरूर आऊँगा।"

किन्तु यह सुनकर भी रोहिणी ने कुछ नहीं कहा। उसने आगे बढ़कर सीढ़ियों को पकड़ लिया और अजय के आगे-आगे ही उन सीढ़ियों से उतरकर घर जाने वाला रास्ता अपना लिया। रास्ते में न अजय ने

कुछ कहा और न वह ही कुछ बोली। लगता था कि उन दोनों में जो विपरीत और दूर-दूर का विचार आया था, उसने बरबस ही उन दोनों को दूर-दूर कर दिया था।

इस प्रकार अभी रोहिणी और अजय कुछ ही दूर चले थे कि सामने एक हाथ में छड़ी और दूसरे से धोती पकड़े हुए महेशबाबू शीघ्रता से आते हुए दिखाई दिए। उन्होंने पास आते-आते व्यग्र हुई वाणी में कहा—"तुम दोनों खूब मिले। मैं तुम्हें ही ढूँढ रहा था, इसी-से इधर आया था। भैया कहाँ हैं?"

अजय ने कहा—"मकान पर।"

"आओ, चलें उनके पास।"

रोहिणी ने कहा—"मैं घर जाऊँगी, आप हो आइए!"

"नहीं रोहिणी, तुम भी चलो। एक आवश्यक बात है, जो वहीं कहनी है।" अपनी उसी व्यग्रता में महेशबाबू ने कहा।

निदान, उन दोनों के साथ रोहिणी फिर लौट गई और भैया के पास पहुँच गई। वहाँ जाकर देखा कि इतने में भैया ने अपना बिस्तर बाँध लिया था। वह कहीं जाने के लिए तैयार था। महेशबाबू को देखकर उसने नमस्कार करते हुए कहा—"आप भी खूब आए भाई, मेरे चलते-चलते मिल लिए।"

लेकिन महेशबाबू ने अपनी बात को इतनी देर से बरबस दबाये हुए अब उसे स्पष्ट करने के अभिप्राय से कहा—"देखता हूँ, आप जा रहे हैं। इस कठिन समय में शहर को छोड़ रहे हैं। थानेदार के साथ पुलिस के दर्जनों सिपाही रोहिणी के द्वार पर बैठे हैं। जो रोहिणी और अजयबाबू को पूछ रहे हैं।"

हठात् रोहिणी और अजय की ओर देखते हुए भैया ने कहा—"यह तो होना ही था। आजकल में ही होने वाला था सो अब हो गया।"

"अब !" उसे दोहराते हुए और पीड़ा से भरते हुए अजय ने कहा और रोहिणी की ओर देखा।

लेकिन इसके विपरीत रोहिणी ने न किसी की ओर देखा और न ही अपना मत प्रदर्शित किया। लगा कि जैसे उसके लेखे कुछ भी नहीं हुआ। कुछ नवीन नहीं हुआ और उसकी आशा से विपरीत नहीं हुआ। इसी से उसने अपनी पहले-जैसी मुखाकृति को लेकर बरबस हो भैया की ओर देखकर मुसकरा दिया।

महेशबाबू ने कहा—"इस अवस्था में घर जाना ठीक नहीं होगा, रोहिणी !"

सुनते ही रोहिणी ने अट्टहास के भाव में कहा—"ठीक तो है, भाग जायं, कहीं छिप जायं ! और तभी दिखता है कि आप नहीं समझे, अब तक भी नहीं जान सके कि इस रोहिणी के लिए अपने पति के घर को छोड़कर कोई और स्थान नहीं है। इसे छिपना भी नहीं है और कहीं दूर भी जाना नहीं है। इसने आज तक जो-कुछ किया है और करना चाहा है, उसमें आत्मा की प्रेरणा के अतिरिक्त दुराव की या छिपाव की कोई भी बात नहीं है।"

महेशबाबू ने कहा—"लेकिन यह भी कोई अहितकर काम नहीं है रोहिणी !"

रोहिणी ने उनकी ओर देखकर कहा—"ऐसा कब तक होता रहेगा। एक दिन की तो बात नहीं है यह; सारा जीवन पड़ा है, जो यहीं रहकर काटना है।"

भैया अब तक चुपचाप खड़ा था। बरबस उसी ने क्षणेक हँसकर पूछा—"तो तुम क्या चाहती हो ?"

सुनते ही रोहिणी ने कहा—"मैं घर अवश्य जाऊँगी।"

"अजयबाबू भी ?" भैया ने फिर पूछा।

रोहिणी ने कहा—"यह अजयबाबू बतायंगे।"

यह सुनकर तब भैया ने जाने किस भाव में उन सभी की ओर देखा। उसने इसी उदासी-भरे भाव में कहा—"दिखता है, यहाँ सभी कुछ बिगड़ गया—सभी कुछ !···"

यह सुनकर रोहिणी ने जैसे अपनी समस्त पीड़ा को आँखों में समेटकर भैया की ओर देखा। उसने उसी प्रकार देखते हुए कहा—"भैया, ऐसा तो मैंने पहले भी सुना है। बताओ, ऐसे तर्क से छुटकारा कहाँ है। जो रोग है, उसका उपचार तुम्हारी औषधि से नहीं होता दीखता।"

भैया ने तब इस पर अपना मत नहीं दिया। उसने बरबस अपने को रोक लिया। उसने देखा कि जाने यह कितनी कठिन और दुर्बोध दीखती है रोहिणी, जो अपने उस समय में अपनी ही बात पर खड़ी है। वह उससे न तिल-भर हटती है, न हटना चाहती है। भैया को यह जीवन में पहली बार उसी क्षण अनुभव हुआ कि उसकी कठोरता और भयंकरता, मानो उस रोहिणी के सामने न दिखती है, न उससे देखी जाती है। रोहिणी बहन है, नारी है, किन्तु इसके आगे भी वह जिस ममता की साकार मूर्ति बनकर भैया के मार्ग में अवरोध बनी है, वह पथरीली शिला की तरह उसके हटाये न हटती है, न स्वयं ही हटती दिखाई देती है। तब क्या करे भैया? कैसे कहे भैया कि न रोहिणी, पथ और भी हैं, और! जो दृढ़तर है—जो कठोर और भीषणतर है···।

इसी से भैया ने कुछ अधीर और व्याकुल होकर अपने अन्दर आये सभी मनोभावों को रोककर सामने खड़े बसन्तसिंह की ओर देखकर कहा—"इस बिस्तरे को नाव पर रखो, बसन्तसिंह! मैं अगले स्टेशन से चढ़ूँगा। चलो, जल्दी करो। पुलिस कुछ और भी चाहेगी। इस प्रकार वह जरूर मेरी तलाश करेगी।"

अजय ने पूछा—"तो आज ही जाना है, भैया?···अभी?"

भैया ने कहा, "···हाँ, अभी ही।" वह तब अत्यधिक गम्भीर बन गया। शायद उसकी इतनी दृढ़ता और कठोरता को किसी ने भी नहीं देखा था। विशेषकर रोहिणी ने भैया को ऐसा नहीं देखा था।

लेकिन रोहिणी ने तब भी रोककर पूछा—"तो क्या सचमुच ही जा रहे हो भैया? ऐसे ही जा रहे हो? तुम इसी प्रकार नाता तोड़े जा रहे हो क्या?"

भैया ने तब सचमुच ही अधीर होकर नत हुए याचक की तरह

कहा—"हाँ, बहन। अब जायगा भैया, ऐसे ही जायगा। भरोसा रखो कि वह लौट आयगा।" और उसने तब सभी की ओर देखकर कहा—"महाशयो, आपसे एक दिन मिला था, अनायास ही, एकाएक ही। आज वैसे ही चल दिया···आइये!" कहते-कहते वह आगे बढ़ लिया और मकान से उतरकर नदी के तट की ओर चल दिया।

वहीं पर जाकर उसने रोहिणी को लक्ष्य करके फिर कहा—"मुझे अकारण नहीं जाना बहन! लोग प्रतीक्षा में हैं। जो इमारत खड़ी की गई है और अभी चिनी जा रही है, उसी का बोझ मुझे अब अन्य व्यक्तियों के ऊपर भी डालना है। जो व्यक्ति मेरे साथ हैं, उनकी ईमानदारी की परख करने का जो अवसर मुझे मिला है, निश्चय ही मुझे उसका उपयोग करना है।" कहते हुए उसने रोहिणी, अजय और महेशबाबू से विदा ले, नाव पर पहुँचकर पतवारों को उठा लिया और चल दिया।

उसी समय रोहिणी को लक्ष्य करके अजय ने कहा—"चलो भाभी, मुझे भी साथ चलना है।"

यह सुनते ही रोहिणी ने पूछा—"मैं तो घर जाऊँगी, परन्तु तुम्हारी जेब में जो पिस्तौल है, क्या उसको लिये हुए ही चले चलना है?"

यह सुनकर अजय ने पिस्तौल निकाल लिया और नदी के गहरे जल की ओर फेंक दिया। उसके पास जो कारतूस थे, उन्हें भी उसी ओर फेंक दिया।

यह देखकर महेशबाबू ने पूछा—"यह कैसी प्रतिक्रिया है, अजय-बाबू?"

तब अजय ने इसका उत्तर नहीं दिया। साथ ही वह उन दोनों से आगे-आगे होकर चल दिया।

शीघ्र ही वह तीनों शहर में पहुँच गए। इसी बीच भैया के अन्य अनुयायियों ने इस खबर को पाकर कि रोहिणी को गिरफ़्तार किया जा रहा है और उसके मकान को घेरा जा रहा है, मिल-एरिया में जाकर अपने रचे हुए षड्यन्त्र का इसी आधार पर श्रीगणेश कर दिया।

उससे कुछ देर पूर्व ही मिलों का कार्य आरम्भ हुआ था। मजदूरों का मिलों में आना-जाना लगा था। जो मजदूर रात की ड्यूटी से छुट्टी पाकर बाहर आ रहे थे, उन्हें जब इस बात का पता चला तो काम पर जाने वाले अपने साथियों को उन्होंने रोक लिया और इस धारणा को लेकर कि रोहिणी को हमारे कारण ही गिरफ़्तार किया गया है, बरबस ही उनमें सोये हुए पुरुषत्व का भाव जाग गया। जिसका परिणाम यह हुआ कि मिलों का काम बन्द हो गया और मजदूरों के इस बड़े समूह ने उल्टे पाँवों रोहिणी के घर की ओर अपना कूच कर दिया। देखते-ही-देखते शहर में तहलका-सा मच गया। मिल-मालिकों और अधिकारियों का भी उसी घर की ओर आना-जाना आरम्भ हो गया।

जब रोहिणी, अजयकुमार और महेशबाबू वहाँ पहुँचे तो सचमुच उन्हें भी यह देखकर अचरज हुआ कि मिल-मजदूरों, नागरिकों और पुलिस के बड़े-से-बड़े अफसरों के साथ वह स्थान चारों ओर नर-मुण्डों से ही भरा दिखाई देता था। जनता में जो अशान्ति और व्यग्रता दिखाई देती थी, उसे निश्चय ही स्वयं जनता की ओर से प्रोत्साहन दिया जा रहा था और बढ़ाया जा रहा था, जिसके विपरीत पुलिस और फौज की एक छोटी टुकड़ी के द्वारा बन्दूकों को दिखा-दिखाकर शान्त करने का एक निष्फल और बेकार प्रयास भी होता हुआ दीखता था।

यह देखकर महेशबाबू ने अजय को पीछे रोक लिया था। उन्होंने रोहिणी को भी रुकने के लिए कहा था। किन्तु तब रोहिणी ने इसे सुनकर भी जैसे नहीं सुना था। वह जैसे ही आगे बढ़ी कि मिल-मजदूरों ने उसे घेरकर चिल्लाना शुरू किया—"देवीजी आ गईं, रोहिणी बहन आ गईं! इन्कलाब! जिन्दाबाद!"

और जो अधिकारी रोहिणी की प्रतीक्षा में थे, वह तब एक क्षण के लिए भी, रोहिणी को अपने हाथों से बाहर देखना उचित नहीं समझते थे। इसी से वह तुरन्त ही उसे वहाँ से ले जाना और गिरफ़्तार कर लेना आवश्यक समझते थे। वह रोहिणी के पास पहुँचना चाहते थे, फलस्वरूप पुलिस के सिपाही भीड़ को वहाँ से हटा देना और भगा देना अपना प्रथम कर्तव्य समझते थे। लेकिन लगता यह था कि उस

समय पुलिस और रोहिणी के बीच का प्रश्न नहीं था, वह तब जनता और पुलिस की हठधर्मी का प्रश्न बन गया था। रोहिणी को देखते ही अनेक जयघोषों के साथ जनता ने उसे घेर लिया था और जो पुलिस की ओर से भीड़ को तितर-बितर करने के लिए डण्डों का प्रहार होने लगा था, उसके बाद ही बन्दूक की गोलियों को भी हवा में छोड़ा गया। उसी का यह दुष्परिणाम हुआ कि जनता की ओर से भी ईंट-पत्थर और कीचड़-मिट्टी का उछालना और मारना आरम्भ हो गया। पुलिस-अधिकारियों में जो उग्रता का रूप पहले से सुरक्षित दिखाई देता था, वह तब पलक मारते ही बाहर आ गया और उसके देखते-देखते जनता पर डण्डों का प्रहार करने के साथ उन्होंने तब बन्दूक की गोलियों के भी एक-दो वार कर दिए थे। इस प्रकार जनता में से कुछ भागे, कुछ रहे, कुछ घायल हुए और कुछ वहीं गिर गए···

इस बीच में यह भी स्पष्ट दिखता था कि रोहिणी ने अपने कर्तव्य को मानो मूर्तिवत् ही अपने सामने देख लिया। उसने जनता की उस भीड़ से निकलकर शीघ्र-से-शीघ्र उन अधिकारियों के पास पहुँचना चाहा था, जिनकी निरंकुशता और मूढ़ता को देखकर उसमें रोमांच हो आया था। उसने अपने को जनता से छुड़ा लिया और इसी भीड़ में चिल्लाते हुए एक बड़े अफसर के सामने जाकर कहा—"आप यह क्या करते हैं ··ये निहत्थे, ये निरपराध···।"

किन्तु उस समय दिखता यह था कि जनता की जिस उद्दण्डता ने वह दृश्य उपस्थित किया था, उसका दण्ड देने का अधिकारियों ने निश्चय कर लिया था। तब प्रतिक्रिया की भावना से भरे हुए उस अफसर ने रोहिणी की बात को अनसुनी कर दिया, अपितु उसने रोहिणी को धक्का भी दे दिया और गिरा दिया, लेकिन रोहिणी ने गिरते-गिरते भी चिल्लाकर कहा—"अरे, मूर्ख मत बनो···तुम राक्षस मत बनो···।"

जनता और पुलिस का वह युद्ध समाप्त हो गया। उस स्थान पर पुलिस का पहरा लग गया। घायल हुई रोहिणी का उपचार आरम्भ हो गया, नगर का एक उच्च अधिकारी उसे आकर देख गया और उपचार की व्यवस्था करने का आदेश भी दे गया। डॉक्टर रोहिणी के शरीर पर अनेक जगह पट्टी बाँध गया। उस समय नगर के जितने विशिष्ट व्यक्ति आये, उनमें एक सुरेश भी था। जिस समय रोहिणी के समीप लक्ष्मी, उसका पति महेश और अजय बैठे थे, तभी भैया वहाँ आ उपस्थित हुआ। आते ही वह रोहिणी की तरफ झुक गया।

उसी समय रोहिणी ने फिर आँखें खोलीं। उसने लम्बी साँस ली।

भैया ने कहा—"रोहिणी!"

रोहिणी ने धीमे शब्दों में कहा—"भैया···!"

लक्ष्मी ने कहा—"सुरेशबाबू भी बैठे हैं।"

इतना सुनकर रोहिणी ने अपनी आँखों को उधर कर दिया। उसने सुरेश को अपने पास बुलाया और अजय का हाथ पकड़कर उसके हाथ पर रख दिया।

अजय ने कहा—"सुरेशबाबू मेरे भाई हैं।"

सुरेश ने कहा—"हम दोनों भाई हैं।"

तभी रोहिणी ने अपनी आँखों को भैया के मुँह पर टिका दिया।

किन्तु भैया द्वार की ओर बढ़ा और सबको सुनाकर बोला—"मैं जाऊँगा—जा रहा हूँ।" वह चला गया।

रोहिणी ने अपने मन को उस कातर बनी हुई अवस्था को लेकर दीवार की तरफ मुँह फेर लिया और फूट-फूटकर रोना आरम्भ कर दिया।